वीर सतसई

[महाकवि सूर्यमल्ल मीसण कृत सुप्रसिद्ध राजस्थानी भाषा का काव्य]

विस्तृत प्रस्तावना, वर्गीकृत विषयसूची, प्रतीकानुक्रमणिका,
हिन्दी शब्दार्थ, हिन्दी भावार्थ, अलंकार निर्देश, पाठान्तर आदि
के साथ संपादित

संपादक

नरोत्तमदास स्वामी, एम. ए.
नरेन्द्र भानावत, एम. ए., पीएच. डी.
लक्ष्मी कमल, एम. ए.

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

एक मात्र वितरक
राजस्थानी ग्रन्थागार
प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता
सोजती गेट के बाहर
जोधपुर

संस्करण 1988

मूल्य : पिचहत्तर रुपये मात्र

मुद्रक :
दी एजुकेशनल प्रेस, आगरा-3

भूमिका

'महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण स्मृति शताब्दी वर्ष', में सूर्यमल्ल मिश्रण कृत 'वीर सतसई' का यह सम्पादित संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता है। इसके पूर्व बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा 'वीर सतसई' का प्रकाशन किया गया था। हमारे द्वारा प्रस्तुत संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं।

यह ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रस्तावना और द्वितीय भाग में सतसई का मूल पाठ अर्थ और टिप्पणियों के साथ दिया गया है। प्रस्तावना तीन खंडों में है। प्रथम खंड में राजस्थानी वीर काव्य की सामान्य विशेषताएँ, उसकी पृष्ठभूमि और काव्य-रूप, वीर रस के प्रमुख कवि और काव्य तथा 'वीर सतसई' साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय खंड सूर्यमल्ल मिश्रण के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित है। तृतीय खण्ड में 'वीर सतसई' की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह समीक्षा सतसई के निर्माण की पृष्ठभूमि, उसमें चित्रित वीर जीवन के विविध रूप, युद्ध-वर्णन, वीरत्व की व्यंजना, समाज और संस्कृति तथा कला-विधान को लेकर है। मण्डल द्वारा प्रकाशित संस्करण के सम्पादकों की दृष्टि सूर्यमल्ल की जीवनी पर अधिक केन्द्रित रही है जब कि हमारी दृष्टि उसके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक देय पर।

'सतसई' के सम्पादन में हमने मण्डल द्वारा प्रकाशित संस्करण के दोहों को उसी क्रम में नहीं लिया है। वहाँ दोहों के क्रम में न विषय की संगति है न रस की। हमने वीर-भावना और वर्ण्य-विषय के आधार पर उन्हें सोलह शीर्षकों में वर्गीकृत किया है।

अन्त में दो परिशिष्ट दिये गये हैं, पद्यानुक्रमणिका और विस्तृत विषयानुक्रमणिका।

आशा है, यह ग्रन्थ विद्वानों और छात्रों दोनों के लिए, राजस्थानी वीर काव्य की पृष्ठभूमि समझने में सहायक होगा।

—सम्पादकगण

अनुक्रम

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

खंड [1]

राजस्थानी वीर काव्य

खंड [2]

कवि (सूर्यमल्ल मीसण) जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

खंड [3]

वीर सतसई और उसकी समीक्षा

संकलन

खंड [4]

वीर सतसई

प्रस्तावना

खण्ड [1] राजस्थानी वीर काव्य

खण्ड [2] कवि (सूर्यमल्ल मीसण) जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

खण्ड [3] वीर सतसई और उसकी समीक्षा

खंड [१]

राजस्थानी वीर काव्य

[क[सामान्य विशेषताएँ

राजस्थानी साहित्य विविध और विशाल है। उसके निर्माण में यहाँ की प्राकृतिक स्थिति के साथ-साथ युगीन परिस्थितियों और सांस्कृतिक परम्पराओं का बड़ा योग रहा है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति ने त्याग, बलिदान, साहस और वीरता का पाठ पढ़ाया है। एक ओर रेतीले टीलों ने निस्पृहता की सीख दी तो दूसरी ओर अरावली और अर्बुद जैसे पर्वतों ने हँसते-हँसते, कठिन जीवन जीने की प्रेरणा दी। युगीन परिस्थितियों ने इसे संघर्ष की भूमिका प्रदान की। फलस्वरूप यहाँ के वीर प्राणों को हथेली में लेकर मातृभूमि की रक्षा के लिए समरांगण की ओर प्रयाण करने में ही अपने जीवन की सफलता और सार्थकता मान बैठे। सांस्कृतिक परम्पराओं ने इस भीषण और कठोर संघर्षमय जीवन में भी प्रेम, स्नेह और करुणा की मधुर रागिनी छेड़ दी। यहाँ के युगलप्रेमी दाम्पत्य धर्म की पवित्रता और सतीत्व की रक्षा के लिए मर मिटे। वीरता और प्रेम हाथ से हाथ मिलाकर चले हैं राजस्थान की इस रत्नगर्भा माटी में। गाँव-गाँव में बने हुए स्तूप, चबूतरे, देवरे और विभिन्न स्मारक इन्हीं वीरों और प्रेमियों की अमरगाथा मूक कंठ से गा रहे हैं। काल के अखण्ड प्रवाह को चीरती हुई ये गाथाएँ मानव-हृदय के अज्ञात कोनों को मधुर रस से सिक्त कर देती हैं। उसे लगता है कि वह देश, काल और जाति के क्षुद्र बन्धनों को लाँघ कर विश्व-मानव के विराट मन्दिर में पहुँच गया है, जहाँ रस ही रस है, आनन्द ही आनन्द है। राजस्थानी साहित्य की जड़ें लौकिक जीवन में बहुत गहरी पैठी हुई हैं। इनसे निसृत रस हममें वासना की भावना नहीं जगाता। वह हमें आत्म-समर्पण, त्याग और बलिदान का पाठ पढ़ाता है।

राजस्थानी साहित्य प्रेरणा और शक्ति का साहित्य है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देना इस साहित्य का मूल भाव रहा है। वीरता के क्षेत्र में जहाँ इस साहित्य ने उच्चतम कीर्तिमान स्थापित किये,

वहाँ प्रेम के क्षेत्र में भी इसके द्वारा कई रंगीन चित्र चित्रित हुए। भक्ति के क्षेत्र में जहाँ इस साहित्य ने भक्त और भगवान के कई मधुर सम्बन्धों को वाणी दी, वहाँ रीति के क्षेत्र में कई नवीन काव्यशास्त्रीय मानदंड स्थापित कर, अपना विशिष्ट व्यक्तित्व प्रतिफलित किया।

यहाँ संक्षेप में राजस्थानी वीर साहित्य की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

[१]

वीररसात्मक साहित्य राजस्थान के सहज जीवन की अभिव्यक्ति है। यह मृत्यु के साथ खेलने वाले वीरों का साहित्य है और ऐसे कवियों द्वारा रचा गया है जिन्होंने प्रत्यक्ष मृत्यु का आह्वान कर लोहे से लोहा बजाया था। अंग्रेज इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड इस उत्सर्गमयी धरती के इतिहास के स्वर्णिम पन्नों को देखकर कह उठे, 'राजस्थान की भूमि में ऐसा कोई फूल नहीं उगा, जो राष्ट्रीय वीरता और त्याग की सुगन्ध से भरकर न झूमा हो, वायु का एक भी झोंका ऐसा नहीं उठा जिसकी झंझा के साथ युद्ध देवी के चरणों में साहसी युवकों का प्रयाण न हुआ हो।' इस साहित्य में 'पटरानियों के अट्टहास, नायक-नायिकाओं के गुप्त मिलन और राजमहलों में विलास-वैभव का वर्णन नहीं है। इसमें है रणोन्मत्त राजपूत वीरों, मरणातुर राजपूत महिलाओं और रणांगण की रक्तरंजित हाय-हत्या का भावमय चित्रण।[1] आदर्श देशप्रेम, स्वातन्त्र्य भावना, जातिगत स्वाभिमान, शरणागत वत्सलता, प्रतिज्ञा-पालन, टेक की रक्षा आदि भावों के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा इस साहित्य में हुई है। विश्वकवि रवीन्द्र राजस्थान के वीररसपूर्ण गीतों को सुनकर झूम उठे। उनके मुख से अनायास ही ये स्वर फूट पड़े —"मैं तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है! वे लोगों के स्वाभाविक उद्गार हैं। मैं तो उनको सन्त-साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ—वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं।"

राजस्थानी वीररसात्मक साहित्य की प्रमुख विशेषता है, उसका अनुभूतिमय चित्रण। यहाँ कवि, केवल मनोरंजन या धन के लोभ के कारण काव्य-सर्जना नहीं करता था। वह देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिए सैन्य-बल और शस्त्र-बल की तरह राजा-महाराजाओं के लिए आवश्यक अंग था। वह अपनी ओजस्विनी वाणी एवं वीरदर्पपूर्ण कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित कर, उनमें देश की लौ पर पतंगों की भाँति मर मिटने की प्रेरणा भरता था। यही नहीं, समय पड़ने

१—डॉ. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ६३

पर स्वयं हाथ में तलवार लेकर, युद्ध-भूमि में कट मरता था। तलवार और तूलिका का धनी होने के कारण उसकी कविता में एक विशेष प्रकार की सजीवता और वास्तविकता होती थी। अन्य भाषाओं के कवियों को यह अवसर प्राप्त न था। वे युद्ध-क्षेत्र से कोसों दूर बैठकर, सुनी-सुनायी बातों तथा वर्णन-रूढ़ियों के आधार पर वीररस का चित्र अंकित करते थे जो प्राय: अस्पष्ट, अपूर्ण और कमजोर होता था। उसमें प्रभावोत्पादकता की कमी होती थी। वीररस का जो चित्र बनता, वह प्रत्यक्षानुभूति के अभाव में , प्रभावहीन आकर्षण लिये हुए होता। उसमें बाहरी मार-काट, हाय-हत्या आदि का चित्रण तो होता पर योद्धा के अन्तरिम उल्लास, गर्व, धैर्य, पराक्रम, स्वाभिमान, साहस, दुर्दमनीयता, उत्सर्गशीलता आदि मानसिक भावों का अंकन नहीं होता। राजस्थानी वीर काव्य में वीर-वीरांगनाओं के मन में उठने वाले गम्भीर भावों का विश्लेषण, कवि बड़ी तन्मयता के साथ कर सके हैं। इसलिए यह काव्य शक्ति, प्रेरणा और उत्साह का उत्स बन सका।

[२]

राजस्थानी वीर काव्य में नारी का प्रेरणादायी शक्ति-रूप में चित्रण है। यहाँ नारी शक्ति और स्फूर्ति बनकर वीरों के दिल में उतरी है। माँ के रूप में वह अपने पुत्र को 'थण' दिखाकर तथा पत्नी के रूप में अपने पति को 'वळय' बताकर, उनकी लज्जा बचाने के लिए समरांगण में बलिदान होने की प्रेरणा भरती है। यदि उसका पुत्र उसके दूध को लजादे और पति उसकी चूड़ियों को लज्जित कर दे तो वह अपने को वंध्या और विधवा समझ बैठती है। उसका मातृत्व तभी सार्थक है जब वह अपने पुत्र को युद्ध में मरने के लिए जाते हुए देखती है और पुत्र-वधू को अग्नि-स्नान के लिए सन्नद्ध, और उसका पत्नीत्व तब सार्थक है जब वह युद्ध के नगाड़ों की गर्जना सुनकर रति-क्रीड़ा में मस्त अपने पति को अदम्य साहस बटोर कर कह उठती है--'नींदाळू ! अब छोड़णा भीड़ाणा कुच पीन' और मोती भरे थाल से आरती उतारकर उसे युद्ध के लिए विदा करती है तथा मृत्यु प्राप्त होने पर उसके साथ सती होती है। राजस्थान की यह नारी पति की युद्ध से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु पर बलिहारी जाती है। उसे पति के 'कुमैंत' पर गर्व है, पति के 'कवच' पर वह फूली नहीं समाती, पति की तलवार के मूठ के निशान उसके हृदय में गुदगुदी पैदा करते हैं और पति के घावों को ठीक करने वाले नीम के वृक्ष पर वह न्यौछावर है।

यह नारी केवल प्रेरणा ही नहीं देती, अवसर आने पर स्वयं हाथ में तलवार उठाकर अतिथियों का समुचित आदर-सत्कार भी करती है। पति के भागकर युद्ध से लौट आने पर वह उसे ऐसी व्यंग्योक्तियाँ सुनाती है कि उसके मुर्दे दिल में बिजली का वेग दौड़ पड़ता है। इन कवियों ने नारी के इस रूप की कल्पना, शक्ति

की अधिष्ठात्री देवी के रूप में की है। वह बीस भुजावाली सिंहवाहिनी है। जब वह प्रयाण करती है—

> बड़के डाढ वराह, कड़कै पीठ कमट्ठ री।
> धड़कै नाग धराह, बाघ चढ़ै जद बीस-हथ।

यहाँ नारी के माध्यम से प्रेरणादायी वचन कहलाकर वीरों को युद्धार्थ प्रोत्साहित किया गया है। नारी यहाँ शृंगार-रस के आश्रय-आलम्बन के रूप में ही स्वीकृत नहीं हुई है। युद्धार्थ गये हुए वीर नायक की अनुपस्थिति में वीरांगना के हृदय में उठने वाले मानसिक भावों को यहाँ बड़ी ओजस्विनी भाषा में प्रस्तुत किया गया है। कभी उसे लगता है, पति कल लड़ते हुए युद्ध में मारे जायेंगे, तो वह नाइन से कहती है, आज पैरों में मेंहदी मत लगा, कल उनके साथ सती होऊँगी, तब पैर मांड देना,[1] कभी लगता है, पति बिना मरे, बिना विजय प्राप्त किये, घर भाग आयेंगे तो वह निश्चय करती है—अपनी चूड़ियाँ तोड़-फोड़कर बिखेर दूँगी।[2] मनोभावों का यह अन्तर्द्वन्द्व राजस्थानी वीर काव्य में चित्रित नारी की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

[३]

राजस्थानी वीर काव्य की मुख्य विशेषता है, मृत्यु का हँसते हुए आलिंगन करना। अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि ब्राउनिंग ने अपनी एक कविता में लिखा है, "जीवन-भर मैं संघर्ष करता रहा हूँ किन्तु मेरी अन्यतम इच्छा है कि हे मृत्यु ! जब कभी तू आये, चुपके-चुपके आकर मेरा प्राणान्त मत कर देना। प्रत्यक्ष आकर मुझसे युद्ध करना। मैं तो जीवन-भर जूझता ही रहा हूँ, यह एक युद्ध और सही।" राजस्थानी वीरों की भी यही महत्त्वाकांक्षा रही है। वे जीवन-भर जूझने में ही आनन्द मानते रहे। मृत्यु का भय उन्हें कभी विचलित नहीं कर सका। मृत्यु का स्वागत वे एक शुभ मांगलिक पर्व के रूप में ही सदैव करते रहे। यह पर्व सामान्यतः तीन अवसरों पर मनाया जाता रहा। जब कभी किसी शत्रु ने माँ धरती को छीनने का प्रयत्न किया, बलात् धर्म-परिवर्तन की कार्यवाही की और शक्तिरूपा नारी के सतीत्व-हरण का प्रयत्न किया,[3] तब वीर योद्धा केसरिया बाना

१—नायण ! आज न मांड पग, काल्ह सुंणीजै जंग।
धारां लागै जैधणी, तो दीजे घण रंग।

२—विण मरियाँ विण जीतियाँ, जो धव आवै धाम।
पग-पग चूड़ी पाछटूं, तो रावत-री जाम ।।

३—धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पडंतां ताव।
ते दीहा जिय मरण रा, कहा रंक कहा राव ।।

पहनकर रण-क्षेत्र में उतर पड़े और वीर रानियाँ सोलह श्रृंगार कर चिता पर चढ़ गईं।

मरण के इस सहज वरण में वीर-वीरांगनाओं का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि वीर को धरती पर अक्षय कीर्ति[१] और स्वर्ग में अप्सराएँ मिलेंगी तथा नारी को अपने पति के साथ चितारोहण करने पर स्वर्ग में अमर सुहाग की प्राप्ति होगी। नारी का यह आत्म-बलिदान वीर पुरुष से भी अधिक स्पृहणीय है। योद्धा तो प्रतिशोध लेने की खुमारी में मार कर मर सकता है पर नारी का बिना किसी प्रतिशोध व प्रतिकार के इस तरह मृत्यु का आलिंगन कर लेना, उसके व्यक्तित्व की अदम्य तेजस्विता का प्रतीक है। 'मार कर मरना सरल है, उसमें बदले का एक नशा होता है जो चारों ओर के खतरे को नहीं देखता और जो खून पीने को उतावला है पर हँसते-हँसते, अपनी इच्छा से, जल-जल कर मरना, इसमें त्याग की सीमा है।[२]

मृत्यु से डरकर युद्ध से भाग आने वाले की यहाँ बड़ी भर्त्सना की गई है। 'कूड़ा,' 'भूंडा,' 'कुळ-खोय' आदि विशेषणों से सम्बोधित कर उसका तिरस्कार किया गया है। वीर का वीरत्व इसी में माना गया है कि वह लड़ता हुआ युद्ध में काम आ जाय।[३] कवि लोग ऐसे नायक को काव्य के माध्यम से अमर करने में अपनी लेखनी का जौहर दिखाते रहे हैं। गाडण शिवदास ने अपने काव्य-नायक अचलदास को[४] तथा खिड़िया जग्गा ने राठौड़ रतनसिंह की मृत्यु को[५] अमर बना दिया।

[४]

राजस्थानी वीर काव्य में धरती और गाय के प्रति अगाध प्रेम और प्रतिशोध की भावना का ओजस्वी रूप देखने को मिलता है। धरती के प्रति मनुष्य का जो

१—मरदां मरणौ हक्क है, ऊबरसी गल्लांह।
सापुरसांरा जीवणां, थोड़ा ही भल्लांह।

२—रामनाथ सुमन : वेदी के फूल

३—वीर और कायर की मृत्यु का अन्तर कविराजा मुरारिदास जी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

क—मरै वीर कायर मरै, अन्तर दोनां एह।
माटी में कायर मिलै, धरै सूर जस देह।।

ख—मरै वीर कायर मरै, अन्तर मरण अपार।
करै सोच घर कायरां, सुभड़ सुजस संसार।।

४—अचलदास खीची री वचनिका

५—वचनिका राठोड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री

नैसर्गिक प्रेम-सम्बन्ध जुड़ जाता है, उसके निर्वाह के लिए वह सर्वस्व बलिदान करने को तैयार रहता है। धरती के प्रति उसका सम्बन्ध केवल भौतिक ही नहीं रहता, अपने पूर्वजों की अनन्त स्मृतियाँ उसके साथ लिपटी रहती हैं, जिससे वह सम्बन्ध आत्मीय बन जाता है। ऋषि-मुनियों ने इसे सम्बोधित कर कहा—'हे धरती ! तुम हमारे पूर्वजों की माता हो, तुम्हारी गोद में जन्म लेकर पूर्वजों ने अनेक विक्रम के कार्य किये हैं "यस्यां पूर्वेजना विचक्रिरे।" इसकी महिमा स्वर्ग से भी बढ़कर है। धरती हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्या।' इस आत्मीय भाव के कारण ही धरती के प्रति श्रद्धावनत होकर हमारा सिर झुक जाता है—'नमो मात्रे पृथिव्यै।' भूमि के इस स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जागृत होंगे, उतनी ही हमारी राष्ट्रीयता बलवती हो सकेगी। 'यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचार-धाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीयता पृथ्वी के साथ नहीं जुड़ी, वह निर्मूल होती है। राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा।[१]

कहना न होगा कि राजस्थानी वीर काव्य में धरती के प्रति इस प्रेम का स्वाभाविक विकास हुआ है। वह स्वार्थ-त्याग, आत्म-बलिदान और प्रतिशोध-भावना के साथ घुलमिल कर आगे बढ़ा है। यहाँ धरती की वधू के रूप में कल्पना की गई है। वीर दूल्हा बना हुआ है, वह धरती का वरण करके ही रहेगा। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का आदर्श लेकर यहाँ के वीर नायक आगे बढ़े हैं—'वसुधा वीरां री वधू, वीर तिको ही बींद।' महाराणा प्रताप जैसे मातृभूमि के रक्षक वीर धरती के प्रेम के कारण ही राजसी भोगविलासों को छोड़कर वन-वन की खाक छानते फिरे। उनके मनों में मातृभूमि का आदर माता के ही बराबर था—
'माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी।'

यहाँ की वीर माता ने अपने पुत्र को झूला झुलाते हुए यही सिखाया, 'इळा न देणी आपणी'—अपनी पृथ्वी किसी को मत देना। यहाँ की वीर पत्नी ने शत्रुओं को चेतावनी दी—'मुहंगा देसी झूंपड़ा जे घर होसी नाह।' यहाँ के वीरों के लिए अपने झोंपड़ों की कीमत महलों से कहीं बढ़कर है—वारीजै भड़ झूंपड़ां, अधपतियां आवास।' किसकी हिम्मत है जो इन झोंपड़ों का एक तिनका भी छीन सके—
'वालम आयां वचसी, अड़बां रो त्रण एक।'

धरती का यह प्रेम प्रतिशोध के शौर्य से दीप्त होकर अधिकाधिक निखरता रहा है। राजस्थान का इतिहास प्रतिशोध के भावों से भरा पड़ा है। पैतृक परम्परा से चले आ रहे शत्रुओं से प्रतिशोध लेने में भी यहाँ के वीर बालक कभी पीछे

१—डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल : राष्ट्र का स्वरूप

नहीं रहे। अपने वर का प्रतिकार करना तो कुलधर्म माना ही जाता रहा पर यहाँ का वीर नायक जगत् का वैर उधार लेकर, उन्हें चुकाने में अपने वीरत्व की सार्थकता मानता रहा। यह सही है कि इस प्रतिशोध के कई अधम व विकृत रूप भी—पारस्परिक फूट के कारण—हमारे सामने आये पर समग्र रूप से प्रतिशोध की भावना ने जातिगत स्वाभिमान और धरती के प्रति प्रेम-भाव की लौ को प्रज्वलित बनाये रखा।[1]

धरती की ही तरह गाय के प्रति जननी-भाव और उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना राजस्थानी वीर काव्य की अन्यतम विशेषता है। गोमाता के रूप में गाय तो श्रद्धा की प्रतीक है ही पर गाय की रक्षा करने वाले, उसके लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले वीर पुरुष भी जनमानस के श्रद्धा-भाजन और सम्मान के पात्र रहे हैं।[2] गोधन के अनन्य रक्षक राठौड़ पाबूजी और चौहान गोगाजी तो लोकदेवता के रूप में आज भी समादृत हैं। पाबूजी ने विवाह के फेरे बीच में छोड़कर देवल चारणी की गायों को बचाने के लिए खीचियों (जींदराव) से भीषण युद्ध किया और वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गये। गोगाजी ने घायल होकर भी बादशाही फौज से गायों की रक्षा की। पाबूजी की वीरता के गीत

१—प्रतिशोध से हैं होती शौर्य की शिखाएँ दीप्त।
प्रतिशोधहीनता नरों में महापाप है।। कुरुक्षेत्र : दिनकर

२—कवियों ने ऐसे वीरों के आत्म-बलिदान को अपनी वाणी में अमर कर दिया है, यथा—

क. फजरां चौपा घेरिया, धूळी अंबर धूंद।
कै धण माट बिलोवसी, कै घट जासी घूंद।।
—सूर्यमल्ल मीसण : वीर सतसई

ख. सिर पड़िया सब सांकळे, सुरभ सत्रवां संग।
खुर खुलिया खग नहं खुलै, रंग विधाता रंग।। १५६।।
—मुकनसिंघ : रंग रा दूहा

ग. पड़ियां पछै धेन ली पेळा, ऊभां पगां न दीधी एक।
चवना खुरां सुरी सह चाली, टूक टूक ऊपर पग टैक।।
—भारथदान

घ. जूंझार रतनसिंह मोरडूंगा के प्रति रावल नरेन्द्रसिंह का यह सोरठा देखिए—

गायां घिरतां गाज, आगै अणमी अवनपत।
काया कीरत काज, तुडवाई तरवारियाँ।।

राजस्थान में 'पाबूजी रा पवाड़ा' नाम से प्रसिद्ध हैं और ये जगह-जगह गाये जाते हैं।[1]

[५]

राजस्थानी वीर काव्य में स्वामी और सेवक के मधुर सम्बन्धों की बड़ी अर्थपूर्ण व्यंजना मिलती है। यहाँ का स्वामी, सहनशील और सबके साथ समान-भाव से व्यवहार करने वाला है। इसके सेवक भी उसी के अनुरूप वीर और मर मिटने वाले हैं। स्वामी का अन्न उनके लिए तक्षक के विष के समान है। बिना युद्ध किये वह पचता नहीं। वे अपने स्वामि-धर्म के निर्वाह में कट मरते हैं। अपना कलेजा चील को फेंक कर वे उससे स्वामी के नेत्रों की रक्षा करते हैं। विजयी होकर लौटने पर इन सेवकों का खूब आदर-सम्मान होता है। यहाँ तक कि स्वयं रानियाँ उनके घावों के उपचार के लिए अपने हाथों से नीम पीसती हैं और गज मोतियों से उनकी भुजाओं की पूजा करती हैं। स्वामी के युद्ध के नगाड़े ऐसे सेवकों के बाहु-बल पर ही गर्जना करते हैं। सच्चा सेवक वही है जो युद्ध-भूमि में टुकड़े-टुकड़े होकर गिर भले ही जाय, पर रणक्षेत्र से भगे नहीं।[2]

[६]

राजस्थानी वीर काव्य की एक अन्यतम विशेषता है वीर-भावों के विशिष्ट प्रतीकों का प्रयोग। इन प्रतीकों में सिंह, सूअर, धवल, नाग और पहाड़ का विशेष प्रयोग किया गया है। सिंह के बहाने वीर मनस्वी पुरुषों की तेजस्विता, प्रताप, पराक्रम और आतंक का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। सिंह किसी दूसरों के बने-बनाये रास्तों पर नहीं चलता, वह अपना रास्ता स्वयं निर्मित करता है। जिस मार्ग से वह निकल जाता है, उस मार्ग के खेतों की घास चरने की हिम्मत हिरनों को स्वप्न में भी नहीं हो सकती।[3] सिंह किसी को अपना सहायक नहीं

१—पाबूजी सम्बन्धी गीतों के दो उदाहरण देखिए—

क. नेह निज रीझ री बात चित न धरी, प्रेम गवरी तणो नांहि पायो।
राजकँवरी जिका चढ़ी चँवरी रही, आय भंवरी तणी पीठ आयो।।

ख. हुवे मंगळ धवळ दमंगळ वीर हक, रंग तूठो कमध जंग रूठो।
सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड़ सिर, विखम उण मोड सिर लोह वूठो।।

२—सूरा सोइ पिछाणियै, लड़े धणी रै हेत।
पुरजा-पुरजा कट पड़ै, तोय न छांडै खेत।।

३—जिण मारग केहर वुके, लागी वास तिणांह।
ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह।।

बनाता, उसका सहायक उसका 'हाथळ का बळ' होता है जिसके सहारे वह निर्भय घूमता है। सिंह के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है उसका स्वातन्त्र्य-भाव। वह किसी के बन्धन को स्वीकार नहीं कर सकता। जो बन्धन को स्वीकार कर लेता है उसका भौतिक मूल्य चाहे कितना ही बढ़ जाय पर उसकी आत्मा की तेजस्विता नष्ट हो जाती है। हाथी के गले में लोग बन्धन डालकर अपनी इच्छानुसार उसे चला लेते हैं, इसीलिए वह एक लाख रुपयों में बिकता है, यदि सिंह भी अपने गले में बन्धन स्वीकार कर ले तो वह एक वक्त दस लाख रुपयों में बिकने लग जाय।[१] पर यह असम्भव है। वीर पुरुष किसी की अधीनता स्वीकार कर ही नहीं सकता।

सूअर के बहाने वीर योद्धा की दुर्दमनीयता, भीषण प्रहार-शक्ति और नेतृत्व-गरिमा का चित्र अंकित किया गया है। सूअर का राजस्थानी वीर साहित्य में विशेष महत्त्व है। यहाँ के राजघरानों में सूअर का शिकार करना अधिक प्रिय और दुष्कर माना जाता रहा है। उसकी डाढ़ें मजबूत होती हैं। वह निर्भीक होकर गोलियों की बौछार सहन करता हुआ भी सीधा चलता रहता है। यद्यपि हिरण के लम्बे सींग होते हैं पर उसका स्वभाव भागने का होता है, जबकि सूअर छोटी दाँती वाला होकर भी शत्रु-समूह को घायल कर देता है।[२]

धवल अर्थात् बैल सन्त काव्य में अकर्मण्यता का प्रतीक बनकर आया है पर वीर काव्य में उसके बहाने वीर सेवक की कुल-मर्यादा की रक्षा का भार वहन करने की शक्ति एवं स्वामिभक्ति का बखान किया गया है।[३]

नाग के बहाने वीर योद्धा की प्रतिशोध एवं क्रोध-भावना को व्यक्त किया गया है। नाग को छेड़ते ही वह पीछे पड़ जाता है और छेड़ने वाले का प्राण लेकर ही रहता है।[४]

१—गइवर-गळइ गळात्थियउ, जहं खंचइ तहं जाइ।
सीह गळत्थण जइ सहइ, तउ दह लक्खि विकाइ

—अचलदास खीची री वचनिका

२—हिरणां लाँबी सींगड़ी, भाजण तणौ सभाव।
सूराँ छोटी दाँतली, दै घण थट्टां घाव।।—हालाँ झालाँ रा कुंडलिया

३—सींगाळो अवखल्लणौ, जिण कुळ हेक न थाय।
जास पुराणी व्राड़ जिम, जिण जिण मत्थै पाय ।।

—हा० झा० री कुंडलिया

४—बांबी भीतर पौढ़ियो, काळो दबकै काय?
पूंगी ऊपर पाधरो, आवै भोग उठाय।।

—सूर्यमल्ल मिश्रण : वीर सतसई

पहाड़ के माध्यम से वीर नायक की दृढ़ता, आकार की विशालता और भयंकरता का चित्र खींचा गया है। बारहठ नरहरदास का कहना है कि धवलगिरि तुल्य धूहड़ राठौड़ जसवंतसिंह, ढोल आदि रणवाद्यों के बजने पर जब गरजने लगा, तब विरोधी यवन पीड़ित हो गये। उनकी रक्षा के लिए वहाँ ऐसा कोई भी नहीं दिखाई दिया, जो कंधे से कंधा मिलाता—

घड़हड़ीयो सुणे बाजते ढोले,,
हव वागी कलपंत हुवा।
धूहड़ उलटते धवलागिर,
खोद पखै कुण धरै खवा ?

हिमाद्रि तुल्य महाराज जसवंतसिंह जब बर्फ की तरह शस्त्र-वर्षा करने लगा, तब शाह के पक्ष की यवन सेना कट-कट कर गिरने लगी—

आईसां तणा बरफ ऊपाड़िया,
केवड़िया गुड़िया बंगाळ।
जसो पहाड़ हेमगिर जाणे,
तरफ तरफ तूटे रिणताळ॥

कहना न होगा कि इन प्रतीकों के प्रयोग से वीर भाव अधिक मार्मिक और प्रभावक बन गये हैं।

[७]

राजस्थानी वीर काव्य में वीर रस के साथ-साथ श्रृंगार रस का अद्भुत मेल है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह माना गया है। उत्साह को प्रबुद्ध करने में अन्य कारणों के साथ-साथ प्रेम-भाव भी प्रमुख कारण रहा है। सामन्त युग में वीरता का प्रदर्शन कर, राजकुमारियों को रिझाकर, उनसे विवाह करने की एक सामान्य परिपाटी सी बन गई थी। कवि लोग जहाँ वीर योद्धा के वीरतापूर्ण कार्यकलापों का वर्णन करते, वहाँ उसे युद्धार्थ प्रेरित करने के लिए सुन्दरियों के रूप-वर्णन एवं विवाह-प्रसंग में अपनी कलम तोड़ देते। यह प्रवृत्ति युद्ध-वर्णन में विषकन्या के विराट सांगरूपक के निर्माण का कारण बनी। वीर नायक दूल्हा बना, उसके साथी सैनिक बराती बने और शत्रु-सेना बनी दुल्हिन।

दूदो विसराल कृत 'रतनसी खींवावत री वेल' में इस सांगरूपक का सम्यक् निर्वाह किया गया है।[1] यहाँ शत्रु-सेना रूपी विषकन्या ने सोलह श्रृंगार सजे।

१—विशेष विवरण के लिए देखिए—
राजस्थानी वेलि साहित्य : डॉ. नरेन्द्र भानावत, पृ० ७९-८३

तीक्ष्ण भालों की अणी के उसके नाखून थे और तेज चमचमाते हुए कुंत ही कटाक्ष थे। दुश्मनों की सेना को नष्ट करने वाले आयुध ही उसके लिए सवालक्ष हार थे। दुल्हिन के इस रूप पर मोहित होकर ही काव्य-नायक रतनसिंह ने शीशा डसने वाली तोपों के वक्र नेत्रों से प्रणय के इशारे किये, तलवार के रूप में कुसुमायुध के पंचशरों का सन्धान किया, सेना की हुंकारों के मंगल गीतों के बीच सिर पर मौड़ धारण किया और मन में क्षत होने का अनुराग लेकर कृपाण की मेखला बाँधे विवाह के नगाड़े बजवाये।[1] विवाहोपरान्त वर-वधू के समागम का भी बड़ा मनोहारी चित्र अंकित किया गया है। रतनसिंह ने तलवारों के प्रहारों से मीर-सेना रूपी युवती की कंचुकी के समान कसने तोड़-तोड़ कर उसे रति क्रीड़ा में परिश्रान्त कर दिया।[2]

ईसरदास बारहठ कृत 'हालाँ झालाँ रा कुंडलिया' में भी विषकन्या का यह रूपक बड़े विस्तार के साथ आया है। यहाँ हाला जसाजी दूल्हा बने हैं और झाला रायसिंह की सेना बनी है दुल्हिन। पौरुषयुक्त जसाजी कुँवारी सेना रूपी कामिनी को ब्याहने के लिए चले हैं अपनी भुजाओं पर सारा भार उठाकर—

चढ़ि पोरिस वर सोह चढ़ि, चढ़ि रिण तोरणि चालि।
कुंवारी घड़ कड़तळां, झूँझ भार भुज झालि ॥२४॥

नायिका ने पति के सुन्दर कवच को देखकर चँवरी ही में जान लिया कि उस (पति) का सिर कट जाने पर भी धड़ लड़ता रहेगा और उसके प्रहारों से हाथी तक लुढ़केंगे पर वह मुश्किल से गिरेगा—

मैं परणंती परखियौ, सूरति पाक सनाह।
धड़ि लड़िसी, गुड़िसी गयंद, नीठि पड़ेसी नाह ॥२५॥

और अब मिलन-बेला उपस्थित हो गई। दुल्हिन की कंचुकी के बंधन अलग-अलग हो गये। यौवन में मतवाला योद्धा जसा उसके साथ अंग से अंग मिलाकर सो गया—

१—सीहण डसण तण वयण नयण सिंध, धनष मदन सरणध पंच सु धूप।
रूप कियो तो ओपरी रतन, रिम घडि नौवते रह तस रूप ॥१६॥
अति दिन लगन महुरति उपड़ि, धवळ मंगळ दळ हुकळि धौड़।
मीर घड़ा परणण कुंमारी, मारू रैणि वांधियौ मौड़ ॥२०॥
मन खत राग बंधालक मौजा, कटि मेखला कसियै कुरवांण।
आवी मीर घडा ओपडांखी, निधसि तेने बरि नी आंण ॥२२॥

२—रिणवट ख्याग खत्रीवटि रतनै, घाई मनाई मीर घडा।
लोहां खीयै तोडिया लाडै, कांचू जोसण कसण कडा ॥४८॥

पिलंगि महारिण पौढ़ियौ, काळो भलाँ कहाय।
जस जोबण साज जसौ, मणिमथ फौज मल्हाय ।।
मल्हांवण फौज बिसकामणी मानियौ।
इसौ दीठौ नको वींद अहवानियौ ।।
अभंग जसवंत जुधि काजि करि अंगो अँगि।
पौढ़ियौ घड़ा पौढ़ाय चौरंग-पिलंगि ।।२७।।

कितना वीरदर्पपूर्ण सांगरूपक है विवाह और मृत्यु का। रीतिकालीन विलासिता इसकी पवित्रता को छू नहीं सकती, उच्छृंखल उन्माद वीर भावों को दबा नहीं सकता। यहाँ प्रेम की परिणति बलिदान में होती है। दुल्हिन पैरों में मेंहदी का रंग लिए, हाथों में नारियल, अधरों पर मुस्कान और हृदय में उल्लास लिए ज्वाला का श्रृंगार करती है, जीवन को जौहर दिखाती है और—

सूरातन सूरां चढ़ै, सत सतियां सम दोय।
आड़ी धारां उतरै, गणै अनल नूं तोय ।। (बांकीदास) की भावना

चरितार्थ करती है।

श्रृंगार-भावना के प्रेरक स्थलों—चँवरी, शयनगृह—पर भी ये कवि वीर भावों की दीप्ति जगाते रहे। हथलेवे के समय दुल्हिन ने दूल्हे के हथेली पर के तलवार की मूठ के निशान की चुभन से जान लिया कि पति उसके चूड़े को नहीं लजायेंगे।[1] विवाहोपरान्त घर में प्रवेश करते समय नगाड़े की ध्वनि सुनकर दूल्हे ने दुल्हिन के अंचल से बँधी गाँठ छुड़ाली और युद्ध में जाने के लिए अपने घोड़े की पीठ जा थपथपाई।[2] शयनगृह में क्रीड़ा करते समय जिस पति को अपनी पत्नी के स्तन भी कठोर लगते थे वही रणक्षेत्र में जाकर सोल्लास भालों के प्रहार, वाणों की बौछार और गजदन्तों की चोट सहन करता रहा।[3] कैसा अद्भुत वीरत्व है यह जो मादकता और विलासिता के घूंट पीकर भी गरल को पचाने की क्षमता रखता है।

[८]

वीर रस के साथ वात्सल्य रस का समन्वय भी राजस्थानी वीर काव्य की

१—हथळेवै ही मुट्ठि-किण, हाथ विलग्गा माय।
लाखां वातां हेकलो, चूड़ो मो न लजाय ।। —सूर्यमल्ल मिश्रण

२—बंब सुणायो वींद-नूं, पैसंतां घर आय।
चंचळ साम्हो चालियो, अंचळ बंध छुड़ाय ।। —सूर्यमल्ल मिश्रण

३—सेळ घमोड़ा किम सहया, किम सहिया गज दंत।
कठिण पयोहर लागताँ, कसमसतौ तू कंत ।। —ईसरदास

अन्यतम विशेषता है। यहाँ माता अपने पुत्र को लोरी सुनाती है पर इसलिए नहीं कि 'मेरे लाल को आउरि निंदरिया' बल्कि इसलिए कि 'इळा न देणी आपणी' की भावना उसकी रग-रग में उतर जाय। वह अपने बच्चे को दूध इसलिए नहीं पिलाती कि 'तेरी चोटी बढ़े' बल्कि इसलिए कि 'धोळा दूध पै कायरता रो कालो दाग न लाइजै थूं।' वह अपने बच्चे को इसलिए झूले में झुलाती है कि 'इतरी बार हिलाइजे रे धरती, जितरा झोळा मैं थनैं दयूं'। वह अपने पुत्र को पाल-पोस कर इसलिए बड़ा करती है कि 'भारत माँ रो भार उतारजे, मत न भार बढ़ाइजे थूं।' माँ के इस वात्सल्य भाव ने जो उसे वीरता का पाठ पढ़ाया उसी का प्रत्यक्ष प्रमाण था पिता के पहले पुत्र का बलिदान—

> बैठो जोड़े बाप रै, बांध कसूंबल पेच।
> बेटो घर आयो नहीं, धोळी बंधण हेत॥

और अगर बच्चा छोटा है, उसे चलना नहीं आता, तो भी कोई बात नहीं। क्षत्रियत्व इसके रग-रग में रम गया है। इसलिए बाप के कटने पर और माँ के सती हो जाने पर वह अँगूठा चूस-चूस कर घर की रखवाली कर रहा है—

> बाप कट्यो मायड़ बळी, घर सूनो जाणीह।
> पूत अँगूठो चंखनै, राख निगराणीह॥

सच तो यह है कि यहाँ के योद्धाओं को रणभूमि रूपी देवी की पूजा-अर्चना करने में ही विशेष आनन्द आता है। रक्त ही उनके लिए कुंकुम है, शत्रुओं के शीश ही अक्षत हैं और असि-संचालन ही आरती का आरोह-अवरोह।

[६]

युद्ध के सम्बन्ध में लोक-विश्वास और युद्ध-वर्णन की विशिष्ट रूढ़ियाँ राजस्थानी वीर काव्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वीर काव्य सामान्यतः ऐतिहासिक पुरुषों को नायक मानकर लिखे गये हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक चरित काव्यों पर विचार करते हुए लिखा है 'ऐतिहासिक चरित का लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हैं जो थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल गये है।'[1] डॉ० द्विवेदीजी का यह कथन वृहत्काय अर्द्ध ऐतिहासिक चरितकाव्यों तथा प्रेमाख्यानक काव्यों पर विशेष रूप से लागू होता है। राजस्थान में जो विशुद्ध वीर काव्य रचे गये उनमें कथानक-रूढ़ियाँ कम, वर्णन-रूढ़ियाँ ही अधिक मिलती हैं।

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४

प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यों का आरंभ मंगलाचरण से होता है। मंगलाचरण में सरस्वती, गणेश आदि की स्तुति की जाती है। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी का भी स्तवन किया जाता है। सामान्यतः सभी प्रबन्धकाव्यों में चरित-नायक की वंशावली का उल्लेख मिलता है। वंशावलियों का आरंभ प्रायः किसी दिव्यगुणोत्पन्न महापुरुष या देवी-देवताओं से जोड़ा जाता है। कभी चरित-नायक का जन्म 'अग्नि से उत्पन्न वंश' विशेष में बताया जाता है[1] तो कभी राज-वंशावली का प्रारंभ ब्रह्मा से किया जाता है।[2]

कथा-तत्त्व में दृढ़ता और रोचकता लाने के लिए प्रायः सभी काव्यों में अति-प्राकृत तत्त्वों की अवतारणा की जाती है। इन अति प्राकृतिक तत्त्वों में युद्ध-भूमि में मृत वीर का स्वर्ग पहुँचना, वहाँ अप्सरा द्वारा उसका वरण करना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और अन्य देवताओं द्वारा उसका स्वागत करना, युद्ध-भूमि में महादेव, योगिनियों, भूत-प्रेत, डाकिनियों आदि का पहुँचना, के प्रसंग सम्मिलित किये जा सकते हैं।[3] विषकन्या के प्रसंग को भी कई कवियों ने अपनाया है।[4] अपने आश्रयदाता के शौर्य, साहस, चतुराई, दानशीलता आदि उच्च गुणों की व्यंजक किसी भी संभाव्य घटनावली की उद्भावना प्रायः ये कवि करते रहे हैं। इसी का परिणाम है कि इनके लौकिक चरित्र भी इस प्रकार वर्णित हुए हैं कि वे अलौकिक बन गये हैं।

राजस्थानी वीर काव्यों की एक प्रमुख विशेषता उनमें वस्तु-वर्णन की प्रधानता है। सामान्यतः इन काव्यों में युद्ध-वर्णन, घोड़ों, योद्धाओं, सैनिक, हथियारों आदि के नामों की विस्तृत परिगणना मिलती है। यथाप्रसंग स्थानों, दुर्गों, नगरों, बाग-बगीचों आदि का भी वर्णन मिलता है। स्त्री के सौन्दर्य-निरूपण व प्रकृति के विविध रूप भी यथावसर आये हैं।

१—देखिये—पृथ्वीराज रासो

२—देखिये—सूरजप्रकाश : करणीदान

३—देखिये—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री

४—देखिये—रतनसीं खींवावत री वेल (दादू विसराल) तथा हालाँ-झालाँ रा कुंडलियाँ (बारहठ ईसरदास)

डॉ० एल. पी. तैस्सितोरि ने इस सम्बन्ध में लिखा है

The author has developed the simile of the hero who like a bridegroom goes to spouse the enemy army, a simile common in bardic poetry.—Descriptive catalogue : section II Part I, P. 70

[१०]

राजस्थानी वीरकाव्य में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रयुक्त छन्दों में दोहा[1], कवित्त[2], कुण्डलिया[3] गाहा, पाधड़ी, भुजंगप्रय।त, साटक, त्रोटक, रसावला, झूलणा, मोतीदाम, निसाणी आदि उल्लेखनीय हैं।

१—डिंगल में दोहे के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। मुख्य भेद ये हैं—

क. **शुद्ध दूहो**—यह हिन्दी का दोहा छंद है।

ख. **सोरठियो दू ो**—यह हिन्दी का सोरठा छन्द है।

ग. **वडो दूहो**—इसमें पहले और चौथे चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं तथा दूसरे और तीसरे में तेरह-तेरह। इसका दूसरा नाम सांकळियो दूहो भी है।

घ. **तुम्बेरी दूहो**—यह बड़ दूहे का उलटा है, अर्थात् इसके पहले और चौथे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह।

ङ. **खोड़ो दूहो**—इसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा चौथे में क्रमशः तेरह तथा छह मात्राएँ होती हैं।

२—हिन्दी में जिसे छप्पय कहते हैं, वही डिंगल में कवित्त कहा जाता है। इसके तीन भेद हैं—

क. **कवित्त**—इसमें छह चरण होते हैं। पहले चार रोला के, शेष दो दोहा के।

ख. **शुद्ध कवित्त**—यह हिन्दी का छप्पय है। इसमें पहले चार चरण रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के होते हैं।

ग. **दोढ़ो कवित्त**—इसमें आठ चरण होते हैं। पहले छह चरण रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के।

३—कुंडलिया छन्द के डिंगल में पाँच भेद हैं—

क. **झड़-उलट**—इसमें पहले एक दोहा, फिर बीस-बीस मात्राओं के चार चरण होते हैं।

ख. **राजवट**—इसमें पहले एक दोहा, फिर चौबीस-चौबीस मात्राओं के छह चरण होते हैं।

ग. **शुद्ध**—इसमें पहले दोहा, फिर चौबीस-चौत्राओंबीस मा के चार चरण होते हैं।

राजस्थानी वीरकाव्य का एक विशिष्ट छन्द है गीत। इसकी जोड़ अन्य भारतीय आर्य-भाषाओं में नहीं मिलती। यह कोई गाने की वस्तु न होकर एक विशेष लय से, ऊँचे स्वर से पढ़े जाने (recite किये जाने) की वस्तु है। इसकी पढ़ने की शैली अति भव्य और प्रभावोत्पादक होती है जिसे सुनकर वीर लोग बलिदान के लिए उद्यत हो जाते हैं।[1] ये गीत एक छोटी कविता के समान होते हैं जिसमें कम से कम तीन दोहले होते हैं। प्रथम दोहले में जिस भाव का वर्णन होता है, उसी भाव का वर्णन शेष दोहलों में भी किया जाता है। प्रतिभाशाली कवि यह वर्णन इस भंगिमा के साथ करता है कि भाव अधिकाधिक स्पष्ट और प्रभावक बनता चलता है। एक दोहले में प्रायः चार चरण होते हैं। एक गीत के सभी दोहले सामान्यतः समान होते हैं। कुछ गीतों में प्रथम दोहले के प्रथम चरण में दो या तीन मात्राएँ या वर्ण अधिक होते हैं जो मानो गीत का आरंभ सूचित करते हैं। गीतों के ७२ या ८४ भेद बताये गये हैं। गीत-साहित्य राजस्थानी साहित्य का एक विशिष्ट और अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। इन गीतों में इतिहास की अलभ्य सामग्री सुरक्षित है। ऐसा कोई वीर, जुझार, त्यागी नहीं हुआ जिस पर एकाध

घ. **दोहाळ**—इसमें पहले दोहा, फिर चौबीस-चौबीस मात्राओं के छह चरण होते हैं। अन्तिम चरण में प्रथम चरण की ही आवृत्ति होती है।

ङ. **कुण्डलनी**—इसमें प्रथम आर्या छन्द होता है, बाद में चार चरण काव्य (रोला) छंद के होते हैं।

१—गीत की प्रभावशीलता और महत्ता के सम्बन्ध में निम्नलिखित विद्वानों की सम्मतियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—

क. As rivers show that brooks exist, as rain shows that heat has existed so songs show that events have happened —Forbes : रासमाला की भूमिका।

ख. These songs are natural and spontaneous. The songs came from the heart and the soul of the charans. They flourished like the rippling brook in the mountain slope, sweet and fresh.—डॉ. सी. कुन्हन राजा, गीतमंजरी :I ntroduction

ग. It was in these songs that foamnig streams of infalliabe energy and indomitable iron courage had flown and made the Rajput warrior forget all his personal comforts and attachments in fight for what was true, good and beautiful. —डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी

गीत न लिखे गये हों। इन गीतों में कई विस्मृत धुँधली घटनावलियाँ पुनर्जीवित हो उठी हैं। गीतों का यह साहित्य राजस्थान की अक्षय सांस्कृतिक निधि है।

राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों के मध्य पद्य के साथ-साथ गद्य के प्रयोग करने की भी परम्परा रही है। पद्य के मध्य सुमधुर, अनुप्रासमयी झंकृत तुकान्त गद्य शैली की छटा देखते ही बनती है। ये गद्य-खंड कई रूपों में मिलते हैं। इन्हें 'वचनिका'[1] नाम दिया गया है। कहीं-कहीं वारता[2], नाम भी मिलता है पर वारता और वात[3] साधारणतया अतुकांत गद्य के लिए प्रयुक्त होते हैं। वचनिका जैसी ही एक रचना दवावैत[4] होती है—यह उर्दू प्रधान खड़ी बोली में होती है।

छन्दों में जिस प्रकार गीत जैसे विशिष्ट छन्द का प्रयोग किया गया है उसी प्रकार अलंकारों में वयणसगाई जैसे विशेष अलंकार का। चारणों ने इस अलंकार

१—वचनिका का उदाहरण :

जग जोत जाण, ऊगो का भाण। मुख-चे प्रमाण, महिराण मान। लाखा सु-दिन, करताब करन। अहिकार राण, दूजेण माण, अरजन वाण। सूरां हसीम, भारथ भीम, नरपति नीम। सेनाधिपत, हमीर मत, सातलह चित। पाताल है पाण, चौईस साख पति राव चहुवाण।

—अचलदास खीची री वचनिका

२—वारता (वचनिका) का उदाहरण :

दिली रा वाका। [१] उज्जेणि रा साका। [२] च्यारि जुग रहसी। [३] कविवात कहसी। [४]

—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री

३—वात का उदाहरण :

इसी परित्यां लड़तां लागतां मरतां मारतां महा अस्टमी भारथ जुध मातउ थउ, त्यां दूसरी अस्टमी आइ संप्राप्ती हुयी। जत्र-तत्र गिद्ध मसाण करक की वाडि। अरधो-अरधी दुवइ दळ आवट्या।

—अचलदास खीची री वचनिका

४—दवावैत का उदाहरण :

ऐसा गढ़ जोधांण और सहर का दरसाव। जिसके चौतरफा बगीचों का डंबर और दरियावों का बणाव। पहिले बगीचों की सोभा कहि के दिखाय। पीछे दरियावों की तारीफ जिस के गुण गाय। सो कैसे कह दिखाये। जल निवाणों का निवास। रतिराज का वास। —सूरजप्रकाश

को कविता के लिए अनिवार्य-सा बना दिया। संसार की शायद ही किसी भाषा में किसी अलंकार का इतनी कठोरता के साथ निर्वाह किया गया हो।

इस अलंकार में वर्णों की सगाई की जाती है। चरण के प्रथम शब्द के आदि-वर्ण को चरण के अन्तिम शब्द के आदि में पुनः लाकर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वयणसगाई अलंकार में चरण के प्रथम शब्द का और चरण के अन्तिम शब्द का आरंभ एक ही वर्ण से होता है।[1] इस अलंकार के बाद वीर काव्यों में अतिशयोक्ति अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। इस अलंकार का प्रयोग दो रूपों में हुआ है। एक संख्यात्मक रूप में और दूसरा चित्रात्मक रूप में। युद्ध-वर्णन, व्यूह-रचना, वैभव-वर्णन, भोज-वर्णन, लूट-वर्णन आदि प्रसंगों में पहले रूप के दर्शन होते हैं। यहाँ कवि विस्तृत सूची देता चलता है। रूढ़िगत संख्याओं का निर्देश करता चलता है। जहाँ संख्या-निर्देश से कवि बच पाया है वहाँ युद्ध की विकरालता, भयंकरता, हाय-हत्या, रक्तपात, सैनिक-भगदड़, लूटपाट, जौहर, अग्नि-स्नान, स्वर्गारोहण, नख-शिख-निरूपण, रणोन्माद, रति-रंग आदि प्रसंगों में दूसरे रूप के दर्शन होते हैं। वीर काव्य को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए खड्गों की खटखटाहट[2], शरों की सरसराहट, हयों की हिनहिनाहट, नूपुरों की छन-छन,[3] पायलों की झनझन तथा किंकिणी की कण-कण को रूपायित करने के लिए ध्वन्यर्थव्यंजना शैली का प्रयोग किया गया है। मानवीकरण जैसे अलंकार भी वहाँ प्रयुक्त हुए हैं जहाँ वीरता को मूर्त रूप दे दिया गया है।

युद्ध-वर्णन में सादृश्यमूलक अलंकारों का विशेष प्रयोग हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का बाहुल्य है। साधर्म्यमूलक अलंकारों में दृष्टान्त, उदाहरण, दीपक, काव्यलिंग जैसे अलंकार आये हैं। अलंकारों के प्रति ये कवि विशेष जागरूक नहीं रहे। काव्य के स्वाभाविक स्वरूप को विकसित करने में ही इनका

१—वर्णों के क्रम से वयणसगाई के कई प्रकार होते हैं जिनका उल्लेख वीर सतसई के कला विधान पर विचार करते हुए पृ० सं० १३४-१३५ पर किया गया है।

२—भड़ाँ धड़ भंजि हुवै बि बि भग्ग।
खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग॥
कड़क्कड़ वाजि धड़ाँ किरमाळ।
बड़ब्बड़ भाजि पड़त वंगाळ॥ —वचनिका राठौड़ रतनसिंघ री

३—झनं झननं भय नुपूरयं।
खननं-खन चूरिय भरि भयं॥ —परमाल रासो

विश्वास रहा। 'वेलि किसन रूक्मणी री' में अलंकारों की जैसी पच्चीकारी है वैसा प्रयत्न वीर काव्यों में नहीं परिलक्षित होता।

इन काव्यों में बीच-बीच में प्रभावशाली सूक्तियों का अच्छा प्रयोग किया गया है। इन सूक्तियों में सामान्यतः किसी न किसी सार्वजनीन सत्य की व्यंजना निहित रहती है। एकाध सूक्तियों के नमूने देखिए—

१. भलउ मंत्र भडिवाह (अचलदास खीची री वचनिका)

२. भरणतउ हुइ एकबार नांउ इसउ प्रव पाइवउ बार-बार

—अचलदास खीची री वचनिका।

३. मरदां मरणौ हक्क है, ऊबरसी गल्लांह

—हालाँ-झालाँ-रा कुण्डलिया

४. इळा न देणी आपणी —वीर सतसई

ये कवि सामान्यतः षट्भाषा प्रवीण हुआ करते थे। ये बहुश्रुत, बहुपठित और बहुज्ञ भी होते थे। कई काव्यों में मिश्रित भाषा-प्रयोग की परम्परा के दर्शन होते हैं। पृथ्वीराजरासो, वंशभास्कर, गजरूपक, लावारासो आदि ग्रंथ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। चन्दवरदायी, ईसरदास, पद्मनाथ, पृथ्वीराज, बांकीदास, सूर्यमल्ल आदि सभी कवि षट्भाषाविद् थे। कहा जाता है कि जब सभी राजपूत युद्ध में व्यस्त रहा करते थे तब उन्हें सैनिकों के प्रोत्साहन के लिए चारणों और वीररसपूर्ण कविता सुनाने के लिए भाटों की बड़ी आवश्यकता होती थी। राजदरबारों में सम्मान उन्हीं चारणों और भाटों को मिल सकता था जो अपनी कला में बहुत प्रवीण होते थे। अतः इस जाति के लोग काव्य-कला-कौशल की प्राप्ति के लिए शिक्षा और अभ्यास में बहुत समय बिताते थे, और संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं के पूरे विद्वान हुआ करते थे।[१] 'वर्णरत्नाकर' में भी भाट-वर्णना के अन्तर्गत भाट को छह भाषाओं के तत्वज्ञ होने की आवश्यकता बताई गई है।[२] कर्नल टॉड ने भी लिखा है कि उस समय कवीश्वर की पदवी उन्हीं को दी जाती थी जो कम से कम छह भाषाओं के ज्ञाता होते थे तथा व्याकरण, छन्द, निरुक्त आदि विषयों में भी प्रवीण होते थे।[३] कवि ही नहीं इनके आश्रयदाता राजपूत लोग भी काव्य-मर्मज्ञ हुआ करते थे। 'रासो' के अनुसार स्वयं पृथ्वीराज

१—हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट : गणेशप्रसाद द्विवेदी, पृ० २१

२—पुनु कइसन भाट

संस्कृत, पराकृत, अवहठ, पैशाची, सौरसेनी, मागधी छह भाषाक तत्वज्ञ।

३—Annals & Antiquities of Rajasthan.

छह भाषाओं के जानकार थे ।[1] अब धीरे-धीरे यह परम्परा लुप्त होने लगी है ।

वीर रस की सृष्टि के लिए सामान्यतः संयुक्ताक्षरों, द्वित्व व्यजनों, टकार और डकार बहुला भाषा के प्रयोग की परम्परा रही है। शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी जाता रहा है। जहाँ-जहाँ ऐसे अप्रचलित एवं कर्णकटु शब्दों के प्रयोग हुए हैं वहाँ-वहाँ भाषा में कृत्रिमता और दुरूहता आगई है। पर ऐसे कवियों की भी कमी नहीं है जो सहज भाषा का प्रयोग कर भी वीर भावों की सुन्दर व्यंजना कर सके हैं। बांकीदास, सूर्यमल्ल आदि कवि इसी श्रेणी के हैं।

राजस्थानी का यह प्राचीन वीरकाव्य प्रधानतः चारण, भाट, आदि लोगों द्वारा रचित साहित्य है। इन लोगों का व्यवसाय ही कविता करना रहा है। हमारे धर्मशास्त्रों में विविध जातियों के व्यवसायों का जहाँ वर्णन किया गया है वहाँ सूत, मागध, बन्दीजन आदि के सम्बन्ध में कहा गया है कि इनका कर्तव्य होता था राजाओं के शौर्य-वीर्य की प्रशंसा करना, युद्ध के समय उनके साथ रहते हुए प्रायः उनके रथों का संचालन करना, युद्ध के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना तथा शान्ति के समय उनके सम्मुख उनके पूर्वजों के वीर कृत्यों व उनके स्वयं के प्रशस्त वीर-कर्मों का प्रशस्ति-गान करना।

राजस्थान जैसे सामन्ती परम्परा के क्षेत्र में इन लोगों को राज्य की ओर से पर्याप्त संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलता रहा। चारणों और भाटों ने डिंगल के विपुल साहित्य का निर्माण किया है। चारणों का राजपूतों के साथ भाई-भाई का सम्बन्ध रहा है ।[2] संकट-काल में राजपूतों के परिवार की रक्षा करना ये अपना धर्म समझते थे। चारण आला ने ही बचपन में राव चूंडा को पालापोसा था। राजपूतों की ओर से चारणों को अभयदान मिला होता था। वे अवध्य समझे जाते थे। चारण राजपूतों की याचक जाति रही है। इस जाति के लोग राजपूतों को छोड़कर किसी अन्य जाति से नहीं माँगते ।[3] कुछ ऐसे चारण परिवार भी मिलते हैं

१—संस्कृतं प्राकृतं चैव अपभ्रंशः पिशाचिका।
मागधी सूरसेनीच, षट् भाषाश्चैव ज्ञायते।

—पृथ्वीराज रासो भाग-१, पृ० २९ : कविराव मोहनसिंह

२—इस विषय में जोधपुर के महाराजा मानसिंह का यह दोहा प्रसिद्ध है—

चारण क्षत्री भाइयां, जा घर खाग तियाग।
खाग तियागा वाहिरां, तासुं लाग न भाग।।

३—क. बीकानेर के चारण कवि लच्छूराम का इस सम्बन्ध में यह दोहा द्रष्टव्य है—

जो राजाओं द्वारा 'अयाचक' के विरुद से विभूषित किये गये हैं। ये अपने स्वामी (राजा) के अतिरिक्त अन्य किसी राजा या सामन्त से दान अथवा पारितोषिक नहीं लेते। इस संदर्भ में जोधपुर के कविराजा मुरारिदानजी 'अयाचक' प्रसिद्ध ही हैं। वर्तमान में जयपुर के कविराजा मुरारिदान जी कविया अयाचक हैं।[१] राजपूतों की ओर से इन्हें जो दान मिलता है उसे 'त्याग' कहते हैं। अपना और अपने पूर्वजों का यश फैलाने वाले समझकर राजा-महाराजा इन्हें लाखपसाव, कोड़पसाव, शिरोपाव, भूमि, आदि के रूप में अतुल दान देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते थे। प्रसिद्ध है कि आमेर के महाराजा मानसिंह ने छह करोड़ पसाव, बीकानेर के महाराजा रार्यासिंह ने सवा तीन करोड़ पसाव, सिरोही के राव सुरताण ने एक करोड़ पसाव, जोधपुर के महाराजा गर्जासिंह ने चौदह लाख पसाव तथा अजमेर के बछराज गौड़ ने कई अरब पसाव[२] दान में दिये थे।

चारण-भाटों के अतिरिक्त ढोली, ढाढ़ी, मोतीसर, सेवग आदि जातियों के लोगों ने भी वीरकाव्य का निर्माण किया पर वह आपेक्षिक दृष्टि से अल्प है।

लच्छो जांचै जोधपुर, जयपुर जांचण जाय।
चारण अवर न जांचही, सिंघ घास नह खाय॥

ख. राजपूतों को छोड़कर अन्य जाति से पारितोषिक अथवा त्याग लेने पर बड़े से बड़ा कवि भी समाज में निन्दा का पात्र बन जाता था। बांकीदास ने जोधपुर के लाडूनाथ से लाख पसाव प्राप्त किया था, इस पर जयपुर के दरबारी कवि गाडण रामदयाल ने अपने प्रसिद्ध किन्तु अप्रकाशित ग्रंथ 'रामनवकीरतप्रकाश' में महाकवि बांकीदास की इस प्रकार भर्त्सना की है—

जाचै जो रजपूत बिण, वै कुकवी जत आन।
बांका बिण बूडे गया, कनफड़ लेय कुदान॥

१—जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी द्वारा इनके पूर्वजों को 'अयाचक' बनाया गया था। तब से अब तक ये परम्परागत रूप से अयाचक हैं, जैसा कि इनके स्वयं के दूहे से प्रकट है—

अजाचीक सीमुख अखै, भूप पतै कुळ भांण।
वीजां दत रो लेण वित, जिण दिन तजियो जांण॥

२—निम्नलिखित प्राचीन दोहे से यह तथ्य सूचित होता है—

देतो अरब पसाव दत, धिनो गोड़ बछराज।
गढ़ अजमेर सुमेर सूं, ऊंचो दीसै आज॥

ढोली ढोल बजा-बजा कर अपनी कविता सुनाते हैं और ढाढ़ी सारंगी या रबाब पर गीत गाते हैं। मोतीसर चारणों के याचक हैं। जिस तरह चारण राजपूतों के अतिरिक्त किसी दूसरी जाति से नहीं माँगते उसी तरह मोतीसर भी चारणों के अतिरिक्त किसी अन्य के सामने हाथ नहीं फैलाते।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वीर-काव्य की भी यह तथाकथित परम्परा बदल गई है। अब उसका दायरा विस्तृत हो गया है। उसका सम्बन्ध अब न किसी जाति विशेष से रहा है न किसी वर्ग विशेष से। वह राष्ट्रीय भावों की संपोषिका एवं सार्वजनीन वीर-भावना की संवाहिका बन गई है।

[ख] पृष्ठभूमि और काव्य-रूप

१. पृष्ठभूमि :

साहित्य समाज का दर्पण है। सामाजिक चित्तवृत्तियों और राजनीतिक घटनाचक्रों से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजस्थानी वीरकाव्य राजस्थान की राजनीतिक परिस्थितियों का सवाक् चित्रपट है। राजनीतिक परिवर्तनों के साथ-साथ उसमें परिवर्तन आये हैं। राजस्थानी वीर काव्य के सम्यक् अध्ययन के लिए यहाँ की ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि से परिचय होना आवश्यक है।

सातवीं शताब्दी के मध्य से तेरहवीं शताब्दी तक का काल राजपूत काल कहा जाता है। राजपूतों के छत्तीस वंश माने गये हैं। मुस्लिम शासन सिन्ध तथा मुल्तान में सन् ८७१ ई० में, पंजाब में सन् ११६० ई० में और दिल्ली में सन् १२०६ ई० में आरंभ हुआ। इस अवधि में समूचे राजस्थान पर राजपूतों का शासन था। सिन्ध से मिले होने के कारण मुसलमानों के हमले यदा-कदा यहाँ भी हो जाया करते थे पर वीर राजपूत उन्हें परास्त करके भगा देते थे। सन् ११९३ ई० में शहाबुद्दीन गौरी से जब अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान पराभूत हुए तो राजस्थान के इतिहास में ही नहीं, समूचे भारत के इतिहास में एक विशेष परिवर्तन आया। बाद में अल्तमश ने जालौर, सांभर, रणथंभौर, सवालक आदि पर भी विजय प्राप्त की। उसने मेवाड़ पर भी चढ़ाई की पर उसे सफलता नहीं मिली।

सन् १३०० ई० में अल्लाउद्दीन खिलजी ने हम्मीर को परास्त कर रणथंभौर पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १३०३ ई० में उसने चित्तौड़ पर भी विजय प्राप्त करली। इसी सुअवसर पर पद्मिनी आदि नारियों ने जौहर किया। तुगलकों के समय में मुसलमानी राज्य के कमजोर हो जाने से राजपूतों ने अपने राज्यों पर पुनः अधिकार कर लिया। मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह, कुंभा, आदि ने मांडू के सुल्तानों से निरन्तर कई लड़ाइयाँ लड़ीं और उन्हें परास्त किया।

इसके बाद लगभग दो सौ वर्षों तक राजपूत राजाओं पर कोई बाहरी आक्रमण नहीं हुआ। सन् १५२७ ई० में महाराणा सांगा ने बाबर से मोर्चा लिया पर खानवा के युद्ध में वे पराजित हुए। राणा सांगा की मृत्यु के बाद शासन में कोई स्थिरता न रही। परस्पर गृह-कलह चलता रहा। सन् १५३५ ई० में बहादुरशाह के आक्रमण करने पर चित्तौड़ में फिर दूसरी बार जौहर हुआ जिसमें कर्मवती आदि रानियों ने अपना आत्म-बलिदान किया। इसके बाद शेरशाह की मारवाड़-नरेश मालदेव के साथ मुठभेड़ हुई। राजा के रणक्षेत्र से हट जाने पर भी बचे हुए क्षत्रिय वीरों ने वह पराक्रम दिखाया कि शेरशाह पराजित होता-होता बचा। सन् १५५८ ई० में अकबर ने अजमेर, जैतारण को अपने अधीन कर राजस्थान के इतिहास में 'मुगल काल' का सूत्रपात किया। इस काल की वीर रचनाओं में 'अचलदास खीची री वचनिका (गाडण सिवदास) तथा 'राउ जइतसी रउ छंद (वीठू सूजो) विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

अकबर ने बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता से काम लिया। उसने यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि जब तक राजपूतों को अपना सहयोगी न बनाया जायगा, तब तक सुदृढ़ राज्य की स्थापना न हो सकेगी। उस समय राजस्थान में कुल ग्यारह—उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर, बीकानेर, आमेर, बूंदी, सिरोही, करौली और जैसलमेर—राज्य थे, जिनमें मुख्य उदयपुर और आमेर के राज्य थे। उसने इन राज्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध आरंभ किये। धीरे-धीरे मेवाड़ को छोड़कर सभी राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। मेवाड़ के महाराणा प्रताप घोर कष्ट उठाकर भी आजादी की रक्षा करते रहे। सन् १५७६ ई० में हल्दीघाटी के युद्ध में वे बड़ी वीरतापूर्वक लड़े। पृथ्वीराज, दुरसाआढ़ा आदि कवियों ने इस 'अणदागळ असवार' को अपनी कविताओं में अमर कर दिया।

सन् १६१४ ई० में मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह ने जहाँगीर के साथ संघर्ष चालू रखा। उन्होंने प्रताप से भी अधिक लड़ाइयाँ लड़ीं। पर अंत में उन्हें विवश होकर अपने ही सरदारों एवं युवराज के परामर्श पर मुगलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। जहाँगीर ने बड़ी उदार शर्तें दी थीं, क्योंकि वह केवल यही चाहता था कि एक बार महाराणा उसकी अधीनता मान लें। शाहजहाँ के काल में दिल्ली और मेवाड़ के सम्बन्ध मधुर नहीं रहे। शाहजहाँ के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर जब उसके पुत्रों में संघर्ष हुआ तो राजपूत नरेशों ने विरोधी पक्ष अपनाये। औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना से मुकाबला करने के लिए जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह सेनापति बनाकर भेजे गये। सन् १६५८ ई० में उज्जैन के पास धरमत नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ जिसमें जसवंतसिंह को

रणक्षेत्र छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा, पर उनके चले जाने के बाद शाही सेना का नेतृत्व करते हुए रतलाम के राव रतनसिंह राठौड़ और दूसरे वीरों ने युद्ध को चालू रखा। इस प्रसंग को लेकर 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासौत री' (खिड़िया जग्गा) तथा 'रतनरासौ' (कुंभकर्ण) जैसे महत्त्वपूर्ण वीर ऐतिहासिक काव्य रचे गये।

औरंगजेब धर्मान्ध शासक था। उसने अकबर की उदारवादी नीति को नितान्त कठोरता में बदल दिया। सन् १६७८ ई० में जोधपुर के महाराजा जसवंत-सिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने उनके बालक पुत्र अजीतसिंह को मान्यता न देकर उसे पकड़ना चाहा। वीर राठौड़ दुर्गादास उसे बादशाह के चंगुल से छुड़ा लाया। उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने मारवाड़ का पक्ष लिया। संघर्ष चलता रहा। सन् १७०७ ई०में औरंगजेब की मृत्यु हुई। तब जोधपुर पर अजीतसिंह ने पुनः अधिकार कर लिया। इधर जयपुर के जयसिंह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर गृहयुद्ध छिड़ गया जिसने राजस्थान में मरहठों के प्रवेश तथा उनके हस्तक्षेप को अवश्यंभावी बना दिया। गुजरात में भी मरहठों का जोर बढ़ा। मुहम्मदशाह ने वहाँ के सूबेदार सर बुलन्द खाँ को हटाकर उसके स्थान पर जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को नियुक्त किया। पर सर बुलन्द खाँ ने इस शाही आज्ञा की अवमानना की, फलस्वरूप अभयसिंह के साथ उसका युद्ध हुआ जिसमें वह पराजित रहा। अभयसिंह की इस विजय-गाथा को लेकर ही 'राजरूपक' (वीरभाण रत्नू) तथा 'सूरजप्रकाश' (करणीदान) जैसे विशालकाय वीरकाव्य लिखे गये।

राजस्थान के राजाओं की पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर मरहठों ने यहाँ अपने पैर फैलाने शुरू किये। उन्होंने यहाँ के राजाओं से खिराज वसूल किया और प्रजा को भी लूटा। अन्त में जोधपुर, जयपुर और बीकानेर के राजाओं ने संयुक्त होकर मरहठों को यहाँ से खदेड़ देने की योजना बनाई। और राज्य भी इसमें सम्मिलित हुए। जयपुर से ४३ मील दूर गाँव तूंगा में सन् १७८७ ई० में राजपूतों और सिंधिया में मुठभेड़ हुई, जिसमें सिंधिया पराजित हुआ पर राज-पूतों का यह संगठन अधिक दिनों तक नहीं चल सका। शीघ्र ही कछवाहों और राठौड़ों में फूट पड़ गई।

लार्ड वेलेजली के समय में कर्नल लेक ने जसवन्तराव होल्कर तथा भरतपुर के राजा की सम्मिलित सेना को सन् १८०४ ई० में डीग की लड़ाई में परास्त किया। सन् १८१८ ई० में सिंधिया ने अजमेर अंग्रेजों को सौंप दिया। इसके बाद धीरे-धीरे राजपूताने की सभी रियासतों से अंग्रेजों की संधियाँ हो गईं। अंग्रेजों ने राजाओं की फूट का लाभ उठाकर उन्हें विभाजित रखने एवं निर्बल

बनाने का प्रयत्न किया। राजस्थान के तत्कालीन बड़े नरेशों (जयपुर के जगतसिंह, उदयपुर के भीमसिंह और जोधपुर के मानसिंह) की ओर बांकीदास ने संकेत किया है कि वे इस अवसर पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन भी नहीं कर सके—

पुर जोधांण, उदैपुर, जैपुर, पह थांरा खूटा परियांण।
आंकै गई आवसी आंकै, बांक आसल किया बखांण॥

आन्तरिक झंझटों ने और सिन्धिया तथा अमीरखाँ के आतंक ने उन्हें किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया था और वे एकाएक घबराकर अंग्रजों से संधि कर बैठे थे। डॉ. रघुवीरसिंह के शब्दों में 'वंश परम्परागत राजपूती वीरता और सैनिक क्षमता निरर्थक प्रतीत हो रही थी. . . अपने अयोग्य, स्वार्थी कृपा-पात्रों से घिरे हुए नरेश असहाय और विवशता से ऐश्वर्य-विलास में डूबे, अपनी पराधीनता के कठोर सत्य को भूलकर उनकी राजनैतिक श्रेष्ठता तथा गौरव का ढोंग रचने वाले ऊपरी दिखावे को ही पूरा महत्त्व दे रहे थे। अंग्रेजों के साथ पूर्ण सहयोग करना ही उनका एकमात्र कर्तव्य माना जाने लगा था'[१] यह बात नहीं कि राजस्थान के राजाओं में वंशपरम्परागत वीरत्व शेष नहीं था पर मराठों और सिन्धियों की लूटपाट ने उन्हें इतना विवश और दयनीय बना दिया था कि उनसे मुक्ति प्राप्त करने के लिए वे अंग्रेजों की तरफ हाथ बढ़ाने के लिए लाचार हुए। पर राजस्थानी जनता और राजपूत जाति ने अंग्रेजी राज्य को सहज ही स्वीकार नहीं कर लिया। जब भी अवसर मिला उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की खुलकर भर्त्सना की और उसका डटकर मुकाबला किया। भरतपुर के राजा रणजीतसिंह, आउवा के ठाकुर खुशालसिंह (कुशलसिंह), आसोप के ठाकुर शिवनाथसिंह, ठाकुर बिशनसिंह-गूलर, ठा. अजीतसिंह आलनियावास, कोठारिया के रावत जोधसिंह, जोधपुर के महाराजा मानसिंह, नरसिंहगढ़ के महाराजकुमार चैनसिंह, सलूम्बर के रावत केसरीसिंह, खोंखरी के अभैसिंह-चिमनसिंह, शेखावाटी के डूंगरजी-जवारजी, भटाणे के ठाकुर नाथूसिंह, उमरकोट के रतनराणा, लोडसर के ठाकुर खुमाणसिंह (खूमजी) आदि ऐसे वीर थे जिनके मन में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम भरा था, जिनकी रग-रग में परम्परागत मान-मर्यादा का रक्त पूरे वेग के साथ प्रवहमान था, जो टूटना जानते थे पर झुकना नहीं। प्राण रहते इन वीरों ने अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया और राजस्थान के वीर कवियों ने अपने हृदय के भाव-सुमन चढ़ाकर इन वीरों की अर्चना की।[२]

१—पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० २८३

२—इन कवियों के नाम पृ० सं० ४३ पर देखिए।

आउवा उस समय क्रांति का केन्द्र बना हुआ था। अंग्रेजों के साथ की गई संधि के अनुसार जोधपुर के तत्कालीन शासक तखतसिंह यद्यपि अंग्रेजों को मदद दे रहे थे, तथापि जनसाधारण की शक्ति और भावना आउवा के साथ थी। इस तथ्य की सूचना आउवा के सम्बन्ध में प्राप्त एक लोकगीत से मिलती है—

वणिया वाळी गोचर मांय, काळो लोग पड़ियो ओ,
राजाजी रै भेळो तो फिरंगी लड़ियो ओ,
काळी टोपी रो।
हे ओ काळी टोपी रो, फिरंगी फैलाव कीधो ओ,
काळी टोपी रो।
राजाजी रा घोड़लिया काळां रै लारै दौड़ै ओ।
आउवे रा घोड़ा तो पछाड़ी तोड़ै ओ,
झगड़ों व्हैण दो।
हे ओ झगड़ो व्हैण दो, झगड़ां में थांरी जीत व्हैला ओ,
झगड़ो व्हैण दो।

भरतपुर भी क्रांति का स्थान बना हुआ था। एक अन्य लोकगीत में अंग्रेजों से कहा गया है कि वे यहाँ से हट जायें, यहाँ का हर योद्धा दशरथ के पुत्र सा पराक्रमी है—

आछो, गोरा हट जा।
राज भरतपुर को रै गोरा हट जा।
भरतपुर गढ़ बांको, किलो रै बांको
गोरा हट जा।
यूं मत जांणी रै गोरा लड़ै रै बेटो जाट को,
ओ कंवर लड़ै रै राजा दशरथ को रै,
गोरा हट जा!

लोडसर (बीकानेर) के ठाकुर खुमाणसिंह (खूमजी) बीदावत ने भी अंग्रेजों द्वारा पीछा किये जा रहे जवारजी को आश्रय देकर सुदृढ़ राष्ट्र-प्रेम एवं निर्भीकता का परिचय दिया। खूमजी के इस साहसपूर्ण कार्य एवं आत्मबलिदान की गाथा आज भी बरात चढ़ते समय (विशेषकर बीदावतों में) 'खूमजी का जांगड़ा' गीत रूप में गाई जाती है। एकाध उदाहरण देखिए—

सरणो देख सालुल्यो सेखो, आयो छिपियो ओले।
बीदा हंदो सरम रो बींटो, खूमो दळ सूं खोले॥

सीकर धणी फिरंगी साथे, बिच सिरताब बिकांणो।
आमळ होय लोडसर लूम्या, सामळ लियो सुराणो॥[1]

स्वतंत्रता-प्राप्ति और राजस्थान के एकीकरण के बाद युद्धपरक वीरकाव्य ने राष्ट्र के नवनिर्माण के स्वर को अपने में आत्मसात कर लिया। प्राचीन साहित्य में रजवाड़ों के इतिहास की सामन्तवादी संस्कृति का स्वर अधिक मुखर है तो नये साहित्य में जनतांत्रिक सामाजिक चेतना की संघर्षपूर्ण कहानी का स्वर अधिक तीव्र है। एक में क्षात्रधर्म पर मर मिटने वाले वीरों को भाव-भीनी श्रद्धांजलि दी गई है तो दूसरे में उस अनवरत संघर्ष से उत्पन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का मार्मिक चित्र उतारा गया है। वीर भाव के आश्रय-आलम्बन अब बदल गये। वैयक्तिक आश्रयदाताओं का स्थान राष्ट्रनायकों ने लिया, संघर्षों से मुकाबला करने वाले किसानों और मजदूरों ने लिया। १९६२ ई० में भारत-चीन के संघर्ष ने और उसके बाद भारत-पाकिस्तान के संघर्ष ने सुषुप्त राजस्थानी वीरकाव्य को फिर से जागृति का नया स्वर दे दिया। अतीतकालीन राजपूतों की वीरता को पुनः स्मरण कर अब राजपूत जाति को ही नहीं सम्पूर्ण देशवासियों को जगाने का प्रयत्न इन कवियों ने किया। देश की बलिवेदी पर शहीद होने वाले मेजर शैतानसिंह और पीरूसिंह को भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कर उनके वीर कृत्यों को गेय बनाया गया।

२. काव्य-रूप

उपर्युक्त विवेचित पृष्ठभूमि पर राजस्थानी वीर-काव्य का निर्माण हुआ है। सामन्ती वातावरण में अंकुरित, पल्लवित एवं पोषित होने के कारण यहाँ के वीर-काव्य में प्रशंसा के स्वर का मिल जाना सहज स्वाभाविक है। डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने डिंगल साहित्य का अध्ययन करते हुए प्रशंसात्मक काव्य को वीर-काव्य से पृथक श्रेणी में रखा है।[2] हमारी दृष्टि से राजस्थानी वीर-काव्य के संदर्भ में वीरों के प्रशंसात्मक अंश को उनके वीर-व्यक्तित्व से पृथक करना समीचीन नहीं है। चारणादि कवि प्रशंसा करते समय सामान्यतः नायक के स्वभाव और उसके वीरतापूर्ण कार्यों का ही अभिव्यंजन करते थे। दुरसा आढ़ा ने महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में जो 'विरद छहतरी' लिखी वह प्रशंसात्मक काव्य का भी श्रेष्ठ उदाहरण है और वीरकाव्य का भी। यहाँ के कवियों ने सामान्यतः भाट-भड़ैती और झूठी प्रशंसा नहीं की है। नायक की दानवीरता, धर्मवीरता, युद्धवीरता और दयावीरता का जो चित्रण

१—श्री मुकनसिंघ के सौजन्य से प्राप्त गीत से।

२—डिंगल साहित्य : भूमिका

प्रशंसात्मक लगता है वह वस्तुतः उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व की महनीयता का ही प्रतिफलन है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीर' कहकर वीररस को अन्य रसों से श्रेष्ठ माना है। इसका स्थायी भाव उत्साह है, देवता महेन्द्र हैं, रंग सुवर्ण के सदृश है। रावणादि शत्रु आलम्बन विभाव के अन्तर्गत आते हैं और उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत। युद्ध के सहायक (धनुष, सैन्य आदि) का अन्वेषादि इसका अनुभाव होता है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच आदि इसके संचारी भाव हैं। यह दान, धर्म, युद्ध और दया के कारण चार प्रकार का होता है, यथा—दानवीर, धर्मवीर, दयावीर और युद्धवीर।[1]

चारों प्रकार के वीरों का आलम्बन-उद्दीपन आदि की दृष्टि से परिचय इस प्रकार है[2]—

वीर	स्थायीभाव	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी भाव
१. दानवीर	त्याग में उत्साह	दानयोग्य पात्र	पात्र की सत्व गुणादि परायणता	सर्वस्व परित्याग आदि	हर्ष, गर्व, मति आदि
२. धर्मवीर	धर्म में उत्साह	धर्म तथा धार्मिक ग्रंथ	यज्ञ, अनुष्ठान आदि	धर्माचरण धर्मार्थ कष्ट-सहन आदि	धृति, मति आदि
३. दयावीर	दया में उत्साह	दया के पात्र	दीन दशा आदि	सान्त्वना के वाक्यादि	धृति, मति, रोमांचादि
४. युद्धवीर	युद्ध में उत्साह	शत्रु	शत्रु-पराक्रम	गर्वोक्ति	गर्व, तर्क, धृति, स्मृति, रोमांचादि

इन काव्यों में वीररस के साथ श्रृंगार, रौद्र, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस का सहायक रसों के रूप में सुन्दर चित्रण हुआ है। वीरभाव उत्साह प्रसूत माना गया है। उत्साह वह साहस है जो मनुष्य को दुस्तर लोकमंगल-कार्य में आनंद के साथ प्रवृत्त करता है। जैन कवि बनारसीदास ने 'वीर पुरुषारथ में' कहकर वीररस के स्थायी भाव को अधिक व्याप्ति दी है। उत्साह में किसी कारण से मन्दता आ सकती है पर पुरुषार्थ में हमेशा आगे बढ़ने की व कुछ कर गुजरने की भावना ही बनी रहती है। पुरुषार्थ वृत्ति अपने आप में स्वतंत्र वृत्ति है। वह किसी

१—साहित्यदर्पण : परि० ३।२३२-३४

२—डॉ. उदयनारायण तिवारी : वीर-काव्य (भूमिका) पृ० ११-१२

पर अवलम्बित नहीं है, उसमें कार्य-साधन की तीव्र लगन और अगाध निष्ठा होती है।[1]

राजस्थानी वीर-काव्य की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश से काफी प्रभावित है। शैली और वस्तुविन्यास में बहुत दूर तक साम्य दृष्टिगत होता है। कहीं-कहीं तो भावों में भी असाधारण समानता मिलती है। यहाँ हेमचन्द्राचार्य और सूर्यमल्ल मिश्रण के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण

—हेमचन्द्राचार्य

जे खळ भग्गा तो सखी, मोताहळ सज थाळ।
निज भग्गा तो नाह रो, साथ न सूनो टाळ॥

—सूर्यमल्ल मिश्रण

खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहुं, पिय तहिं देसहिं जाहुं।
रण-दुब्भिक्खें भग्गाइं, विणु जुज्झें न वलाहुं॥

—हेमचन्द्राचार्य

नहँ पड़ोस कायर नराँ, हेली बास सुहाय।
बळिहारी जिण देसड़ै, माथा मोल बिकाय॥

—सूर्यमल्ल मिश्रण

वीर काव्य के प्रशंसात्मक रूप की हम अभी चर्चा कर आये हैं। इस प्रशंसात्मक रूप के दो पक्ष हैं। सर और विसर या विसहर। सर काव्य में नायक की जन्मगांठ, युवराज पद, राज्यारोहण, विशेष पर्व या युद्धादि के अवसर पर प्रशंसा की जाती है। अपनी प्रशंसा सुनकर नायक प्रसन्न हो जाते हैं और काव्यकर्ता को अच्छा पुरस्कार देते हैं। कहा जाता है कि जब दुरसा आढ़ा पहली बार अजमेर में बैरामखाँ से मिले तो उन्होंने उनकी प्रशंसा में यह दोहा कहा—

विभीषण कूं वारिधि तट, भेटे वो एक राम।
अब मिलग्या अजमेर में, दुरसा कूं बेराम॥

इसे सुनकर बैरामखाँ अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने दुरसा को 'लाखपसाव' पुरस्कार स्वरूप दिया।

इसके विपरीत निंदात्मक या व्यंग्यात्मक कविता को विसर या विसहर कहा जाता है। कविता के इस रूप में कवि का लक्ष्य सामान्यतः निंदा या भर्त्सना द्वारा सम्बन्धित पात्र को सुधारने का रहता है। ऐसी कविता में पात्र के प्रति

१—डॉ. नरेन्द्र भानावत : साहित्य के त्रिकोण, पृ० २८२

घृणा की भावना नहीं वरन् भर्त्सना और सामाजिक आक्रोश की भावना निहित रहती है। अतः विसर काव्य-रूप को अंग्रेजी के तथाकथित 'लेंपून' काव्य-रूप की कोटि में नहीं रखा जा सकता।[1] अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि और विद्वान ड्रायडन का कथन है, 'व्यंग्य का वह स्वरूप जिसे हम इंगलैण्ड में 'लेंपून' के नाम से ग्रहण करते हैं, बहुत ही खतरनाक प्रकार का शस्त्र है, और बहुधा गैरकानूनी है। हमें दूसरे व्यक्तियों की निन्दा करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। केवल दो ही कारण हो सकते हैं जिससे हमें ऐसे निंदात्मक काव्य रचने की छूट मिले, मैं वादा नहीं करता कि वे दोनों कारण सदा न्यायसंगत ही हों। पहला कारण है 'प्रति-हिंसा', जबकि हमारे आगे ऐसा ही क्रूर व्यवहार हुआ हो अथवा भयंकर रूप से वदनाम किये गये हों, जिसका अन्य कोई इलाज न हो।—मैं दूसरा कारण भी बताऊँगा और वह यह कि कोई व्यक्ति जन-समुदाय के लिए परेशानी का कारण बन गया हो।'

इस संदर्भ में ध्यान देने की बात यह है कि राजस्थानी कवियों ने जहाँ विसर काव्य लिखे हैं वहाँ उनकी दृष्टि शासकों व सामन्तों को कर्तव्यपरायण, निष्ठावान और अपने दायित्व के प्रति जागरूक बनाने की रही है। युद्ध के मैदान से भागकर चले आने वाले पति को पत्नी ने और पुत्र को माता ने खूब फटकारा है, कटु व्यंग्योक्तियाँ सुना-सुनाकर उसकी भर्त्सना की है। बांकीदास कृत 'कुकवि-बत्तीसी', 'कृपण-दर्पण', 'कायर बावनी', 'मावड़िया मिजाज' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

राजस्थानी वीर-काव्य दो रूपों में निर्मित हुआ। प्रबन्धात्मक रूप में और मुक्तक रूप में। प्रबन्धात्मक रूप में जो काव्य रचे गये उनमें प्रायः किसी राजा या सामंत के वीर चरित को निरूपित किया गया। मुक्तक रूप में जो काव्य रचे गये उनमें किसी एक प्रसंग अथवा घटना का उल्लेख किया गया।

वीर प्रबन्ध काव्य कई नामों से मिलते हैं। मुख्य नाम हैं—रासौ, प्रकाश, विलास, रूपक, वचनिका, वेल, प्रबन्ध, छन्द अयण आदि। यथा—

१. **रासौ** : रतनरासौ (कुंभकरण सांदू), सगतसिंघ रासो (गिरधर)

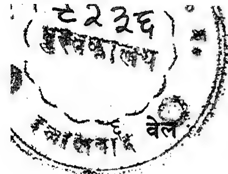
२. **प्रकाश** : राजप्रकाश (किशोरदास), सूरजप्रकाश, (करणीदान)

३. **विलास** : राजविलास (कवि मान)

४. **रूपक** : गुणरूपक (केशवदास गाडण), राजरूपक (वीरभांण)

५. **वचनिका** : अचलदास खीची री वचनिका (गाडण सिवदास)
वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासौत री (खिड़िका जग्गा)

१—डॉ. गोवर्द्धन शर्मा : डिंगल साहित्य, पृ० २३५



६. **वेल :** रतनसी खींवावत री वेल (दूदो विसराल), चांदाजी री वेल (वीठू मेहा दूसलाणी)

७. **प्रबन्ध :** कान्हड़दे प्रबन्ध (पद्मनाभ)

८. **छन्द :** रणमल्ल छंद (श्रीधर), राउ जैतसीरउ छंद (वीठू सूजा)

९. **अयण :** वीरमायण (ढाढ़ी बादर)

इन प्रबन्धकाव्यों का आरम्भ सामान्यतः मंगलाचरण से होता है। बाद में मुख्य-मुख्य देवी-देवताओं तथा गुरु की स्तुति की जाती है। रचना की महत्ता का प्रदर्शन व कवि की ओर से विनय-भावना का उल्लेख भी सामान्यतः रहता है। तदनन्तर राजवंशावली शुरू होती है जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रंथनायक तक के राजाओं के नाम गिनाये जाते हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं बड़े-बड़े राजाओं का वर्णन किंचित् विस्तार के साथ कर दिया जाता है। मुख्य-कथा ग्रंथ-नायक के जन्म-दिन से प्रारंभ होती है। नायक के विभिन्न युद्धों, उसकी वीरता, उसके आतंक, पराक्रम, बाहुबल, सैन्यबल आदि के सविस्तर वर्णन के साथ ग्रंथ का समापन नायक की बहुत बड़ी विजय अथवा दर्पपूर्ण मृत्यु के साथ होता है।

वीर मुक्तक काव्य भी कई नामों से मिलते हैं। मुख्य नाम हैं——कुंडलिया, निसाणी, झूलणा, गीत, कवित्त, दूहा, झमाल, छतीसी, बावनी, छिहत्तरी, सतसई आदि यथा——

१. **कुंडलिया :** हालां झालां रा कुंडलिया (ईसरदास), पदमसिंघजी रा कुंडलिया (गाडण गोरधन)

२. **निसाणी :** गोगैजी चहुंवाण री नीसाणी, नीसाणी वीरमाण री।

३. **झूलणा :** झूलणा रावत मेघा रा (आढ़ा दुरसा)

४. **गीत :** गीत मानसिंहजी रो (लाळस नवल जी), गीत डूंगजी जवारजी रो (आसिया बुधजी)

५. **कवित्त :** राव रणमल रा कवित्त (अल्लूजी चारण) उमादे रा कवित्त (आसा बारहठ)

६. **दूहा :** दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा (आढ़ा दुरसा)

७. **छप्पय :** आउवा रा गदर सम्बन्धी छप्पय (कविया गिरवरदान)

८. **छत्तीसी :** सुपह छत्तीसी, सिद्धराव छत्तीसी, सूर छत्तीसी (बांकीदास)

९. **बावनी :** दातार बावनी (बांकीदास), मृगया बावनी (मोहनसिंह)

१०. **छिहत्तरी :** विरुद छिहत्तरी (आढ़ा दुरसा)

११. **सतसई :** वीर सतसई (सूर्यमल्ल), वीर चरित्र सतसई (मोहनसिंह)

उपर्युक्त काव्य-रूपों में दूहा सर्वाधिक लोकप्रिय छंद रहा है।[१] यह छंद राजस्थानी साहित्य को अपभ्रंश से बपौती के रूप में प्राप्त हुआ है। यह विद्वत्समाज एवं साधारण जनता दोनों के द्वारा समान रूप से समादृत हुआ। राजस्थानी का अधिकांश लौकिक साहित्य (यथा—ढोलामारू रा दूहा, जेठवा-ऊजली, बींझा-सोरठ) इसी छंद में निर्मित हुआ। प्राचीन काल से सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर चलते आये हैं, जिनका बात-बात में कहावतों की भाँति प्रयोग किया जाता है। बात को संक्षेप में और चुभते हुए ढंग से कहने के लिए दूहा बहुत ही उपयुक्त छन्द है। राजस्थानी जनता की सर्वप्रिय मांड राग का माधुर्य और आकर्षण भी उसके दूहों पर ही निर्भर है। प्राचीन लौकिक वीरों की कीर्ति इन्हीं छोटे-छोटे दूहों की बदौलत नाम-शेष हो जाने से बच गयी है।[२]

छन्दशास्त्रीय दृष्टि से दूहों के प्रमुख भेदों का उल्लेख हम पहले कर आये हैं। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी दूहों के कई भेद प्रचलित हैं। यहाँ संक्षेप में उनका परिचय दिया जाता है—

१. रंग दूहा :

'धन्य धन्य' या शाबाशी के अर्थ में 'रंग है, रंग है' कहने की प्रथा राजस्थान

१—इसकी लोकप्रियता, रचना-कौशल और गुण-समृद्धि के सम्बन्ध में निम्नलिखित दूहे जन-साधारण में प्रचलित हैं—

सोरठियो दूहो भलो, कपड़ो भलो सुपेत।
ठाकर तो दाता भलो, घोड़ो भलो कुमेत॥१॥
सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री वात।
जोवन छाई धण भली, तारा छाई रात॥२॥
दूहो दुकटो काम, जो जोड़ै सो जांणसी।
ब्यावर तणो बिराम, बाँझ न जांणै बींझरा॥३॥
छोटी तुक का दूहड़ा, कवित्त छंद का भूप।
जाणै बलि के छलण कूं, कियो जु बावन रूप॥४॥
गुण मंदिर दूहो धणी, गाह महेळी मित्त।
छंदा जाणत लार है, गीत प्रधान कवित्त॥५॥
गुण सागर दूहो धणी, गाह महेळी सार।
गीत कवित्त प्रधानड़ा, बीजा पहरेदार॥६॥
दूहा चित चक्रित करै, दूहो चित रो चैन।
दूहो दरद उपाव ही, दूहो—दारू अैन॥७॥

२—प्रो. नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थान रा दूहा, प्रस्तावना, पृ० १७

में है। किसी के शौर्य आदि की प्रशंसा में 'रंग-रंग' के प्रयोग द्वारा जो दोहा कहा जाता है उसे 'रंग रा दूहा' कहते हैं। यथा—

धड़ धुक्कै धू धम्मकै, लहक चट्टतै तंग
जञ्ज जळै जळ जोयकै, रजपूतां घण रंग ॥

—मुकनसिंघ

२. परिजाऊ दूहा :

किसी वीर के शरणागत-रक्षा अथवा स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा देने की बात जिस दूहे में कही जाती है, वह परिजाऊ दूहा कहलाता है।[1] यथा—

सूर नरां अरु सूवरां, दुहुवां एक सुभाव।
ज्यों ज्यों पौरस चौगुणो, त्यों त्यों लग्गे घाव ॥

—गाडण ठाकुर गोरधन

३. सिन्धु दूहा :

युद्ध के समय, योद्धाओं को जोश दिलाने के लिए सिन्धुराग में जो दूहे गाये जाते हैं वे सिन्धु दूहा कहलाते हैं। इन दूहों को सुनकर योद्धाओं को नई स्फूर्ति मिलती है और वे दूने वेग से लड़ने लगते हैं। यथा—

बिगर सीस खागां बहै, साहस घटै न सूल।
अछर लुबावै आखती, कर सर दूर दकूळ ॥

—गाडण रामदयाल

४. विसहर दूहा :

जिस दूहे द्वारा कवि किसी अनुचित कार्य के लिए किसी व्यक्ति की भर्त्सना करता है, वह दोहा 'विसहर दूहा' कहलाता है। विसहर शब्द संभवतः विषधर का ही रूप है। ऐसे दोहे तीव्रता व भयंकरता के साथ एक विषधर के समान ही अपने लक्ष्य पर चोट करते हैं। यथा—

जैपुर औ जोधांण पत, दोनों थाप उथाप।
कूरम मार्‌यो डीकरौ कमधज मारचो बाप ॥

—करणीदान

इसमें जयपुर के महाराज कुंवर शिवसिंह व जोधपुर नरेश अजीतसिंह की

१—Used to designate any poems imbued with the वीररस especially those which celebrate heroes who fought to the last to help others or to save their honour.

राज्य के लोभ में की गई दोनों महाराजाओं के परिवारों की कलंक-गाथा की भर्त्सना की गई है।

वीर मुक्तक काव्यों की रचना विपुल परिमाण में की गई है। इतिहास के प्रामाणिक लेखन में इन मुक्तकों से पर्याप्त सहायता मिलती है। राजस्थान का साधारण से साधारण गाँव भी वीरों और जुझारों से खाली नहीं रहा है।[1] और शायद ही कोई ऐसा वीर या जुझार बचा हो जिस पर किसी कवि ने कोई कवित्त या छंद न लिखा हो। ऐसे मुक्तक 'साख री कविता' के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं जिनमें किसी घटना-विशेष, व्यक्ति-विशेष या तथ्य-विशेष की स्मृति को संजोये रखा गया है।

[ग] प्रमुख कवि और काव्य

वीर रस से संबंधित कई काव्य राजस्थानी और ब्रजभाषा (पिंगल) में समान रूप से लिखे गये। यहाँ पिंगल में लिखे गये वीर रस से संबंधित प्रमुख काव्यों की तालिका तथा डिंगल में रचित प्रमुख कवि और काव्यों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

पिंगल में रचित प्रमुख वीर ग्रंथ

ग्रंथ	रचयिता	रचना-काल
१. वीरसिंह देव चरित	केशवदास	सन् १६०८ ई०
२. पृथ्वीराज रासो	...	सन् १५७५ से १६०० ई० के लगभग
३. शिवराज भूषण	भूषण	सन् १६७३ ई०
४. शिवाबावनी	भूषण	
५. छत्रसालदशक	भूषण	
६. राजविलास	मान	सन् १६७७ ई०
७. राणा रासो	दयाराम	सन् १६८०-६८ ई०
८. खुमाण रासो	दौलतविजय	सन् १७०३-३३ ई०
९. छत्रप्रकाश	गोरेलाल	सन् १७१० ई०
१०. सुजान चरित्र	सूदन	सन् १७५३ ई० के लगभग

१—कर्नल टॉड ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a ciry that has not produed its leonidas.

११. हिम्मत बहादुर विरुदावली	पद्माकर	सन् १७९२ ई० के लगभग
१२. जगद्विनोद	पद्माकर	
१३. हम्मीर रासो	जोधराज	सन् १८२८
१४. वंशभास्कर	सूर्यमल्ल मीसण	
१५. वीर सतसई	वियोगी हरि	

राजस्थानी में रचित प्रमुख वीर ग्रन्थ

१. रणमल्ल छन्द : श्रीधर

इसके रचयिता श्रीधर ईडर के राठौड़ राजा रणमल के आश्रित कवि थे। इस ग्रंथ में ईडर-नरेश रणमल तथा गुजरात के सुल्तान मलिक मुफर्रह (शासन-काल सन् १३७७-१३९१ ई०) के युद्ध का वर्णन किया गया है। इसमें मलिक मुफर्रह परास्त हुए थे। ७० दोहा और चौपाई छन्दों में गुंफित इस ग्रंथ का रचना-काल सन् १४०० ई० के लगभग रहा है। इस ग्रंथ में इतिहास-धर्म की पूरी रक्षा की गई है। युद्ध-वर्णन परम्परागत होते हुए भी कवि की अभिव्यक्ति सजीव और सौष्ठवपूर्ण बन पड़ी है। एक उदाहरण देखिए—

मुझ सिर कमल मेच्छपय लग्गइ,
तु गयणंगणि भाण न उग्गइ।
जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ,
तां कमधज कन्ध न धगड़ नमइ।

२. वीरमायण : बादर ढाढ़ी

इसके रचयिता बादर या बहादुर जाति के मुसलमान ढाढ़ी थे। पंडित रामकर्ण आसोपा ने इनका नाम रामचन्द्र लिखा है, जो सही नहीं है। इसमें जोधपुर राठौड़ राजवंश के पूर्वज राव वीरम के पराक्रमों का वर्णन हुआ है। वीरमजी जोइयों के साथ लड़ते हुए सन् १३९० ई० में लखबेरा नामक स्थान में मारे गये थे। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान इसे वीरमजी की समकालीन रचना मानते हैं और दूसरे विद्वान बाद की। अपने वर्तमान रूप में यह रचना प्राचीन नहीं जान पड़ती। २८५ छंदों में गुंफित इस रचना में इतिहास की अत्यन्त मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है। नायक वीरम, उनकी पत्नी मांगलियाणी और प्रतिनायक जोइया दला जैसे सजीव पात्रों के माध्यम से कवि ने तत्कालीन सामन्त जीवन की सांस्कृतिक परम्पराओं की सबल अभिव्यक्ति की है। इस ग्रंथ में कवि की धार्मिक सहिष्णुता का अच्छा परिचय मिलता है। इसकी भाषा ओजस्विनी और प्रवाहपूर्ण है। यथा—

पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
बीबी बूझै षान नै, जग केता जगमाल?

३. अचलदास खीची री वचनिका : गाडण शिवदास

इसके रचयिता शिवदास गाडण शाखा के चारण थे। गद्य-पद्य मिश्रित १२० छन्दों की इस रचना में मांडू के बादशाह होसंगगोरी और गागरोणगढ़ के राजा अचलदास खीची के युद्ध तथा राजपूत स्त्रियों के जौहर का अत्यन्त स्वाभाविक और वीरदर्पपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। राजा की तीनों रानियों तथा पुत्र पाल्हणसी की उत्साहपूर्ण उक्तियों में बड़ी त्वरा और शक्ति है तथा है मातृभूमि के लिए मर-मिटने की अमित साध। इसकी रचना सन् १४२८ के आसपास अनुमानित है। इसकी भाषा फड़कीली और आवेगपूर्ण है। यथा—

सामि तूं सर जालि, पड्सिस पहुपाई कहइ।
हंउ उजालिसि आपणा, त्रेवे पख तिणि तालि॥

४. कान्हडदे प्रबन्ध : पद्मनाभ

इसके रचयिता वीसनगरा नागर ब्राह्मण पद्मनाभ जालौर के चौहान अखैराज के आश्रित कवि थे। चौपाई, दोहों तथा सवैयों की देशियों में लगभग दो हजार पंक्तियों में रचित इस ग्रंथ में अखैराज से १५० वर्ष पूर्व, पांचवीं पीढ़ी में हुए उनके पूर्वज सोनगिरा चौहान कान्हड़दे के वीर चरित का वर्णन किया गया है। अल्लाउद्दीन खिलजी और उसके सेनापित अलफखाँ ने गुजरात, काठियावाड़ व राजस्थान पर बड़े दुर्दान्त आक्रमण किये। कान्हड़दे बड़ी निर्भीकता, तेजस्विता और वीरता के साथ लड़ते हुए मारे गये। अल्लाउद्दीन की पुत्री फीरोजा के कान्हड़दे के पुत्र वीरमदे के साथ जन्मजन्मान्तर के प्रेमपूर्ण सम्बन्धों की भी बड़ी मार्मिक और सरस अभिव्यक्ति इस काव्य में हुई है। इस ग्रंथ की रचना सन् १४५५ में हुई। ग्रंथ की भाषा और भावाभिव्यक्ति सशक्त है। अलफखाँ के सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ देने पर प्रत्येक व्यक्ति की धर्मनिष्ठ आत्मा पुकार कर उठी—

आगई रुद्र ! घणई कोपानलि दैत्य सवे तिह बाला।
तिइं पृथ्वी मांही पुण्य बरतावीऊं देवलोकि भय टाल्या।
तिं बलकाक त्रिपुर विध्वंसिउ पवनवेगि जिम तूल।
पद्मनाभ पूछई सोमईया ! केथऊं करउँ त्रिशूल॥

५. राव जैतसीरउ छन्द : वीठू सूजा

इसके रचयिता वीठू शाखा के चारण सूजा थे। इसकी रचना सन् १५३४-४१ के मध्य होना अनुमानित है। ४०१ छंदों का यह ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में राव चूंडा से लेकर काव्य-नायक जैतसी के पिता राव लूणकरण तक

का वर्णन है और दूसरे भाग में बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान, जो कि काबुल और पंजाब का हाकिम था, और बीकानेर-नरेश राव जैतसी का युद्ध-वर्णन सम्मिलित है। इस युद्ध में कामरान परास्त हुआ था। मुसलमान इतिहासकार कामरान की इस पराजय के सम्बन्ध में मौन हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ इतिहास की एक विस्मृत घटनावली को उजागर करता है। राजस्थानी वीर काव्य का यह एक अत्यंत उज्ज्वल रत्न है। इस ग्रंथ की भाषा बड़ी ओजस्विनी और प्रवाहपूर्ण है। कामरान की चढ़ाई का यह वर्णन देखिए—

दीवांण तणां फिरिया दरक्क, कळलिया ठाहि ठाहे कटक्क।
चँमंराळां हुई असंख चाल, छोगाळ छिलइं करिमाल् काल्।।
जोड़ाल मिलइ जमदूत जोध, काइरा कपीमुखी सक्रोध।
कुवरंत कवि काला किरिट्ठ, गड़दनी गोल गांजा गिरिट्ठ।।

६. देईदास जैतावत री वेल : अखौ भाणौत

इसके रचयिता बारहठ अखो भांणौत रोहड़िया शाखा के चारण थे। सन् १५५६ में रचित २३ छंदों की इस रचना में बगड़ी के सामन्त देवीदास (देईदास), जो राठौड़ वीर जैता के पुत्र थे, के युद्ध-कौशल एवं वीर व्यक्तित्व की व्यंजना की गई है। देवीदास ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वीराज का बदला लेने के लिए मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन के साथ मिलकर जयमल (मेड़ते पर) पर आक्रमण किया था। उन्होंने हरमाड़ा गाँव के पास उदयपुर के महाराणा उदयसिंह, बीकानेर के महाराजा कल्याणमल व मेड़ता के जयमल की सम्मिलित सेना को भी पराजित किया था। बादशाही सेना के लिए वे उस सिंह के समान थे जिस पर रौद्र रूपी पाखर पड़ी हुई है—

दळनाइक अगड़ तुहारी देदा, कोइ न हाले अडस करि।
पाखर रौद्र लगै पतिसाही, प्रघट पंचाइण तणि परि।।

७. रतनसी खींवावत री वेल : दूदो विसराल

इसके रचयिता दूदो विसराल नामक कोई कवि रहे हैं। सन् १५५७ के बाद रचित ७२ छंदों की इस रचना में शेरशाह के सेनापति हाजीखाँ के पलायन व अकबर बादशाह की सेना के जैतारण पर अधिकार करने का वर्णन है। जैतारण की इस लड़ाई में काव्य-नायक राठौड़ रतनसिंह खींवावत मारे गये थे। कवि ने विषकन्या का विराट सांगरूपक बाँधते हुए मुगल सेना रूपी दुल्हिन के साथ भोग भोगते हुए, दूल्हे रतनसिंह की उत्सर्गशीलता का बड़ा भव्य और आकर्षक वर्णन किया है। मुगल-सेना का यह वर्णन देखिए—

नयण कटाक्ष वैंण नीछरतै, कसि बिहुँ दिसि फेरती कड़ा।
उठि रयण परणेवा आई, घूमर कीधै मीर घड़ा।।

मंड है वियण सेहरा कांमणि, कर गेवार माती किरिमालि।
ढूकी डालवेलि ढलकंति, तोरणि जैतारिणि रिणि तालि।।

८. हालां झालां रा कुंडलिया : ईसरदास

इसके रचयिता ईसरदास रोहड़िया शाखा के चारण थे। सन् १५६३ में रचित ५० कुंडलिया छन्दों की यह रचना वीर रस की श्रेष्ठ कृतियों में से है। इसमें हलवद नरेश झाला रायसिंह और ध्रोल राज्य के ठाकुर हाला जसाजी के बीच हुए युद्ध का सजीव चित्र अंकित किया गया है। रायसिंह जसाजी के भानजे थे। इस युद्ध में जसाजी वीर गति को प्राप्त हुए। इस कृति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके अधिकांश छन्दों के पहले दो चरणों में कोई सिद्धान्त वाक्य कहकर बाद के चरणों में, दृष्टान्त रूप में, उसे युद्ध में लड़ने वाले वीरों पर घटित करके दिखलाया गया है, यथा—

केहरि केस, भमंग-मणि, सरणाई सुहडांह।
सती पयोहर कृपण धन, पड़सी हाथ मुवांह।।

९. प्रताप सम्बन्धी दोहे : पृथ्वीराज

पृथ्वीराज राठौड़ बीकानेर नरेश रायसिंह के अनुज थे और अपने बड़े भाई की राजनीतिक आवश्यकता के कारण अकबर के यहाँ रहते थे पर इनके मन में स्वाधीनता और स्वाभिमान के प्रति बड़ा प्रेम था। कहा जाता है, प्रताप के संधि-पत्र को जाली ठहराकर इन्होंने ही उनके मन में पुनः स्वातन्त्र्य दीप की लौ प्रज्वलित की थी। 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' इनका भक्ति शृंगारपरक सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। राणा प्रताप के विषय में कहे गये इनके प्रकीर्णक दोहों और विविध गीतों में इनकी राष्ट्रीय भावना का आवेगपूर्ण प्रतिफलन हुआ है। एकाध उदाहरण देखिए—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंता वयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगै कासप राव उत।।
पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक।।

१०. विरुद छिहत्तरी : दुरसा आढ़ा

इसके रचयिता दुरसा आढ़ा गोत्र के चारण थे। ये कवि होने के साथ-साथ कुशल योद्धा भी थे। बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह ने इन्हें पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया। मुगलों के विरुद्ध हथियार उठाने वाले वीरों—राणा प्रताप, राव चन्द्रसेन, राव सुरताण-की प्रशस्तियों में इन्होंने फड़कती हुई कविताएँ लिखी हैं। 'बिरुद छिहत्तरी' में प्रत्यक्षतः, महाराणा प्रताप के यश का वर्णन है, पर प्रकारान्तर

से तत्कालीन हिन्दू समाज की विपन्नावस्था और अकबर की कूटनीति के विरुद्ध उठने वाली क्रांति की सूक्ष्म चिनगारी का भी उससे आभास मिलता है। प्रताप के सम्बन्ध में कहे गये एकाध दूहे देखिए—

> अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेला किया।
> हाथ न लागो हेक, पार राण प्रतापसी।
> अकबर कुटिल अनीत, और बिटळ सिर आदरै।
> रघुकुळ उत्तम रीत, पाळै राण प्रतापसी।।

११. चाँदाजी री वेल : वीठू मेहा दूसलांणी

इसके रचयिता वीठू मेहा दूसलांणी दूसलां के पुत्र या वंशज थे। ४१ छंदों की इस रचना में राव मालदेव के यशस्वी सरदार तथा मेड़ता के राव वीरमदेव के चतुर्थ पुत्र चांदाजी के सोलंकियों, भाटियों, मुगलसेना, मणिखांन, दौलतखाँ आदि के साथ हुए युद्धों का वर्णन किया गया है। इतिहास की दृष्टि से इस रचना का बड़ा मूल्य है। इसकी रचना सन् १५६७ के बाद किसी समय हुई होगी। एक उदाहरण देखिए—

> मास बे महण मेड़तै मथीयो, असंख कटक मेले अगियांन।
> आंगमणि चांदौ नह आवै, खार खधौ जोवै मणिखांन।।

१२. राउ रतन री वेल : कल्याणदास मेहड़ू

इसके रचयिता कल्याणदास मेहड़ू शाखा के चारण डिंगल के प्रसिद्ध कवि जाडा (आसकरण) मेहड़ू के पुत्र थे। १२३ छन्दों की इस रचना में बूंदी के राव राजा रतनसिंह की वीरता का वर्णन किया गया है। रचना के मुख्यतः दो भाग हैं। पहले भाग में बूंदी के हाड़ावंशीय राजाओं की—देवीसिंह से लेकर चरित-नायक रतनसिंह तक—विरुदावली गायी गई है। दूसरे भाग में रतनसिंह के कंवरपदे में, शरीफखाँ के साथ, काशी के समीप चरणाद्रि स्थान पर हुए, उनके युद्ध का वर्णन है। इसकी रचना सन् १६०७-३१ के मध्य होना अनुमानित है। युद्ध का वर्णन बड़ा भव्य और आलंकारिक है। यथा—

> धारू जलधार बलकि सिरि धड़धड़, बळबळ किरि बादळ में बींज।
> ऊजल छंट रयण ओवड़ीयो, भूतल खल रहीया रत भींज।।

१३. वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासौत री : खिड़िया जग्गा

इसके रचयिता जग्गा खिड़िया शाखा के चारण थे। गद्यपद्य मिश्रित इस रचना में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह और मुगल सम्राट शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरंगजेब तथा मुराद के बीच में, उज्जैन के पास धरमत नामक स्थान पर सन् १६५८ में हुए युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में महाराजा जसवंतसिंह बचकर

चले गये और युद्ध-संचालन का समस्त भार रतलाम-नरेश राठौड़ रतनसिंह ने सँभाला। इस कृति में राठौड़ रतनसिंह की वीरता ही मुख्य रूप से प्रदर्शित की गई है। उनका अन्त्येष्टि सम्बन्धी वर्णन काल्पनिक होते हुए भी भव्य है। युद्ध के फड़कते हुए दृश्य मन में जोश पैदा करते हैं। एकाध उदाहरण देखिए——

पड़ै अग्गि माँ उड्डि जेहा पतंगं।
अफालै अणी उप्परा धारि अंगं॥
जते काळ नूं चाळ सूं झालि जुट्टै।
तरुवार ज्याँ तेज रा ताप तुट्टै॥
मरेवा करै कोउ भारत्थि मन्नं।
त्रिणे मेल्हिया प्रज्जलै झालि तन्नं।
पडतां दियै अब्भ थंभा प्रचंडं।
खला मारि खंगे करै खंड खंडं॥

१४. राजरूपक : रतनू वीरभांण

इसके रचयिता वीरभांण रतनू शाखा के चारण थे। ये जोधपुर-नरेश अभयसिंह के आश्रित कवि थे। ४६ प्रकाशों में आबद्ध इस ग्रंथ में मुख्यतः महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार बिलंदखाँ के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सन् १७३० में अहमदाबाद में हुआ था जिसमें बिलंदखाँ परास्त हुआ था। इस युद्ध में कवि स्वयं महाराजा अभयसिंह के साथ थे। अतः युद्ध का आँखों देखा हाल इसमें वर्णित है। इस ग्रंथ की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें छोटी-छोटी घटनाओं, युद्ध में भाग लेने वाले सरदार-सामन्तों के नामों, राजनीतिक छल, संधि एवं कूटनीतिक चालों आदि सभी का तिथि, वार, संवत् के उल्लेखों के साथ यथातथ्य वर्णन किया गया है। ग्रंथ की भाषा का एक उदाहरण देखिए——

सुंदर भाल विसाल, अळक सम माळ अनोपम।
हित प्रकास मृदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम॥
क्रपा-धाम नव कंज, नयन अभिराम सनेही।
रुचि कपोल ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेस अछेही॥
निरखंत संत सनमुख निजर, करण पुनीत सुप्रीत कर।
गुण मान दान चाहै सुग्रहि, कवि सुग्यांन औ ध्यान धर॥

१५. सूरजप्रकाश : करणीदान

इसके रचयिता करणीदान कविया शाखा के चारण थे। ये भी जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित कवि थे और अहमदाबाद के युद्ध में उनके साथ

सम्मिलित होकर वीरतापूर्वक लड़े थे। ७५०० छंदों में आबद्ध इस ग्रंथ में कवि ने मुख्यत: अभयसिंह और शेर बिलन्दखाँ के बीच हुए युद्ध का ही वर्णन किया है। इसके वर्णन बड़े भव्य, सजीव और प्रभावोत्पादक हैं। महाराजा को सुनाने के लिए इन्होंने इस विशालकाय ग्रंथ का संक्षिप्त रूप १२६ पद्धरि छन्दों में 'विड़द सिणगार' नाम से प्रस्तुत किया। इसे सुनकर महाराजा इतने अधिक प्रसन्न हुए कि उन्होंने कवि को लाखपसाव, जागीर आदि ही नहीं दी, वरन् इन्हें हाथी पर सवार कराया और स्वयं घोड़े पर चढ़कर इनकी हाजिरी में चले और कविराज को उनके निवास-स्थान तक पहुँचाया। काव्य की भाषा ओजपूर्ण और प्रवाह-युक्त है। एक उदाहरण देखिए—

जूडिए जूंगरा, धरैं ध्रोहं धरा।
जांणिजै जम्मरा, भड्ड रौसं भरा॥
करब्बाहै करा, साबला सौंसरा।
तन्न बग्गस्तरा, पंजरा सप्परा॥
आछटै अज्जरा, करिमालक्करा ।
फूटरा फूटरा, चाचरा फाचरा॥
डाडरा वीहरा, स्रोणरा डाल्हरा।
गूंदरा मांसरा, अंतरा ह्वै गरा॥

१६. **सूर छत्तीसी, सीह छत्तीसी, वीरविनोद : बांकीदास**

इन कृतियों के रचयिता बांकीदास आशिया शाखा के चारण थे। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के विशेष कृपापात्रों में से थे। इनका रचना-काल सन् १७९०-१८३३ के मध्य रहा है। ये बड़े अच्छे इतिहासज्ञ थे। ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी रचनाएँ यथेष्ट मूल्यवान हैं। वीररस के कवियों में इनका विशेष महत्त्व है। प्रवाहपूर्ण, प्रसादगुण सम्पन्न भाषा में इन्होंने वीरभावों की बड़ी सार्थक अभिव्यक्ति की है। अंग्रेजी साम्राज्य की कटुता और उसके विषैले प्रभाव की खुलकर भर्त्सना करने वाले कदाचित ये ही सर्वप्रथम राष्ट्रीय कवि थे। इनके एक गीत की प्रसिद्ध पंक्ति है—'आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आंहस लीधा खेंचि उरा।' अंग्रेज नाम का शैतान हमारे देश पर चढ़ आया है। देश के जिस्म की सारी चेतना को उसने अपने खूनी अधरों से सोख लिया है। ऐसी स्थिति में कवि ने आह्वान के स्वरों में कहा है—

राखो रै किहिक रजपूती।
मरद हिन्दू की मुसलमांन।

'सूरछतीसी' में अनेक वीरों एवं उनके वीरोचित कर्मों का उल्लेख किया गया है। 'सीह छत्तीसी' में सिंह को माध्यम बनाकर वीर के स्वभाव, आतंक, पराक्रम

आदि का परिचय दिया गया है। 'वीर विनोद' में कई वीरों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इनकी एक अन्य रचना 'भूरजाळ भूषण' है जिसमें चितौड़गढ़ का ऐसा मार्मिक, सबल और लोमहर्षक वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि पढ़ते ही भुजाएँ फड़कने लगती हैं। इनकी कविता के एकाध नमूने देखिए—

सूर न पूछै टीपणौ, सुकन न देखै सूर।
मरणां नूं मंगल गिणै, समर चढ़ै मुख नूर।।
हाथल् बल् निरभै हियौ, सरभर न को समत्थ।
सीह अकेला संचरै, सीहां केहा सत्थ।।
भुरजमांल् फण मंडली, सोर झाल् विष झाल्।
जाण सेस बैठो जमी, मिस चीतोड़ कराळ।।

१७. वीर सतसई : सूर्यमल्ल मिश्रण : इनका परिचय अन्यत्र विस्तार से दिया गया है।

१८. चेतावणी रा चूंगटिया : बारहठ केसरीसिंह :

ये अत्यन्त स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। इनका जन्म सं. १९२९ में बारहठ कृष्णसिंह के घर हुआ। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का इन्होंने जन्म भर विरोध किया और जेल की दारुण यातनाएँ सहन कीं। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर इनके सम्पूर्ण परिवार ने स्वतंत्रता-संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनका छोटा भाई जोरावरसिंह, उनकी पत्नी माणिककुँवर, लड़की चन्द-मणि, जामाता ईश्वरीदान आदि ने अनेक यातनाएँ सहीं और काले पानी तक की सजा काटी। इनका पुत्र प्रतापसिंह तो स्वतंत्रता की बलिवेदी पर ही चढ़ गया। कविता इनके लिए क्रांति का हथियार थी। काव्य के माध्यम से ये तत्कालीन नरेशों और जनता को जगाते रहे, चेतावनी देते रहे। सन् १९०३ में महाराणा फतहसिंह जब कर्जन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में जाने लगे तो इन्होंने अपनी काव्य-शक्ति (चेतावणी रा चूंगटिया) के बल पर ही उन्हें दरबार में शामिल होने से रोक लिया था। यह थी इनकी कविता की गजब की प्रभावक शक्ति। अतीत गौरव की स्मृति के साथ मीठा उपालंभ और वर्तमान क्षण की संभावित अधोदशा का यह विवशता भरा चित्रण देखते ही बनता है—

पग पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
'महारांणा' 'मेवाड़', हिरदे बसिया हिंद रै।।
घण घलिया घमसांण, रांणा सदा रहिया निडर।
पेरवंतां फुरमांण, हल चल किम फतमल हुवै।।
गिरद गजां घमसांण, नहचै घर माई नहीं।
मावै किम महारांण, गज सौ रै घेरे गिरद।।
ओरां ने आसांण, हाकां हरवल हालणे।

किम हालै कुळरांण, हरवल साहां हांकिया ।।
नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सरसी जिकां ।
पसरेलो किम पांण, पांण थका थारो फता ।।
सकल चढ़ावै सीस, दान धरम जिण रो दियो ।
सो खिताब बगसीस, लेवण किम ललचावसी ।।
सिर झुकिया सहसाह, सीहांसण जिण सांमने ।
रळतो पंगत राह, फाबै किम तोनै फता ।।
देखै लो हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सूं ।
पण तारा परमांण, निरख निसासां नांखसी ।।
देखै अंजस दीह, मुळकैलो मन ही मनां ।
दंभी गढ दिल्लीह, सीस नमंतां सीसवद ।।
अन्तबेर आखीह. पातळ जो बातां पहल ।
रांणा सह राखीह, जिण री साखी सिरजटा ।।
कठण जमाणो कोल, बांधै नर हीमत बिनां ।
वीरां हन्दो बोळ, पातळ सांगै पखियो ।।
अब लग सारां आस, रांण रीत कुळ राखसी ।
रहो साहि सुखरास, एकलिंग प्रभु आपरै ।।
मांन मोद सीसोद, राजनीत बळ राखणो ।
गवरमिन्ट री गोद, फळ मीठा दीठा फता ।।[1]

---

१. क. इनके अतिरिक्त ऐसे कवि सैकड़ों हुए हैं जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की खिलाफत करने वाले राजाओं, सरदारों और वीरों को वर्ण्यविषय बनाकर कई फुटकर गीत आदि लिखे हैं। उनमें प्रमुख नाम ये हैं—महाराजा मानसिंह, कविया गिरवरदान, सिंढायच बुधसिंह, महड्ड दलजी, बारहठ दुर्गादत्त, सांदू राघोदास, आढ़ा जादूराम, लिखमीदान ऊजल, बारहठ तिलोकदान, बारहट विसनदान, लालस नाथूराम,लालस नवलजी, आढ़ा जवान जी, आसिया बुधजी,आढ़ा चिमनजी, दधवाड़िया गोपालजी, चैनजी वंसूर, खिड़िया गोपालदानजी, सांदू गंगादानजी, सांदू जीवराजजी, कविराजा भारतदानजी (बांकीदास के दत्तक पुत्र व कविराजा मुरारिदानजी के पिता), और गाडण रामदयाल (हरमाड़ा, जयपुर)।

ख. स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत वीर-काव्य का सर्जन करने वाले कई कवि हुए हैं। जिस प्रकार मध्य-युग में मुख्यतः महाराणा प्रताप को लेकर वीर-भावों की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की गई है, उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वर्तमान समय में देश की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले मेजर

[घ] वीर सतसई साहित्य

(१)

राजस्थानी साहित्य में जो विविध काव्य-रूप विकसित हुए उनमें संख्यापरक काव्य-रूपों का विशेष स्थान है। संख्यापरक रचनाओं में हजारा, सतसई, शतक, अष्टोत्तरी, बहोत्तरी, बावनी, छत्तीसी, बत्तीसी, पच्चीसी, चौबीसी, बीसी, अष्टक आदि नाम की सहस्राधिक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। सामान्यतः ये रचनाएँ मुक्तक होती हैं।

इन विविध संज्ञापरक रचनाओं में 'सतसई' का विशिष्ट स्थान है। 'सतसई' संज्ञक रचनाओं में सामान्यतः सात सौ अथवा इसके लगभग की संख्या में रचित दोहों का संग्रह कर दिया जाता है। सतसई लिखने की भावना से आरंभ की गई कृति, दोहों की संख्या कम होने पर भी, सतसई नाम से ही प्रसिद्ध रही है।[1] 'सतसई' शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' अथवा 'सप्तशतिका' से बना हुआ है। सात की संख्या का मंत्र-साहित्य में विशेष महत्त्व है। यह श्रुति-मधुर भी है। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओं में सतसई साहित्य की समृद्ध परम्परा मिलती है।

सतसई-परम्परा को विकसित करने का श्रेय प्राकृत भाषा में रचित महाकवि हाल की रचना 'गाथा सप्तशती' को दिया जाता है। इसका रचनाकाल प्रथम शताब्दी रहा है। इसमें पशुचारण करती हुई गोपबालिकाओं, आभीरों की प्रेम-कथाओं, उनके पारिवारिक कार्यों से सम्बन्धित विषयों आदि को आधार बनाकर लौकिक श्रृंगार का सरस निरूपण किया गया है। 'गाथा सप्तशती' को ही आदर्श मानकर अथवा उसके अनुकरण पर आगे जो सतसइयाँ लिखी गईं, वे दो प्रकार की

शैतानसिंह को लेकर सर्वाधिक कविताएँ लिखी गईं। इन कविताओं का संकलन श्री सवाईसिंह धमोरा ने 'सेतान सुजस' नाम से किया है। इसके अतिरिक्त भी देशभक्तिपूर्ण कई रचनाएँ लिखी गईं। प्रमुख रचनाकार हैं—कविराव मोहनसिंह, नाथूसिह महियारिया, उदयराज ऊजळ, मनोहर शर्मा, गिरधारीसिंह पड़िहार और मुकनसिंघ।

१—सूर्यमल्ल मिश्रण कृत 'वीर सतसई' में २८८ दोहे ही हैं फिर भी कवि ने इसे सतसई कहा है—सतसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल।
मुकनसिंह कृत 'सैतान सतसई' में भी ३८८ दोहे हैं पर कवि ने इसे सतसई नाम दिया है—

सतसअी सिंणगार सत, दूहा साहित देह।
वयणसगाअी उर वपुह, सूरा भाव सनेह॥

हैं। एक प्रकार की वे जिनमें सूक्ति अथवा भक्ति-परक दोहों की सृष्टि हुई और दूसरी प्रकार की वे जिनमें लौकिक शृंगारपरक दोहे लिखे गये।

सतसई परम्परा की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है संस्कृत भाषा में रचित गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्या सप्तशती'। इसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई। इसमें भी लौकिक शृंगार की प्रधानता है।

हिन्दी में सतसई-परम्परा का आरम्भ तुलसीदास तथा रहीम की सतसइयों से माना जाता है। इसके बाद शताधिक सतसइयों की रचना हुई। प्रमुख सतसइयों का वर्गीकरण, काल एवं प्रवृत्तियों के अनुसार इस प्रकार किया जा सकता है—

काल के अनुसार वर्गीकरण :

क. सत्रहवीं शती में लिखित : १. तुलसी सतसई, २. रहीम सतसई;
ख. अठारहवीं शती के प्रारंभ में लिखित : ३. मतिराम सतसई, ४. बिहारी सतसई ५. रसनिधि सतसई;
ग. अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखित : ६. वृन्द सतसई;
घ. उन्नीसवीं शती में लिखित : ७. राम सतसई; ८. विक्रम सतसई;
ङ. बीसवीं शती में लिखित : ९. वीर सतसई; (वियोगी हरि)।

प्रवृत्तियों के अनुसार वर्गीकरण :

क. सूक्तिप्रधान तथा उपदेशात्मक : १. तुलसी सतसई, २. रहीम सतसई, ३. वृन्द सतसई;
ख. शृंगार रस-प्रधान : ४. बिहारी सतसई, ५. मतिराम सतसई, ६. रसनिधि सतसई;
ग. वीर रस प्रधान : ७. वीर सतसई।

(२)

हिन्दी साहित्य में उपलब्ध सतसइयों में सर्वाधिक व्याप्ति शृंगार रस को मिली। इसके बाद सूक्ति, भक्ति एवं नीतिपरक सतसइयों का स्थान है। वियोगी-हरि कृत 'वीर सतसई' को छोड़कर किसी प्रमुख वीर कृति का उल्लेख इस काव्य-रूप में देखने में नहीं आया। वियोगी हरि को इस कृति के प्रणयन में कदाचित् सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई' से प्रेरणा मिली हो।

वीर भावों को आधार बनाकर सर्वाधिक सतसइयाँ राजस्थानी में लिखी गई। वीररसावतार सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वीर सतसई' का निर्माण कर सतसई-परम्परा को नया मोड़ दिया। उन्होंने अपनी सतसई में किसी विशिष्ट सामन्त, राजा या ठाकुर को अपना आलम्बन नहीं बनाया। उनका आलम्बन बना सामान्य

वीर पुरुष और सामान्य वीर नारी। वीर भावों की ऐसी सार्वजनीन सामान्यीकृत अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

राजस्थानी में रचित वीर भावों को अभिव्यंजित करने वाली निम्नलिखित सतसइयों का अब तक हमें पता चला है—

१. वीर सतसई : सूर्यमल्ल मीसण (प्रकाशित)
२. वीर सतसई : गाडण रामदयाल (अप्रकाशित)
३. वीर सतसई : मोड़जी महियारिया (अप्रकाशित)
४. वीर सतसई : नाथूसिंह महियारिया (प्रकाशित)
५. वीर सतसई : मुकुन्ददान (संघ शक्ति में कुछ अंश प्रकाशित)
६. वीर सतसई : रावल नरेन्द्र सिंह (संघ शक्ति में कुछ अंश प्रकाशित)
७. वीर चरित्र सतसई : कविराव मोहनसिंह (अप्रकाशित)
८. सिद्धराज सतसई : मेहड़ू रिवदान (कुछ अंश प्रकाशित)
९. सैतान सतसई: मुकनसिंघ[1] (सैतान सुजस में प्रकाशित)
१०. नेता सतसई : श्रीमती मानकुँवर (अप्रकाशित)

इनमें सूर्यमल्ल मीसण, नाथूसिंह महियारिया, मेहड़ू रिवदान और मुकनसिंघ की कृतियाँ सतसई लिखने के उद्देश्य से ही प्रारंभ की गईं। यद्यपि सूर्यमल्ल २८८ और मुकनसिंघ ३८८ दोहे लिखकर ही रह गये। शेष कृतियाँ प्रारंभ में सतसई-परम्परा के निर्वाहार्थ नहीं लिखी गईं। उनका प्रणयन विशेष घटना अथवा विशेष व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर फुटकर दोहों के रूप में हुआ। जब कई घटनाओं अथवा व्यक्तियों पर लिखे गये दोहों की संख्या सात सौ के लगभग पहुँच गई तब उन सबका संकलन सतसई के नाम से कर दिया गया।

वर्ण्य-विषय के आधार पर इन सतसइयों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

क. सामान्य वीर भावों को अभिव्यंजित करने वाली सतसइयाँ :

१. सूर्यमल्ल मीसण कृत वीर सतसई

१—वीर भावों के अतिरिक्त अन्य भावों को व्यंजित करने वाली निम्नलिखित सतसइयाँ उल्लेखनीय हैं—

१. कैर सतसई : बद्रीदान कविया
२. वैश्य सतसई : गणपति स्वामी

इधर मनोहर शर्मा और नानूराम संस्कर्ता (छप्पय सतसई) ने भी सतसइयाँ लिखी हैं।

२. गाडण रामदयाल कृत वीर सतसई
३. नाथूसिंह महिरारिया कृत वीर सतसई
४. खड़िया मुकुन्ददान कृत वीर सतसई

ख. घटना अथवा व्यक्ति विशेष को आधार बनाकर लिखी जाने वाली सतसइयाँ :

१. रावल नरेन्द्रसिंह कृत वीर सतसई
२. कविराव मोहनसिंह कृत वीर चरित्र सतसई
३. मेहडू रिवदान कृत सिद्धराज सतसई
४. मुकनसिंह कृत सैतान सतसई
५. श्रीमती मानकुंवर कृत नेता सतसई

प्रमुख वीर सतसइयों का सामान्य परिचय इस प्रकार है—

१. वीर सतसई : सूर्यमल्ल मीसण : इसका परिचय आगे विस्तार से दिया गया है ।

२. वीर सतसई : गाडण रामदयाल : गाडण रामदयाल हरमाड़ा (जयपुर) के निवासी थे। ये जयपुर के महाराजा रामसिंह (शासनकाल सन् १८५१-१८८०) के दरबारी कवि के रूप में समादृत थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'रामनवकीरत प्रकास' है जो अद्यावधि अप्रकाशित है। इसके अष्टम प्रकरण में जो दोहे आये हैं उन्हें संख्या के आधार पर 'सतसई' नाम दिया जा सकता है। इन दोहों में वीर, कायर, कृपण, दातार, सुकवि, कुकवि, आदि विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ कुछ दोहे उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं—

वीर पुरुष के आतंक और निर्भीक स्वभाव का यह चित्र देखिए—

कंतो टळे न काळ सूं, कर झाल्यां किरमाळ।
आधोहीं जावै अवसि, कंता सूं टळि काळ।।

कायर को दी गई भर्त्सना का यह व्यंग्य कितना सशक्त बन पड़ा है—

घालीजै कड़ि घाघरो, सिर ओढ़ीजै साड़।
कुच बड़ कंचुक पहरजै, होवै नहीं उघाड़।।

नृसिंहगढ़ नरेश चैनसिंह और डूंगरजी-जवारजी के सम्बन्ध में लिखे गये ये दोहे कवि की स्वातन्त्र्य भावना और राष्ट्रीयता के द्योतक हैं—

बागो अंगरेजां विषम, गढ़ नसंघ चैनेस।
ऊमट अत आछा अधक, सुख सुरलोक करेस।।
जंवहर बंधव जोख में, बिजो संग्राम बठोठ।
इसो डूंग अध्रियामणो, मूंग भेद नह मोठ।।

३. वीर सतसई : मोड़जी महियारिया : मोड़जी महियारिया राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने सूर्यमल्ल मिश्रण कृत अपूर्ण 'वीर सतसई' को पूर्ण करने का प्रयत्न किया। इनके अनुसार सूर्यमल्ल ने २९० दोहे बनाये। शेष ४५२ दोहे स्वयं बनाकर ७४२ दोहों को सतसई रूप में संकलित करने का कार्य इन्होंने किया। साहित्य संस्थान, उदयपुर में इस सतसई की प्रति विद्यमान कहा जाता है।

४. वीर सतसई : नाथूसिंह महियारिया : नाथूसिंह महियारिया चारण केसरीसिंह के पुत्र हैं। ये उदयपुर के निवासी हैं। राजस्थानी भाषा पर इनका अच्छा अधिकार है। 'वीर सतसई' में इनके द्वारा रचित ७११ दूहे संगृहीत हैं। यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। इसमें वीर पुरुष, वीर नारी, वीर बालक, युद्ध सेना, कायर आदि प्रकरणों और प्रसगों को लेकर दर्पमयी वाणी में सार्थक दूहे कहे गये हैं। राजस्थानी वीर-जीवन और लोक-संस्कृति का इस ग्रंथ से अच्छा परिचय मिलता है। उदाहरण के रूप में कुछ दूहे देखिए—

सच्चे राजपूत की यह परिभाषा कितनी सार्थक बन पड़ी है—

रण कर-कर रज-रज रंगै, रवि ढंकै रज-हूंत।
रज जेती धर नहँ दियै, रज-रज ह्वै रजपूत ॥१२॥

वीर का यह वेश कितना उपयुक्त है—

सिर सोहै सिरपेच सा, उर कंठला बणाव।
भुज लागै भुजबंध सा, भड़ रै भूखण घाव ॥२७७॥

वीरांगना के नेत्रों का यह वैषम्य देखिए—

घर मृगनैणी दीसती, रण अरियां भय दैण।
आज उधारा किण दिया, बहू सीह रा नैण ॥५१५॥

५. वीर सतसई : मुकुन्ददान : खड़िया शाखा के चारण मुकुन्ददान भुँवाल के निवासी थे। इनके कई दोहे संघ-शक्ति (मासिक) जयपुर, में प्रकाशित हुए हैं। इन दोहों में वीर-वीरांगनाओं, सतियों, कायरों, हाथी-घोड़ों आदि के प्रसंगों को लेकर वीररस पूर्ण मार्मिक अनुभव व्यक्त किये गये हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

वीरांगनां—वचन

काछकड़े बांधूं कमर, गादकड़े दो चीर।
णदळ आज निहारजो, हूं मारूँ हमगीर ॥

मैं भगनी जमराज री, आग असी आराण।
मौत बिना मरजावस्यो, पड़ पड़ पतंग प्रमाण ।।

सखी प्रति सती वचन—

बात बटाऊ बापने, आ कह दीजे अज्ज।
जायां बज्यो न बाटको, वळतां नोपत बज्ज ।।
सिर खुल्ले परणी सखी, नायण लीधो नेग।
बळस्यूं किम गाथो बंध्यो, भाभी खोलो वेग ।।

६. वीर सतसई: रावल नरेन्द्रसिंह: जोबनेर के ठाकुर रावल नरेन्द्रसिंह राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि थे। इनके कई दोहे (सोरठे) 'संघ-शक्ति' में प्रकाशित हुए हैं। इनके दोहे प्रशस्तिमूलक अधिक हैं। इनमें पाबूजी राठौड़, सुरताण गौड़, पंजननराय, ठाकुर शेरसिंह (रियां), राव दलेलसिंह धूला, जूंझार रतनसिंह मोरडूंगा, राव छत्रसाल (बूंदी), महाराणा राजसिंह (उदयपुर), राठौड़ अमरसिंह, चांपावत बल्लूजी, बारहठ केसरीसिंह जी आदि के वीर कार्यों की ओजपूर्ण अभि-व्यक्ति मिलती है। कुछ उदाहरण देखिए—

पाबूजी राठौड़

जायळ रो जिनराव, गायां खींची घेरवी।
साद सुण्यो सीं साव, आधा फेरां ऊठियो ।।

सुरतांण गौड़

गायां कारण गोड़, बिखर्‌यो तिल तिल बाहरू।
तुरियां तंग रणतोड, सुरग सिधार्‌यो सांपरत ।।

महाराणा राजसिंह

जांणों जबर जिहांण, राणो बांको राजसिंह।
खांणो कुळ कलमांण, ढांणो सिर अरि रण धवळ ।।

चांपावत बल्लूजी

चांपो कमध पचण्ड, रण बांको बांको बलू।
बामराड़ बळ वण्ड, लूण उजाल्यो समर लड़ ।।

७. वीर चरित्र सतसई: कविराव मोहनसिंह: उदयपुर के कविराव मोहनसिंह का डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ये सुकवि एवं अध्ययनशील विद्वान थे। 'वीर चरित्र सतसई' में इन्होंने ७२१ दूहों में महाराणा प्रताप, राव चन्द्रसेन, सुरताण देवड़ा, वीर

दुर्गादास, छत्रसाल, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, रणजीतसिंह जैसे वीर चरित्रों को आधार बनाकर वीर भावों की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है। लेखक द्वारा सम्पादित यह कृति प्रकाशनाधीन है। एकाध उदाहरण देखिए—

राव चन्द्रसेन

हूँ स्वतंत्र चांदो कहै, है खग म्हारे हाथ।
नमें न दिल्लीनाथ ओ, माथो पड़तां माथ ॥१२६॥

राठौड़ दुर्गादास

धड़ धरती पै रळतळै, खळखळता रत-खाळ।
दुरगो जिण मग संचरै, उण मारग खैकाळ ॥३००॥

८. सैतान सतसई : मुकनसिंह : मुकनसिंह डिंगल भाषा के यशस्वी कवि हैं। इन्होंने इधर कई वेलियाँ रचकर राजस्थानी वेलि साहित्य को समृद्ध बनाया है। 'सैतान सतसई' के ३८२ दोहों में मेजर शैतानसिंह के बलिदान की अमर-गाथा को वर्ण्य-विषय बनाकर इन्होंने राष्ट्रीय भावना की प्रेरणादायी अभिव्यक्ति की है। कुछ उदाहरण देखिए—

भड़ भाखै भाखर भणो, भळको भू भल भांण।
सत्रूहां साम्हां सांभळै, सत सूरा सैतांण ॥
भण भाखर भौंहां भुँवै, भुँवै भाळ भू भांण।
सूर सबळ समरां सजै, सिव सिमरत सैतांण ॥
सत्र समर संपेषतां, सूर सज्यो सद-मांण।
सिल सिल सिर सिर सौंपतां, सौंप्यौ सिर सैतांण ॥
सिंघां सम सूरा समर, सज सैतांण सुरंग।
सिर सौंप्यो सिखरां सटै, रज रंगण रत रंग ॥

९. नेता सतसई : श्रीमती मानकुंवर : ये कविराव मोहनसिंह की धर्मपत्नी हैं। ये राजस्थानी और ब्रज दोनों भाषाओं में अच्छी कविता करती हैं। 'नेता सतसई' के ७५३ दूहों में तिलक, गोखले, मालवीय, नौरोजी, लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बसु, सरदार पटेल, पं० नेहरू और महात्मा गांधी के देशभक्ति पूर्ण राष्ट्रीय कार्यों की सराहना की गई है। एक उदाहरण देखिए—

लोकमान्य तिलक

तरुणा दीध विकास, विद्या रो निज बुद्धि बल।
कर्‌यो अविद्या नाश, सूरज ज्यों सागे तिलक ॥

———

खंड [२]

कवि (सूर्यमल्ल मीसरण) जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

[क] जीवन

सूर्यमल्ल का जन्म चारणों की मीसण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में संवत् १८७२ में कार्तिक कृष्णा १ को बूंदी में हुआ। इनके पिता का नाम चंडीदान था जो बूंदी-दरबार के प्रधान कवियों में से थे। सूर्यमल्ल के पूर्वजों में नवमी पीढ़ी पूर्व ईश्वर नाम के एक कवि हुए जो सं. १६४० में बूंदी के राजा सूरजमल के शासन-काल में पोलपात्र बनकर आये। सूर्यमल्ल के पितामह बदनसिंह भी प्रसिद्ध कवि थे जिन पर तत्कालीन नरेश राव राजा विष्णुसिंहजी की विशेष कृपा थी। उन्होंने रोसूंदा नामक गांव दिया और पैदल हरौल में आगे चलकर उनका सम्मान किया और लाखपसाव तथा कविराजा की उपाधि भी प्रदान की। इनकी माता का नाम भवानबाई था जो कुम्हारिया (जयपुर) के ठाकुर जोरावरसिंह जी की पुत्री थी।

महाकवि सूर्यमल्ल बचपन से ही असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उनकी असाधारणता के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।[1] उनका शास्त्रीय ज्ञान

१—कहा जाता है कि—

क. पाँच वर्ष की अवस्था में जब विद्यारंभ के लिए उन्हें पाठशाला भेजा गया तो प्रथम दिन ही उन्होंने लेखन-पठन की अभिज्ञता प्राप्त कर ली और तीन दिन में अमरकोष के तीनों ही कांड कंठस्थ कर अर्थ सहित सुना दिये।

ख. सात वर्ष की अवस्था में आशु कवि के रूप में अपने पिता को डिंगल का एक गीत तत्काल छन्दोबद्ध करके सुना दिया।

ग. दस वर्ष की अवस्था में 'रामरंजाट' नामक पद्य ग्रंथ की रचना कर दी।

घ बारह वर्ष की अवस्था में व्याकरण के पदज्ञान के प्रवीण अधिकारी बन गये।

बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल आदि अनेक भाषाओं के निष्णात पंडित थे। वे शकुनशास्त्र, धर्मशास्त्र, मीमांसा, व्याकरण, न्यायशास्त्र, संगीतशास्त्र, दर्शन, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष, चौदह विद्या, चौंसठ कला आदि विषयों के अच्छे ज्ञाता थे।[1]

इन्होंने छह विवाह किये। वंशभास्कर से पता चलता है कि इनकी स्त्रियों के नाम—दोला, सुरजा, विजयिका, जसा, पुष्पा और गोविंदा थे। इनके अनुज का नाम जयलाल था जो अच्छे कवि और वैयाकरण थे। छह स्त्रियाँ होने पर भी किसी से कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए इन्होंने मुरारिदान को गोद लिया। मुरारिदान डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। बूंदी-नरेश रामसिंह जी की आज्ञा से इन्होंने ही 'वंशभास्कर' के अपूर्ण अंश को पूरा किया था। इन्होंने एक डिंगल कोष की भी रचना की। कहा जाता है कि महाकवि सूर्यमल्ल के एक कन्या हुई थी जिसे शराब के नशे में लाड़ लड़ाते समय वे इतना हिलाते-डुलाते रहे कि उसका प्राणान्त ही हो गया।

सूर्यमल्ल के गुरु का नाम स्वरूपदास था जो उस समय के पहुँचे हुए दादूपंथी साधु थे। इनका सूर्यमल्ल पर बड़ा स्नेह था। इनके पारस्परिक पत्र-व्यवहार से यह भी सूचित होता है कि गुरु के हृदय में इस शिष्य के प्रति बड़ा आदर भाव था। स्वरूपदास ने अपने पत्र में इन्हें 'चारणचक्रवर्ति श्री सूर्यमल्लेषु', 'कवि कर्म भुवन-विधान लोकोत्तरप्रजातिषु', 'पंडितमंडल वदनसरोरुहविकासनवचन,' 'दिन-मणिकिरणसंचारचारुतरेषु', 'वेदांतासिद्धान्तप्रत्यग्ब्रह्मतत्त्वगोचर' आदि कहकर सम्बोधित किया है। सूर्यमल्ल ने अपने पत्रों में इनके लिए, 'श्रीपरमपूजनीय', 'स्वामिस्वरूप चरणैः', 'श्रीस्वरूप गुरुचरणाः', 'वन्देस्वरूपालयान्' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। वंशभास्कर के टीकाकार श्रीकृष्णसिंह ने उक्त शब्दावली के प्रयोग के आधार पर दोनों में गुरु-शिष्य के सम्बन्ध के पक्ष को लेकर सन्देह प्रकट किया है। पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बचपन में कवि ने

१—इनके दत्तक पुत्र मुरारिदान ने अपने 'डिंगल कोष' नामक ग्रंथ के प्रारंभ में इनकी विद्वत्ता एवं ज्ञान-गरिमा की प्रशंसा इस प्रकार की है—

देखो चंडीदान रा सुतरो सुजस सुजाण।
दोहा मुर माहे दुरस, वदियो अबै वखाण।।
चउदह विद्या चातुरी, चौंसट कला चवात।
मिमांसा माम्मट वळे, पांतजल हि पढ़ात।।
न्याय उदधि खेवट निरख, वैयाकरण विसेस।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस।।

उनसे विद्या प्राप्त की होगी और यावज्जीवन उनको वे बड़े पूज्य भाव से देखते रहे होंगे।

सूर्यमल्ल के अन्य गुरुओं के भी उल्लेख मिलते हैं। कहा जाता है कि इन्होंने आशानंद से पद-ज्ञान, मुहम्मद नामक किसी मुसलमान से फारसी और किसी मसलमान कलाकार से संगीत-शिक्षा ग्रहण की थी।

सूर्यमल्ल के कई शिष्य थे जिनमें निम्नलिखित शिष्य अधिक प्रसिद्ध हैं—

१. गणेशपुरीजी (चरवास ग्राम : जोधपुर)
२. वल्लभजी बारहठ (गोध्याणा ग्राम : कृष्णगढ़)
३. सीतारामजी बारहठ (किशनपुरा ग्राम : जयपुर)
४. हरदान जी बारहठ (श्यामपुरा)
५. विजयनाथजी खिड़िया (गंगावती)
६. मोतीरामजी रत्नु (धानणवां ग्राम : जोधपुर)
७. बख्शीरामजी बारहठ (बड़े धानणवां ग्राम : जोधपुर)
८. धूंकलजी महड़ (लीलेड़ा ग्राम : बूंदी)
९. मंगलजी राव (बूंदी)
१०. हरदानजी किसनावत बारहठ (डांसलोणी का बास)

संवत् १९२५ में आषाढ़ बदी ११ को इनका स्वर्गवास हुआ।[1]

[ख] व्यक्तित्व

सूर्यमल्ल का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। बाह्य रूप से वे जितने भीम-भयंकर लगते थे, आंतरिक रूप से उतने ही करुण-कोमल। उनका व्यक्तित्व अन्तर्द्वन्द्वों व असंगतियों से परिपूर्ण था। 'वीर सतसई' के सम्पादकों ने उनका शब्द-चित्र खींचते हुए लिखा है, 'विशालकाय, दीर्घ अरुण नेत्र, पुष्ट भुजदण्ड, भौहों से मिली हुई मूँछें, सँवार कर पट्टी बैठाई हुई दाढ़ी,एक हाथ में नग्न तलवार और दूसरे में मंजुवादिनी वीणा,नस-नस और पेशी-पेशी में स्फूर्ति की उमंग—ऐसा आकार मन की आँखों के सामने खड़ा होता है,जब हम वीररसावतार महाकवि सूर्यमल्ल का नाम लेते हैं।' वे अपने पास अंकुश और वीणा रखा करते थे। अंकुश उनके चारणोचित स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम और सत्यवादिता का प्रतीक था तो वीणा उनके हृदय की तन्मयता, संगीतात्मकता, कोमलता और करुणा की प्रतीक।

सूर्यमल्ल स्वाभिमानी प्रकृति के पुरुष थे। वे साधारण दरबारी कवियों की कोटि से बहुत ऊँचे उठे हुए थे। उनमें चाटुकारिता, मिथ्या-प्रशंसा और प्रशस्ति-

---

१—कुछ विद्वानों ने इनका निधन-काल सं. १९२० माना है जो सही नहीं है।

गान की प्रवृत्ति न थी। वे निर्लोभी थे। किसी घटना या प्रसंग को वे जिस रूप में ठीक समझते, उसी रूप में अभिव्यक्त करते। कवि की निरंकुशता और सच्चाई के वे मूर्तिमंत रूप थे। इन विभिन्न गुणों की सूचक कई घटनाएँ सूर्यमल्ल के जीवन से सम्बन्धित हैं जिनमें कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं——

१. एक बार गंगा-पूजन करते समय बूंदी-दरबार रामसिंह जी ने चौबे अम्बालाल जी से कहा कि गंगालहरी के पाठ के प्रभाव से तासली में रखी गई गंगाजल की शीशी में से गंगाजल उफन कर जब बाहर आजाय तब मुझे कह देना। अम्बालाल जी ने विशेष ध्यान न रखने के कारण दरबार के पूछने पर यह कह दिया कि गंगाजल तासली में नहीं आया। पर वस्तुतः वह उफन कर तासली में आ गया था। दरबार ने जब उसे हाथ में लेकर देखा तो उनसे पूछा कि यह क्या है? प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा——पहले तो नहीं था, हुजूर के पवित्र हाथ के प्रभाव से आ गया दिखता है। दरबार यह उत्तर सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने कहा कि ब्राह्मण होकर इस तरह की मिथ्या-प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। क्या गंगालहरी से भी अधिक मेरे हाथ का प्रभाव हो सकता है? दरबार के क्रुद्ध होने के प्रसंग से अम्बालाल जी बड़े चिन्तित हुए, उन्होंने सूर्यमल्ल से यह घटना निवेदित की। सूर्यमल्ल ने यह प्रसंग सुनकर कहा——अरे भाई, आज यह नयी बात जानी कि मेरा स्वामी प्रशंसा से नाराज होता है। और उन्होंने दरबार के नाम एक अर्जी लिखी——आज ज्ञात हुआ कि प्रशंसा करने से आप हमारे लेखकों के दरोगा चौबे अम्बालाल जी से नाराज हो गये। यह नयी बात मालूम हुई और ख्याल आया कि मैंने तो आपकी बहुत प्रशंसा की है और आगे भी करने की इच्छा है——सो इस तरह आप कभी मुझ पर भी नाराज हो सकते हैं। आपको वास्तविकता से इतना प्रेम हो तो ऐसी खरी-खरी सुनाई जाय कि फिर न मुँह दिखाओगे और न हमारा मुँह देखना पसन्द करोगे। कहा जाता है कि इस पत्र को पाकर दरबार ने तुरन्त अम्बालाल जी को बुलाकर तसल्ली दे दी।

२. अपने शिष्य स्वामी गणेशपुरी जी के इस अनुरोध को—यदि आप कुछ समय के लिए जोधपुर पधार आवें तो जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह जी आपको ६०-७० हजार की जागीर अवश्य दे देंगे——सूर्यमल्ल ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि रामसिंह जी को छोड़कर यह लोभ मुझसे न होगा।

३. महाराज कुमार भीमसिंह जी की बरात में बांसवाड़ा जाने पर वहाँ बूंदी के प्रधान अमात्य बोहरा रतनलाल जी से किसी बात पर नाराज होकर ये चल दिये। रतलाम-नरेश बलवंतसिंह जी को जब इस बात की सूचना मिली तो ढाई कोस तक सामने आकर वे ससम्मान इन्हें ले गये और पच्चीस हजार रुपयों की जागीर देकर वहाँ रखना चाहा पर सूर्यमल्ल ने बड़े सहज भाव से यह कहकर कि

क्या करूँ ? रामसिंह जी के बिना मेरा दिल नहीं लगता—इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया।

४. एक बार भणाय में वहाँ की रानी ने सूर्यमल्ल जी के पास अपनी दासी के साथ कुछ कीमती चूनड़ियाँ इस सन्देश के साथ भिजवायीं कि कविराजा इनकी कीमत करें। प्रत्युत्तर में इन्होंने कहलाया कि इनकी वास्तविक कीमत तो मैं तब करूँगा जब राजाजी के मरने पर रानीजी इन्हें पहनकर सती होंगी। कहा जाता है कि रानी इस उत्तर से इतनी प्रभावित हुई कि उसने इन चूनड़ियों को सहेज कर रख लिया और राजाजी के मरने पर उन्हीं में से एक चूनड़ी पहनकर उनके साथ सती हुई।

५. सूर्यमल्ल प्रतिदिन सुबह सूर्य भगवान् से यह प्रार्थना किया करते थे कि 'हे भगवान् भास्कर ! एक दिन ऐसा भी उगे कि जब मेरे स्वामी का मुण्ड घोड़ों की टापों में लुढ़कता मिले।' एक दिन रामसिंह जी की नवविवाहिता रानी नगोदणी जी ने कवि के मुख से यह बात सुन ली। उन्होंने सूर्यमल्ल से पुछवाया कि आप अपने स्वामी की प्रतिदिन ऐसी क्या दीर्घायु की कामना करते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—मैं यही कामना करता हूँ कि मेरा स्वामी दीर्घायु ही क्या, अमर हो जाय। यदि मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई और आपने भी कर्तव्य का पालन कर सहगमन किया तो अपने पति के साथ आप भी अमर हो जायेंगी। महारानी ने जब महाराजा को यह बात सुनाई तो उन्होंने सूर्यमल्ल की बात का समर्थन करते हुए कहा कि राजपूत के लिए रण-मरण से अधिक सौभाग्य की बात और हो ही क्या सकती है ?

६ कहा जाता है कि २५-२६ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने महारावराजा रामसिंह जी की आज्ञा से 'वंशभास्कर' ग्रंथ बनाना आरंभ कर दिया था पर वह पूरा नहीं हो सका। कवि ने उसे अधूरा ही छोड़ दिया। इसका कारण यह बताया जाता है कि जब कवि ने रावराजा के दोषों का भी वर्णन करना शुरू किया तो वे नाराज हो गये और सूर्यमल्ल ने सही बात लिखने में ही सच्चा कवि-कर्म समझा। अतः उन्होंने आगे से ग्रंथ-रचना करना ही बन्द कर दिया।

इन घटनाओं और प्रसंगों से कवि की स्पष्टवादिता, निर्भीकता, निर्लोभता, दृढ़ता, अक्खड़पन आदि बातों का पता चलता है।

इस सघन भूधर से ही निसृत होने वाली स्रोतस्विनी भावुकता का पता भी कवि के व्यक्तित्व से लगता है। काव्य और संगीत ने मिलकर उनमें मानवीय गुणों को विकसित किया। वे बड़े से बड़े दुःख को भी संगीत के साहचर्य से भूल जाया करते। उनकी उदारता, सदाशयता, सहनशीलता, दायित्व बोध आदि का पता निम्नलिखित जीवन-प्रसंगों से लगता है—

१. कहा जाता है कि सूर्यमल्ल ने एक बार तुलसी के थाले में एक लाल मिर्च लगाई। इस मिर्च के प्रति उनके मन में बड़ा आत्मीय भाव था। ज्यों-ज्यों वह मिर्च बढ़ती, कवि बड़े प्रसन्न होते। एक दिन एक मोर उसे खा गया। कवि को इससे बड़ा दुःख हुआ।

२. अपने लेखक अम्बालाल जी के लड़की होने पर सूर्यमल्ल ने दरबार से उन्हें कुछ सहायता देने की प्रार्थना की। इस पर दरबार ने यह कह कर कि पुण्यार्थ की सीमा आपके पास ही है, जो उचित समझें, मदद करें, सूर्यमल्ल को ही जिम्मेदार बना दिया। सूर्यमल्ल जी ने प्रतिदिन, दरबार की ओर से कांसी के कटोरे में सवा पाव घी के साथ आध माशा सोना जो किसी ब्राह्मण को दिया जाता था, वह अम्बालाल जी को ही देने की आज्ञा दे दी। लगभग दो वर्ष तक यह क्रम चलता रहा। यह बन्द तब हुआ जब स्वयं अम्बालाल जी ने बहुत कुछ निवेदन कर इसे बन्द करवाया।

३. अपनी पत्नी ठकुराणी महियारणी जी (थूणपुर : कोटा) के देहान्त होने पर दाहक्रिया के लिए जाते समय बहादुर जी कलावंत के रास्ते में मिल जाने से, उनसे तंबूरा लेकर सूर्यमल्ल ने संगीत की वह स्वर लहरी छेड़ी कि सब दंग रह गये।

४. कहा जाता है कि झज्झर की एक गणिका के गायन पर सूर्यमल्ल जी अत्यन्त मुग्ध थे। उन्होंने 'वंशभास्कर' लिखना तक बन्द कर दिया था। यह स्थिति देखकर रावराजा रामसिंह जी ने उस गणिका को समुचित पुरस्कार देकर वहाँ से रवाना करवा दिया। बाद में किसी बहाने से उन्हें दरबार में बुलाया गया। वहाँ उस गणिका को न पाकर सूर्यमल्ल जी इतने अधिक बिगड़े कि उन्होंने सारे कपड़े उतारकर आग में जला दिये और शरीर पर भस्मी रमा ली। कई दिनों बाद जाकर उनका यह क्रोध शांत हुआ।

५. यह भी कहा जाता है कि एक बार किसी गणिका के गायन पर प्रसन्न होकर सूर्यमल्ल ने उसे कुछ रकम इनाम देने के लिए खजाने पर चिट्ठी लिख दी। खजानची ने रकम अधिक समझ कर उसे टाल दिया, इस पर सूर्यमल्ल ने उस रकम को दुगुना कर फिर भेजा। रामसिंह जी तक जब यह बात पहुँची तो उन्होंने खजानची को कहा कि तुम्हें उनकी चिट्ठी वापिस नहीं लौटानी थी और आज्ञा दी कि जो रकम पहले लिखी वह तो खजाने से दे दी जाय और उतनी ही तुम अपने पास से दो।

सूर्यमल्ल को अफीम-सेवन और शराब पीने का बड़ा शौक था। वे शराब पीकर ही काव्य-रचना किया करते थे। सलाह-मशविरा करने के लिए जब भी दरबार उन्हें आमंत्रित करते, वे शराब पीकर ही जाते थे। रतलाम-नरेश

बलवन्तसिंह जी की मृत्यु का समाचार सुनकर, उन्हें जलांजलि देने के लिए कवि ने जो छंद लिखे वे भी शराब पीकर ही। उनका विश्वास था कि मद्य पिये बिना अच्छी कविता नहीं हो सकती। शराब के प्रति इतना आग्रह होने पर भी वे कभी विवेकरहित नहीं हुए। वे शराब कई बार पीते पर औषधवत् ही। स्वभाव से वे मस्तमौला थे। जब कभी मन में आता सितार लेकर हवेली में लगे इमली के पेड़ पर बने मचान पर जा बैठते और तन्मय होकर गाते। गुलेल चलाने का भी इन्हें बड़ा शौक था।

सूर्यमल्ल केवल कवि ही नहीं थे, वे सच्चे मित्र, हितैषी, परदुःखकातर, विद्वान, सलाहकार, समाज-सुधारक, देशप्रेमी, इतिहासवेत्ता, संगीतज्ञ, षडभाषाभिज्ञ आदि सब कुछ थे। वे राजस्थान की तत्कालीन परिस्थितियों के सूक्ष्म द्रष्टा थे। उनका राजस्थान के सुप्रसिद्ध महात्माओं, राजाओं, जागीरदारों, कवियों और वीरों से घनिष्ठ सम्पर्क था। 'बड़े-बड़े राजा और उमराव उनके पास बढ़िया से बढ़िया शराब, कटारी, तलवार, और घोड़े भेंट-स्वरूप भेजने में अपना अहोभाग्य समझते थे, बड़े-बड़े राजा, उमराव उनके समागम के लिए बेचैन रहते थे।[1] सूर्यमल्ल का जिन राज-परिवारों से विशेष सम्पर्क था वे इस प्रकार हैं—

१. बूंदीनरेश—रावराजा रामसिंह जी
२. रतलाम—नरेश बलवंतसिंह जी
३. सीतामऊ—महाराजकुमार रत्नसिंह जी
४. रतलाम के उमराव श्रवण के ठाकुर जोरावरसिंह जी
५. शिवगढ़ के ठाकुर गोपालसिंह जी
६. नामली के ठाकुर बखतावरसिंह जी
७. पीपलिया के ठाकुर फूलसिंह जी
८. आउवे के ठाकुर खुशालसिंह जी
९. देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह जी

इस सम्पर्क-साहचर्य से सूचित होता है कि सूर्यमल्ल का व्यक्तित्व तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक प्रगति में विशेष सचेष्ट था। लोगों के मन में उनके प्रति बड़ा आदर-भाव था। जब सूर्यमल्ल का देहान्त हुआ तब ऐसा लगा कि गुणों का

१—हृदय बीच आरोह, श्रवण दरस तैं थो सरस।
मीसण थारो मोह, बहुत मिल्यां क्यूं नहं वधै ॥१॥
सूजा थारो स्नेह, रात दिवस बींद्यां रहै।
दाहे छिन छिन देह, मीसण मिलियां ही मिटै ॥२॥
—सीतामऊ महाराजकुमार रत्नसिंह का पत्र

समुद्र ही नष्ट हो गया है। एक प्रेरणादायी आलोक स्तम्भ ही ढह गया है। अलवर के सुप्रसिद्ध कवि रामनाथ कविया[1] तथा कोटा के कविराजा भवानीदान महियारिया[2] ने बड़े मार्मिक शब्दों में उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

१—देस कविंद दूजाह, रहिया सो आछां रहो।
सामंद गुण सूजाह, तो मरतां बिनस्यो त दिन ॥

देश में दूसरे कवि जो शेष रह गये हैं, परमात्मा करे, वे बने रहें, लेकिन हे सूर्यमल्ल ! जिस दिन तुम्हारी मृत्यु हुई, उस दिन गुणों का समुद्र नष्ट हो गया।

करवा अपकाजाह, सप्पूती धारै सकळ।
रजवाड़ा राजाह, सब जग जाणे सूजड़ा ॥

अपने काम करने के लिए तो सभी सपूत कहला सकते हैं, लेकिन परोपकारी तो सूरजमल ही है, जिसे सारे राजा, रजवाड़े तथा सम्पूर्ण संसार जानता है।

थूंक्यौ थुथकारोह, गाड़ण वीकाणै गुड्यौ।
ह्वै जग हैकारोह, सुकवी मरतां सूजड़ो ॥

जिस प्रकार किसी बड़े नक्षत्र के टूटने पर लोग अनर्थ भाव को प्रकट करने के लिए, थुथकारा दिया करते हैं, उसी प्रकार सूर्यमल्ल की मृत्यु पर थुथकारा दिया—बीकानेर में गाडण लुढ़क गया। सुकवि सूर्यमल्ल के मरते ही सारे संसार में हाहाकार मच गया।

जळ कायब जस जोग, ये सब साथै ऊठिया।
भामी कीरत भोग, सुरग सिधातां सूजड़ा ॥

सूर्यमल्ल के स्वर्ग सिधारते ही पराक्रम, काव्य, यश, योग, कीर्ति और भोग ये सब एक साथ संसार से उठ गये।

२— भाण इखू रस घट भयो, चूंछ भयो कवि चंद।
नर बाणी सूजा करी, वर बाणी सुर वंद ॥

वीरभाण ईख के रस का घड़ा था और कवि चंद चषक था। लेकिन हे सूरजमल ! नरवाणी को सुरवंदनीया श्रेष्ठवाणी तुमने ही बनाया।

हायन एक हजार में, आदि हुवौ नहिं अंत।
सुरसत बाणी सूजड़ा, पढ़ी पदारथ पंत ॥

एक हजार वर्षों के प्रारंभ और अन्त में कोई (महान्) कवि नहीं हुआ, परन्तु स्वयं सरस्वती ने सूर्यमल्ल की वाणी में पदार्थ (तत्त्व) पाया।

[ग] कृतित्व

सूर्यमल्ल के व्यक्तित्व की विशेषताएँ उनके कृतित्व में स्थान-स्थान पर प्रकट हुई हैं। उन्होंने वाणी को सिद्ध कर लिया था। कहा जाता है कि 'वंशभास्कर' की रचना करते समय चार लेखक[1] सुबह से शाम तक उनके पास रहते थे। शराब पीने के बाद अथवा जब कभी वे मस्ती में आते, 'हूँ' कहते और सब लेखक सावधान हो जाते। उनके बोलना शुरू करने के साथ ही वे कलम उठाकर चलाने लगते। जब लिखकर बन्द कराने की इच्छा होती तब सूर्यमल्ल कहते, 'हे सरस्वती माता ! कृपा करो, अभी मुझमें इतनी शक्ति नहीं है।'

सूर्यमल्ल द्वारा निर्मित निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख सतसई के सम्पादकों ने किया है—

१. वंशभास्कर
२. वीर सतसई
३. बलवद्विलास (बळवंत विलास)
४. रामरंजाट
५. छंदोमयूख
६ सतीरासो
७. फुटकर कवित्त, सवैये आदि
८. धातुरूपावलि

'वंशभास्कर' एक विशालकाय इतिहास-काव्य ग्रंथ है। बूंदी-नरेश रामसिंह जी की आज्ञा से सं. १८९७ में इसकी रचना आरंभ की गई। मूल ग्रंथ लगभग २५०० पृष्ठों का है। टीका सहित यह ४३६८ पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है। इसमें मुख्य रूप से बूंदी राज्य का इतिहास वर्णित है। प्रसंगवश अनेक विषयों और कथाओं का सन्निवेश हो गया है। यह ग्रंथ विविध छन्दों में लिखा गया है। बीच-बीच में गद्य का भी प्रयोग किया गया है। इसमें अपने पांडित्य एवं शब्द-ज्ञान प्रदर्शन हेतु कवि ने 'अनेक स्थानों पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के अप्रचलित एवं कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में कृत्रिमता और दुरूहता आ गई है।[2] कई नये शब्द भी कवि ने गढ़ कर रख दिये हैं जिससे यह ग्रंथ अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट हो गया है।

१—कुछ लोगों के अनुसार आठ लेखक उनके दाएँ-बाएँ रहते थे। सतसई के सम्पादकों ने तीन लेखकों के नामों का उल्लेख किया है, वे हैं—अम्बालाल जी दाहिमा, नंदराम जी गूजर गौड और हुंडाजी दाहिमा।

२—डॉ. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३१७

इसकी भाषा के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने विविध मत प्रकट किये हैं। श्री सूर्य-करण जी पारीक ने इसे कृत्रिम डिंगल कहा है। डॉ. मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इनकी भाषा न तो शुद्ध डिंगल है, न शुद्ध पिंगल, वह चारणों की खिचड़ी भाषा है जिसमें संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है और क्रियापद, संयोजकशब्द, कारक चिन्हादि भी डिंगल और पिंगल दोनों के मिलते हैं।[1] सतसई के सम्पादकों ने इसकी भाषा को प्राकृत मिश्रित ब्रजभाषा कहा है। वस्तुतः इन अनुमानों की कोई आवश्यकता नहीं। कवि ने काव्य में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि विविध भाषाओं का प्रयोग किया है और जहाँ जिस भाषा का प्रयोग किया है, वहाँ आरंभ में उसका नामोल्लेख कर दिया है। ग्रंथ का तीन चौथाई भाग ब्रजभाषा (प्राकृत-मिश्रित ब्रजभाषा) में है। वंशभास्कर में जो गीत लिखे गये हैं वे शुद्ध राजस्थानी में ही हैं। कवि ने, लगता है अपने बहु भाषाज्ञान का प्रयोग इस ग्रंथ में उन्मुक्त होकर किया है। ग्रंथ की भाषा का एक नमूना देखिए—

कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
अरिष्ठ के अपष्ठ वृन्द लोम कन्द उन्नये॥
बनै अरी पलास कान अन्दु नाग वल्लरी।
कलेज पील् पर्णिका कसेरु तोरङ्क्करी॥

सूर्यमल्ल का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ 'वीर सतसई' है। इसकी रचना सन् १८५७ ई. में हुई थी। इसमें केवल २८८ दोहे हैं। इन दोहों में राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओं, राजपूत वीरों एवं वीरांगनाओं की उत्साहपूर्ण भावनाओं एवं तत्का-लीन परिस्थितियों का ज्वलंत चित्र प्रस्तुत किया गया है।

इनकी तीसरी कृति 'बलवद्विलास' है। इसमें रतलाम-नरेश बलवंतसिंह जी का चरित्र वर्णित है। राजनीति के विविध अंगों—शत्रु, मित्र, दण्ड, कोश, वाहन आदि—का इसमें बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया गया है। इसकी रचना सं. १९१५ में हुई। इसकी भाषा का एक नमूना देखिए—

नित्य ही निवेरि बलवन्त वसुधापति यों,
सोदर समेत खुरली में खेल ख्यात करि।
कोहल मतीर रु दसांगुल कपित्थ बिल्व,
क्रम तैं किते ही स्थूल बेध्यन के पात करि॥

१—डिंगल में वीररस, पृ० ८८
२—भूमिका, पृ० ६४-६५

मंडूरक मृत्तिका मिलाय गुरु गोल गाढ़े,
खात करि जात बंदूकन सों बात करि।
तारी देत एके जल स्वस्तिक कों फेरि देत,
गेरि देत गुंजन गिलोलन की घात करि॥

इनका चौथा ग्रंथ है 'रामरंजाट'। इसमें रावराजा रामसिंह जी द्वारा विजयादशमी के दिन खेले गये शिकार का वर्णन है। इस ग्रंथ की रचना सं. १८८२ में हुई। इसके वर्णन बड़े स्वाभाविक और ओजपूर्ण हैं। हाथियों का यह चित्र देखिए—

रचे रज डंबर धूंसर रंग, चलावत पंखिय चोर सुचंग।
सनीसर रा हरकेत सभाण, प्रभागिर कज्जल कै परमाण।
इसा गजराज दराज अभंग, धसै नभ चाचर जेण सुचंग।
कढे मह महिप जेम कढाव, झरैं जिम दोइ पटा झरणाव।
भ्रमै जिण भंमर डंमर भीड़, न आवत धावत माहवत नीड़।

इनका पाँचवाँ ग्रंथ 'छंदोमयूख' छंद शास्त्र का साधारण ग्रंथ है। कहा जाता है कि 'सती रासो' और 'धातुरूपावलि' नाम के दो ग्रंथ और भी इन्होंने रचे थे पर देखने में नहीं आये। फुटकर रूप में रचित कवित्त, सवैये, सोरठें और गीत भी मिलते हैं। ये विविध प्रसंगों और घटनाओं को आधार बनाकर लिखे गये हैं। रतलाम-नरेश बलवन्तसिंह जी की मृत्यु के समाचार सुनकर कवि ने उन्हें जो श्रद्धांजलि दी, उसका एक नमूना यहाँ प्रस्तुत है—

ग्रस्त दव दारिद में त्रस्त भो बुधन वृन्द,
अस्त भो प्रकाश हा हा ! द्वादश रविन को।
काव्यमय रत्न हा हा ! ठां ठां भये कंकर से,
हा हा पुहवी में भयो पात सु पविन को॥
रत्नपुरराज बलवंत के त्रिदिव जात,
स्वांत संग हा हा ! भो हुतासन हविन को।
रत्नाकर फूटो हाय ! ग्रन्थनिधि खूटो हाय !
कल्पतरु तूटो हाय ! कामद कविन को॥

कविराजा मुरारिदान जी अयाचक, जयपुर से हमें इनके निम्नलिखित सोरठे प्राप्त हुए हैं जो मोहनां को सम्बोधन कर कहे गये हैं—

हँस हँस पकड़ो हाथ, रंगभीणी राधातणों।
रहज्यो एक ही रात, (पण) मिलता ज्याजो मोहनां॥१॥
गऊ उछैरण गैल, संग आवै ब्रज री सखी।
छळ कर नंदरा छैळ (पण) मिलता ज्याजो मोहनां॥२॥

गोकुल कुंज गलीह, अली लगै अलखावणी ।
छतियां विरह छलीह, (पण) मिलता ज्याजो मोहनां ।।३।।
ता दिन यमुना तीर, मुरली बाजी माढ़ में ।
स्वामी बिना सरीर, (म्हारो) मन्दिर सूनो मोहनां ।।४।।
कच मच मचियो कीच, जल, काजल मेला हुवा ।
बसगी हिवडै बीच, मूरत थारीं मोहनां ।।५।।

प्रथम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम (सन् १८५७), के वीर सेनानी आउवा के ठाकुर खुशालसिंह (कुशलसिंह) और नृसिंहगढ़ के महाराजकुमार चैंनसिंह के सम्बन्ध में भी सूर्यमल्ल ने वीर गीतों की रचना की। तीन गीत यहाँ प्रस्तुत हैं—

गीत आउवा रो

लोहां करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ा रो लाडौ,
आडो जोधांण सूं खेंचियो वहे अंट ।
जंगी साल हिंदवांण रो आवगो जींनै,
आउवो खायगो फिरंगाण रो अजंट ।।

रीठ तोपां बंदूकां जुञबां नाळां पेंड रोपै,
बकै चंडी जय-जय रुद्र-पिया रा बाखांण ।
मारवा काज सौ वज्र हिया रा भूरियां माथै,
कुसळेस आयो हाथां लियां रै केवांण ।।

गजां तूटै भ्रसुंडां गै ढाल फूटै सोर गंजां,
जुटै भड़ां हजारां तड़च्छां खावै जोह ।
भूरो बाघ चंपोराव भूरियां ऊपरा भुट्टै,
छुट्टै प्रांण कायरां न मावै हिये छोह ।।

भागे भीच गोरा सिधांपरां रा जिहांन भाळो,
दावो तेगां झाट दे उत्तालो दसूं देस ।
तीसूं नींद न आवै, कंपनी लगाड़े ताला,
कालो हिये न मावै अगंजी कुसळेस ।।

गीत आउवा खुसालसिंह रो

डांण ठेलै तूं मातंगां भड़ां डाचरा उबाड़ डाकौ,
मूछां तांण पैले तूं कंपनी गंजै माल ।
काट थांणौ रेलै तूं त्रयणां जमी जोस खाथै,
खसतो खपांणां माथै झेलै खुसाळ ।।

जिकां जिकां ओद्रावा पडंतां लारैं जेण लागी,
तिका तिका कायरां करेण लागी ताय।
राजा रो कडूंबो हैकंपियौ लारै जेण लागी,
आउवे नाथ रै चूंबै देण लागी आय।।

....

पाछा पाछा भूपती देण लागा पाव,
दूजा वीर काळ र सुभाव खुसाल रै देखै,
गाजै रिड़मालां रै अंगजी गाढै राव।

मेवाड़ ढूंढाड़ जीऊं ही हाड़ौती माळवौ मोळौ,
दोंळा काळ चक्र सो किणी न आवै दाय।
झालै किसौ तो विनां पयाळ जाती काळ झांप,
लाडली पंगुळी चांपा अंगुळी लगाय।।

गीत नरसिंहगढ़ चैनसिंह रो

दगौ बिचारै फेरियो अंगरेजां लोगां चौगड़द्दो,
तासा बंबी झडंदां तेड़ियौ नाग ताय।
भाळ धांचौ फेरियौ खैंह री हूंत छायो भांण,
बांघलो केहरी चैंन घेरियो बलाय।।

माचै खाग झाटां राचै तंवाई छ खंडां माथै,
रत्तां आट पाटां नदी बहाई रोसाग।
पाथ थाटां जंग रूपी कुबांणा नवाई पांणा,
सत्राटां बेढ़ियौ थाटां सवाई सौभाग।।

सुणै घोर तासां आसमांण लागियो सीस;
सत्तां धू चैन रो खाग बागियो समूल।
कोपै हणां आसुरां विभाड़वा आगियो किनां,
सिंधुरां पाड़ेबा सूतौ जागियो सादूळ।।

देखतां अेहवो जंग धड़क्कै आगरो दिल्ली
बंबी जैत माग रा रड़क्कै वारंबार।
झड़क्कै खाग रा बाढ़ भड़क्कै कायरां झुण्ड,
हमल्लां नाग रा माथा रड़क्कै हजार।।

भद्र काळी पीवै श्रोण उमंगै खप्परां भरै,
वाजै यूं मुनीस वाळी भेरी नाद बंग।

ताळी दे जोगणी रंभा माळ रा चौसरा तूटै,
जूटै बीर रोस रा कमाळी जेम जंग ।।

झड़क्का खणंकै बाजै सेल रा घमोड़ा झाट ;
रड़क्का गुरजां गाजै घमौड़ा रढंत ।
आवधां वैरियां वाळा माथा रा चटक्का उडै,
बटक्का चैन रा काच सीसी ज्यूं बढंत ।।

हीकां धरै साहंसी वैरियां धू चलाया हाथ,
आहंसी नवीठा काछी मलाया औसांण ।
पाथ ज्यूं अनम्मी खंध वंसनूं चाढियौ पांणी ;
ग्रूं पछै ऊमटां नाथ पोढ़ियौ आराणं ।।

बांना अंग धारण भू जाहरां करेगो बातां,
उधरेगो हाथां दंत बारणा ऊबाड़ ।
उछाहां भरैगो खाग धारंगां खरेगो अंग,
बारंगां बरेगो चैन लोहड़ा बजाड़ ।।

खंड [३]

वीर सतसई और उसकी समीक्षा

[क] सतसई निर्माण की पृष्ठभूमि

'वीर सतसई' के निर्माण के स न्ध में हमें दो प्रकार की धारणाएँ मिलती हैं। एक का सम्बन्ध जनश्रुति से है और दूसरी का सम्बन्ध ऐतिसाहिक पृष्ठभूमि से है। यहाँ दोनों के सम्बन्ध में विचार करना समीचीन होगा।

(क) जनश्रुति :

सतसई के सम्पादकों ने वीर सतसई के निर्माण के सम्बन्ध में बूंदी के ठाकुर शंकरदान जी मोरटहूका से प्राप्त जो विस्तृत सूचना दी है[1], वह हमें जनश्रुति या किंवदन्ती ही प्रतीत होती है। उसका संक्षेप-सार इस प्रकार है—

बूंदी के रावराजा उम्मेदसिंह जी के तीन पुत्र थे। (१) अजीतसिंहजी, (२) बहादुरसिंहजी और (३) सरदारसिंहजी। उम्मेदसिंहजी ने अजीतसिंह जी को राज-काज का भार सौंप कर काशी-वास स्वीकार कर लिया। बहादुर-सिंहजी को गोठड़ा की जागीर मिली और सरदारसिंहजी को दुगारी मिली। अजीतसिंहजी का कुवरपने में ही देहान्त हो गया। इनके पुत्र विष्णुसिंहजी थे, जिनके सन्तान न होने की अवस्था में दुगारी वाले सरदारसिंहजी के लड़के को राजगद्दी पर लाने का विचार होने लगा। इस पर गोठड़ा के बहादुरसिंहजी के लड़के बलवन्तसिंहजी ने एतराज किया और कहलाया कि पहला हक गोठड़े का है। मैं इस अन्याय को जीते जी सहन नहीं कर सकूंगा। जब इनकी प्रार्थना स्वीकार न हुई तो इन्होंने नेणवा नामक कस्बे पर अधिकार कर लिया और वहीं से बूंदी के आधे इलाके पर राज्य करने लगे। तीन वर्ष बाद जब विष्णुसिंहजी के पुत्र उत्पन्न हो गया तो वे यह कहकर वापस गोठडे चले गये कि गद्दी का मालिक उत्पन्न हो गया है, सब राज्य उसी का है।

इधर दुगारी वाले सरदारसिंहजी की लड़की की शादी शौपुर बड़ौदा के गौड़ों के यहाँ हुई। बलवंतसिंहजी ने इस अवसर पर हथलेवे में शौपुर दे दिया,

---

१—भूमिका, पृ० ६९-७१

जिस पर सिन्धिया का कब्जा था, अतः उसे लेने के लिए खैराड़ के मीणों एवं दूसरे राजपूतों की फौज एकत्र कर उन्होंने चढ़ाई करने की तैयारी की। इसी बीच एक ब्राह्मण ने आकर उनसे निवेदन किया कि पाटण में केशोरायजी के दर्शन एवं चम्बल में पर्व-स्नान कर, फिर युद्ध के लिए प्रस्थान करें। बलवंतसिंहजी बड़े आस्तिक और केशोराय जी के परम भक्त थे। अतः सारी सेना को वहीं रोककर स्वयं सकुटुम्ब पाटण गये। वहाँ पूर्व-निश्चयानुसार अकेले पाकर अंग्रेज, ग्वालियर व बूंदी की सेना ने इन्हें घेर लिया। घमासान युद्ध हुआ जिसमें बलवंतसिंह जी अपने दो लड़कों (११ व ९ वर्ष के) के साथ मारे गये। तीसरा लड़का जो केवल दो वर्ष का था, किसी तरह बच गया। उसका नाम भौमसिंह था।

जब भौमसिंह बड़ा हुआ तो बूंदी-नरेश रामसिंह जी से असंतुष्ट रहता और कभी दरबार के पास मुजरे के लिए भी नहीं जाता। दरबार ने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह न माना। अन्ततः उसे समझाने का काम सूर्यमल्लजी को सौंपा गया। वे गोठड़ा गये। उन्होंने भौमसिंह से कहा—वे मालिक हैं, तुम्हें हर तरह कब्जे में कर लेंगे, अच्छा तो यही है कि तुम स्वेच्छा से उनकी आज्ञा मानकर उनके पास चले चलो। पर भौमसिंह अपने संकल्प से नहीं डिगा। उसने उत्तर दिया—दरबार यदि मुझे गिरफ्तार ही करने पर उतारू हो जायेंगे तो मैं भी राजपूत हूँ, मर कर जवाब दूंगा। इस पर सूर्यमल्लजी ने कहा—तुमसे ऐसा शायद ही हो। भौमसिंह ने प्रत्युत्तर में कहा—मैं जो कहता हूँ, वही करूँगा, आप विश्वास रखें। सूर्यमल्लजी ने कहा—यदि यही इच्छा है, तो अपने प्रण पर अटल रहना। मैं तुम्हें अपने काव्य से अमर कर दूँगा।

अन्ततोगत्वा गोठड़े पर फौज भेजी गई। सूर्यमल्लजी ने अपने वचन के अनुसार प्रतिदिन वीरता के एक सौ के करीब दोहे बनाने शुरू कर दिये। उधर भौमसिंह अपने पास पर्याप्त सेना न होने पर भी मुकाबले के लिए तैयार हो गया और दो दिन तक बड़ी बहादुरी से लड़ा। तीसरे दिन उसके पैर उखड़ गये और वह भागकर कोटा चला गया। सूर्यमल्लजी को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने दोहे बनाना बन्द कर दिया, फलस्वरूप वीर सतसई अधूरी रह गई।

ऊपर जिस जनश्रुति का उल्लेख किया गया है, वह साधार प्रतीत नहीं होती। सूर्यमल्लजी द्वारा ही प्रणीत, वृहद् ग्रंथ 'वंश भास्कर' के गद्यात्मक सारांश 'वंश प्रकाश' में भौमसिंह सम्बन्धी जो प्रसंग दिया गया है[1], उससे उक्त कथन प्रमाणित

१—उन्हीं दिनों में बूंदी के मुल्क में रहणे वाले मीणों ने बड़ी लूटमार मचादी थी। उस वक्त इन्होंने (रावराजा रामसिंह ने) मीणों को घेर करके मुल्क में चैन किया। बलवन्तसिंहजी के बेटे भौमसिंह जी अपने पिता

नहीं होता। कोटा के कविराजा श्री दुर्गादान जी के संग्रह में बलवंतसिहजी सम्बन्धी एक गीत के साथ निम्नलिखित दोहा लिखा हुआ मिलता है—

संवत् अठार अक्यासिये, मंड जुध कातिक मांय।
बलवंत हाडो बीसम्यो, पून्यौं रवि दिन पाय॥

इस दोहे से स्पष्ट है कि बलवन्तसिहजी की मृत्यु सं. १८८१ में हुई। सूर्यमल्ल जी ने 'वीर सतसई' का जो निर्माण काल दिया है, वह इस प्रकार है—

बीकम बरसां बीतियो, गण चौ चन्द गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस॥

इस दोहे के अनुसार वीर सतसई का निर्माण स. १९१४ वाँ वर्ष व्यतीत होने पर ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी गुरुवार को हुआ। अतः स्पष्ट है कि वीर सतसई के निर्माण में उक्त जनश्रुति का कोई योग नहीं रहा है। इस जनश्रुति से केवल इतना पता चलता है कि सामान्यतः कवि उन चरित्रों को अपना वर्ण्य-विषय बनाया करते थे जिनमें राजपूती स्वाभिमान निहित रहता था, जो वचन के पक्के होते थे, आन पर मर मिटते थे और जब कभी कायरता दिखाकर युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े होते, तब उनके प्रति कवि की तनिक भी श्रद्धा नहीं रहती, उसकी कलम रुक जाती। वे पात्र कवि की भर्त्सना के शिकार होते, अपयश के भागी होते।

(ख) ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :

राजस्थानी वीर-काव्य की पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हम प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम (सन् १८५७) के समय राजस्थान में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ उमड़ती हुई जागरूक शक्तियों की चर्चा कर चुके हैं। आउवा, भरतपुर, नरसिंहगढ़, कोठारिया, सलूम्बर, आसोप लोडसर आदि स्थानों के राजा और ठाकुरों में

के चलण पर चलने लगे। कितनीक बातें उन्होंने ऐसी करीं कि जिससे सरकार बूंदी के बन्दोबस्त में खलल पड़े और तुहमत आवै। जो कोई सरकार का हरामखोर होता उसको पनाह देणा शुरू किया। जब बूंदी की तरफ से भले आदमी भेजकर समझाये तो कुछ भी ध्यान में नहीं लाये। सरकार ने बहुत गम खाया परन्तु जब सरकार के कुसूरवार खैराड़ के मीणे लोगों को गोठड़े में पनाह दी तो सरकार ने उन मीणों को पकड़ा देने वास्ते हुक्म भेजा। तब तो सामना करणे को कमर बाँधी। जब भौमसिह जी ने लड़ाई शुरू करी तब फौज ने भी ठीक दीखा सो किया। आखिर भौमसिंह जी भाग गये तो उनकी जागीर जब्त करी गई।

—वंशप्रकाश, पृ० १२८

स्वतंत्रता और स्वाभिमान की लौ प्रज्वलित थी। बांकीदास, सूर्यमल्ल आदि कवियों ने उस लौ को सतत जलाये रखने की भरसक कोशिश की।

'वीर सतसई' के निर्माण में तत्कालीन राजनीतिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूर्यमल्ल साधारण दरबारी कवियों में से नहीं थे। उनकी दृष्टि में कवि का आदर्श बहुत ऊँचा था। कवि की वाणी मे ही राजा-महाराजाओं को खरी-खोटी सुनाने की ताकत वे निहित मानते थे—

कविन बिना तो बड़े लोकन सों ऐसी बात,
ऐंचि के कहै सो है-मंडल महि कौन है?

और राजा के सम्बन्ध में भी उनके विचार बड़े ऊँचे थे। केवल चँवरधारी राजा तो उनकी दृष्टि में निरे काठ के उल्लू थे। प्रबुद्धता ही उनकी सम्मति में राजा का असली चँवर थी—

नाहक चँवर राखैं मूढ़ होय राजा
हमरे मत प्रबुद्ध होय ताही पैं चमर है।

कहना न होगा कि राजा लोगों में यह प्रबुद्धता धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। राजस्थान के सभी राज्यों का शासन-प्रबन्ध उस समय पूर्णतया अव्यवस्थित था। विभिन्न राज्यों की राजधानियों में रेजीडेन्ट जा पहुँचे थे। अब नरेशों में न तो शासन-कार्य सम्बन्धी कोई नई सूझ-बूझ ही पैदा होती न वे अपने दायित्व से ही पूर्ण परिचित थे। 'राजस्थानी नरेश राग-रंग में पूरी तरह डूब गये और उनके राजदरबारों का पूर्ण नैतिक पतन हुआ। राज्य की आय का बहुत सा भाग नरेशों के विलास, आमोद-प्रमोद तथा उनके कृपा-पात्रों पर ही व्यय हो जाता था। राजदरबारों में छल-कपट तथा आन्तरिक षड्यन्त्र चलते ही रहते थे। प्रायः सारे ही राज्यों की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी। उनका भविष्य निराशापूर्ण देख पड़ने लगा था।[1] सूर्यमल्ल की तथ्य-भेदिनी दृष्टि ने इस परिस्थिति को भांप लिया था। क्षोभपूर्ण स्वरों में उनकी आत्मा कराह उठी—

इकडंकी गिण एकरी, भूले कुळ साभाव।
सूरां आलस ऐस में, अकज गमायी आव॥

सं. १९०९ में राजा बलवन्तसिंह जी को लिखे गये एक पत्र में यहाँ के राजाओं की मनःस्थिति और खोखली शान-शौकत का सूर्यमल्ल जी ने बड़ा अच्छा विश्लेषण किया है। उन्होंने लिखा, पाँच वर्ष पहले अंग्रेजों ने सती-प्रथा बंद करने के लिए

१—डॉ. रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० २८१

सब रियासतों में हुक्म जारी किया था। उस पर जिस-जिस ने जैसे-जैसे जवाब अपनी-अपनी एजेंसी में भिजवाये, उनमें से किसी का भी जवाब एकता और संगतियुक्त नहीं था, जिससे अंग्रेजों को भी हँसी आई, और जवाब की एकता के अभाव में विश्वास नहीं हुआ और उनमें से किसी ने यदि धर्मानुसार ठीक जवाब दिया तो उसका भी जवाब जुदा-जुदा मतों के कारण दूसरों जैसा ही माना गया। यदि एकता होती और सबका एक जवाब जाता तो सरकार कंपनी में भी वह मंजूर ही होता। परन्तु हिन्दुस्तान के राजाओं में तो यह बुद्धि रह गई कि जबसे अंग्रेज और मुसलमान विदेश से यहाँ पर आये हैं तब से उनकी आज्ञा मानने में तो अपने धर्म और नाम इज्जत तक गँवाकर भी उनकी इच्छा पूरी करते हैं और जैसा भी जुल्म वे करें उसको वे बर्दाश्त करते हैं और जो समान और सजातीय हैं और अपने मत के मानने वाले हैं, फिर भी उन पर लाख गुनी ठसक (ऐंठ) दिखलाते हैं और यदि उन लोगों में से कोई धर्म का विचार करके नम्रता का व्यवहार करे तो दुर्भाग्यवश ये (राजा लोग) अपने मन में समझते हैं कि हम तो बड़े हैं ही और ये हमारे सामने नम्रता दिखाने योग्य हैं, इसीलिए नम्रता दिखा रहे हैं।'

राजा लोगों की इस पराधीन मनोवृत्ति और पारस्परिक वैमनस्य की भावना ने एकता के सूत्र छिन्न-भिन्न कर दिये। अंग्रेजों के अत्याचारों को यहाँ की जनता नतमस्तक होकर सहन करती रही। कडाणा के ठाकुर पर्वतसिंह जी को सं. १९१५ में लिखे गये एक पत्र में, कोटा क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा की गई लूटपाट का सूर्यमल्लजी ने विस्तृत व्यौरा दिया है—चौथे दिन विद्रोही फौज तो यहाँ से निकल भागी और अंग्रेजों ने कोटे को सब तरह से लूटकर खराब किया। बहुत से आदमियों को फांसी दी और बहुतों को बन्दूक से मार डाला। बहुत सी स्त्रियों की इज्जत खराब की और बहुत सी तोपें फोड़ डालीं। नामली के ठाकुर बखतावरसिंह जी को लिखे गये एक पत्र (स. १९१५ में) में उन्होंने संकेत किया कि 'म्लेच्छों का इरादा ऐसा दीखता है कि यदि इस बार रह गये तो आर्यावर्त को परतंत्र कर ही डालेंगे और किसी भी हिन्दू के कोई जागीर या ठिकाना न रह जायगा। इस समय के क्षत्रियों को सब विपरीत बातें ही अनुकूल दिखाई दे रही हैं। इससे भविष्य विपरीत मालूम पड़ता है।

ऐसी अराजकतापूर्ण स्थिति में लगता था जैसे राजस्थान में निरन्तर प्रज्वलित होने वाली स्वतन्त्रता की लौ ही मन्द पड़ गई। 'सन् १८५७ ई. में उत्तरी भारत में जब विप्लव की आँधी उठी और सारे राजस्थान में यत्र-तत्र फैली हुई भारतीय सेना ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया, तब राजस्थान की जनता को भी उनका साथ देने की न सूझी और न उसको साहस ही हुआ। मूक तटस्थ दर्शक बन कर उसने उनकी कार्यवाही को देखा और जब यह विप्लव पूर्णतया दबा दिया गया

तब उसे भी एक अनिवार्य अवश्यम्भावी वस्तु समझा। बूंदी के महाराव रामसिंह के अतिरिक्त अन्य राजस्थानी नरेशों ने इस विप्लव को दबाने में अंग्रजों का पूरी तरह साथ दिया था। इस बाढ़ के प्रबल प्रवाह को रोकने में देशी राज्यों ने बाँध का काम दिया और इस आँधी का सामना करते समय देशी-नरेश अंग्रेजी सत्ता के लिए बलवर्धक प्रमाणित हुए।[1]

ऐसे नैराश्यपूर्ण जड़ वातावरण में आशावादी आलोकपूर्ण दृष्टि लेकर सूर्यमल्ल आये। वे बिखरी हुई राजपूत शक्ति को, एक सूत्र में बाँधकर, विदेशियों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे के रूप में खड़ी करना चाहते थे। पीपल्या के ठाकुर फूलसिंहजी को लिखे गये अपने एक पत्र (सं. १९१४) में सूर्यमल्ल जी ने स्पष्ट किया कि 'इस शरीर को सन्निमित्त में लगाने के लिए भगवान् की कृपा से समय ने पलटा भी खाया है। कदाचित् आप जैसे सुक्षत्रियों के और आपके साथ-साथ हम जैसे कायरों के ये शरीर किसी सदर्थ लगे तो—स्वल्प साधन वाले अपन जैसे तो सभी यह बात चाहते हैं तथा अपने लिए तो स्वर्ग-प्राप्ति का और यहाँ कीर्ति-प्राप्ति का केवल यह एक ही फल है। किन्तु ये राजा लोग देशपति जो जमीन के स्वामी हैं, ये सबके सब निकम्मे, कायर और हिमालय के गले ही निकले। इस क्रांति ने अंग्रेज को चालीस-से लेकर ६०-७० वर्ष तक पीछे डाल दिया है, तो भी ये राजा लोग कायरता दिखा रहे हैं और अंग्रेजों की गुलामी करते हैं। परन्तु मेरी यह बात आप याद रखिये कि जो इस बार अंग्रेज रह गया तो वही सर्वशक्तिमान् हो जायगा, पृथ्वी का मालिक कोई भी न रह सकेगा, सब ईसाई हो जायेंगे। लाभ किसी को होगा नहीं। पर ऐसा सोचें तो तब न, जब अपना दिन अच्छा हो और आप जैसा मित्र यदि मेरे दूसरा हो तो बढ़ा कर लिखा जाय—इसलिए थोड़ा कहा हुआ ही बहुत समझना।'

उनके मन में कितनी व्यग्रता, क्रांति के प्रति कितना उत्साह और परिणामों को देखने की कितनी सुदूर दृष्टि। लगता है कवि का चुम्बकीय व्यक्तित्व चारों ओर घूम कर इतस्त: बिखरे पड़े सुषुप्त लोहकणों को अपनी ओर खींच कर शक्ति का एक धधकता हुआ ज्योतिर्मय पिंड प्रज्वलित करना चाहता है जिसमें स्वतंत्रता, स्वाभिमान और ऊर्जा के अवरोधक सारे तत्त्व जलकर भस्म हो जाएँ। कवि के प्रयत्नों से, उसकी विस्फोटक ओजस्विनी वाणी से सुषुप्त वीरत्व उबल पड़ा—

इण वेला रजपूत व्रै, राजस-गुण-रंजाट।
सुमरण लग्गा वीर सब, वीरां रो कुल व्राट।।

१—डॉ. रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० २८४

उनके दोहे वीरों के लिए प्रेरणादायी साबित हुए और कायरों के लिए शल्य स्वरूप।[१] उनमें इतनी शक्ति, स्फूर्ति और विद्युत का वेग था कि जो भी उन्हें सुनता, पूरे वीर के समान जोश से भर जाता[२] और उसका वीरत्व शतोमुखी होकर स्वातन्त्र्य-संग्राम में फूट पड़ता।[३]

अपने महान् प्रेरणादायी व्यक्तित्व के कारण सूर्यमल्ल ने इस प्रकार प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की जागरण वेला में राजस्थानी काव्य की नयी संभावनाओं के द्वार खोले, सामन्तवादी संस्कृति में पल्लवित, पुष्पित राजस्थानी काव्य-लहरी को आधुनिक चेतनावादी स्वर दिया और साम्राज्यवाद के खिलाफ बुलन्द आवाज उठाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने की परम्परा का सूत्रपात किया।[४]

पर देश का दुर्भाग्य था कि पारस्परिक फूट और क्षुद्र स्वार्थों के कारण शक्ति का सम्यक् उत्थान न हो सका और उस समय कवि के स्वप्न साकार न हो सके। अनवरत प्रयत्न करने पर भी जब कवि को सफलता न मिली तो निराशा के स्वर में उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी—

जिण बन भूल न जाव्रता, गैंद गवय गिडराज।
तिण वन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज॥
डोहै गिड़ वन-वाड़ियाँ, द्रह ऊंडा गज दीह।
सीहण-नेह सकैक तो, सहल भुलाणो सीह॥

और इसी जगह आकर कवि की वाणी मौन हो गई। सतसई के अधूरा रहने का संभवतः यही कारण है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सतसई भारत के इतिहास की एक महान् घटना (स्वातंत्र्य-संग्राम) का काव्यमय उद्गार है। उसके प्रत्येक दोहे में वीर

१—सतसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल।
जंपै भड़-खाणी जठै, सुणे कायरां साल॥

२—नथी रजोगुण ज्यां नरां, ना पूरो ऊफाण।
वै भी सुणतां ऊफणै, पूरा वीर प्रमाण॥

३—जे दो-ही पख ऊजला, जूझण पूरा जोध।
सुणतां वै भड़ सौगुणा, वीर प्रकासण बोध॥

४—परम्परा (राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी से प्रकाशित) त्रैमासिक के 'गोरा-हटजा' अंक में ऐसे कई राजस्थानी कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं जिन्होंने १८५७ के वातावरण से प्रेरित होकर राष्ट्रीय भाव-धारा की कविताएँ लिखीं।

हृदय से निसृत सिन्धु राग की गर्जना है और है युद्ध-भूमि में जाकर आन-बान के लिए मर मिटने की बलवती स्पृहा।

[ख] सतसई में चित्रित वीर-जीवन के विविध रूप

वीर-काव्य राजस्थान के सहज जीवन की अभिव्यक्ति है। यह मृत्यु के साथ खेलने वाले वीरों का साहित्य है और ऐसे कवियों द्वारा रचा गया है जिन्होंने प्रत्यक्ष मृत्यु का आह्वान कर लोहे से लोहा बजाया था। राजस्थान के इस साहित्य में आदर्श देशप्रेम, स्वातंत्र्य भावना और जातिगत अभिमान के यथार्थ स्वरूप की अवतारण हुई है।

'वीर सतसई' राजस्थानी वीर जीवन की दर्पपूर्ण अभिव्यक्ति है। कवि ने प्रारंभ के मंगलाचरण में गणपति की वन्दना करते हुए माँगा है—पाऊँ वीर प्रकास। 'वीर' और 'प्रकास' इन दो शब्दों में वीरता के दो रूप ध्वनित हैं। 'वीर' शब्द में वीरता की उष्मा और प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित है, जो असत् को भस्मीभूत कर देगी, आततायियों को नष्ट कर देगी और स्वाभिमान तथा स्वामिधर्म की रक्षा करेगी। 'प्रकास' शब्द में देशप्रेम की लौ का आलोक है, आगे बढ़ने की प्रेरणा है, लक्ष्य का संकेत है। सचमुच यहाँ वीर पुरुष और वीर नारी के शौर्य एवं माधुर्य को सशक्त वाणी दी गई है।

प्रारम्भ में कवि ने समसामयिक स्थिति का बोध कराकर वीर-जीवन के उन मूल्यों की ओर संकेत किया है जिसके लिए वीर योद्धा हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते रहे हैं और वीर नारियाँ अग्नि-कणों को मुस्कानों में भरती रही हैं।

जीवन का सर्वप्रमुख मूल्य है अस्तित्व की रक्षा और कुल-धर्म का (राष्ट्र-धर्म का) निर्वाह। इस मूल्य की रक्षा के लिए क्या नहीं किया जा सकता? 'चढणो धव लारां चिता, बढणो धारा-वाह' तो वीर-घर की यशस्वी खेती है। मृत्यु का वरण करना सहज-संस्कार है। 'रीत मरंतां ढील की'? 'इळा न देणी आपणी' जीवन का मूल मंत्र है। अवसर आने पर मरने वाले को इस लोक में सुन्दर कीर्ति और परलोक में प्रभुता की प्राप्ति होती है। घर के भीतर मरना यम के नरकों में ले जाता है—

अठै सुजस, प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय।
मरणो घर-रो मांझियां, जम-नरकां ले जाय॥

वीर का प्रमुख लक्षण है—उत्साह, पुरुषार्थ और निर्भीक भावना को मन में धारण कर कुलक्रमागत मूल्यों के लिए सतत् संघर्ष करते रहना। सच्चा वीर युद्ध के बिना उदास रहता है, उसके नेत्रों में लज्जा नहीं समाती, वह पैरों में लंगर

सा डाले युद्ध के मैदान में अड़ा रहता है।[1] सिर कट जाने के बाद भी शत्रु-सैन्य को काट कर अपने स्वामी के लिए मर मिटता है।[2] वह हमेशा कंधे पर भार वहन करता है और कमर में तलवार बाँधे रहता है।[3] उसमें हथेली से हाथियों को गिराने की क्षमता होती है[4] और सिंह के गले में जंजीर डालकर उसे पकड़ लेने का साहस होता है।[5] उसे मातृभूमि से बड़ा प्रेम होता है। वह तलवारों की धारों तथा घोड़ों के खुरों से अपने देश की रक्षा करता है। अपने उभरते वीरत्व से सच्चे वर (दूल्हे) की भाँति वसुधा का वरण कर 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की कहावत चरितार्थ करता है। पृथ्वी को अपने पैरों से बाँधे रखता है। भालों के खंभों और ढालों की छतों से घोड़ों की पीठ पर ही अपना घर बनाकर वह अपने अधिकारों का उन्मुक्त भाव से उपभोग करता है।

'सतसई' में वीर-जीवन का यह स्वरूप कई रूपों में प्रकट हुआ है। वीर पुरुष और वीर नारी के पारिवारिक तथा अन्य सम्बन्धों को लेकर इस जीवन का अंकन हुआ है। यहाँ सतसई में चित्रित वीर पुरुष और वीर नारी के स्वरूप पर संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

वीर पुरुष :

राजस्थान वीरों का प्रदेश रहा है। शायद ही कोई ऐसा गाँव हो जहाँ कोई न कोई वीर न पैदा हुआ हो। विभिन्न रियासतों के राजा-महाराजाओं, उमरावों, ठाकुरों, सरदारों और स्वामि-धर्म पर मर-मिटने वाले सच्चे सेवकों को वर्ण्य-विषय बनाकर यहाँ के कवियों ने सैकड़ों, हजारों गीतों की रचना की। महाराणा प्रताप, वीर दुर्गादास, हठीले हम्मीर के जाज्वल्यमान जीवन से कौन परिचित न होगा ? इस साहित्य के अध्ययन से न जाने कितने वीर योद्धा स्मृति पर तैर आते

१—रण पाखे दु-मनो रहै, लाज न नैण समाय।
पग लंगर पाछा दियण, सो वानैत कहाय।।

२—विण माथै वाढै दळां, पोढै करज उतार।

३—बल़ खांधे जण-जण बहै, कस बांधै करवाल़।
परख भड़ां म्रर कायरां, त्रहत्रहियां त्रंबाल़।।

४—हाथल पाड़ै हाथियां, सो भड़ वाजै सीह।

५—सीहां रै गल़ सांकल़ै, वै भड़ घालै हाथ।।

हैं, जिनके बारे में इतिहास मौन है। प्रस्तुत 'वीर सतसई' में कवि ने किसी व्यक्ति विशेष को आधार बनाकर काव्य-रचना नहीं की है। सूर्यमल्ल जी ने सार्वजनीन वीर पुरुष के व्यक्तित्व को ही मूर्तिमान कर दिखाया है। यह पुरुष मुख्यत: निम्न रूपों में हमारे सामने आता है—

क. स्वामी और सेवक

ख. वीर बालक और वीर युवक

ग. वीर पति

(क) स्वामी और सेवक :

'वीर सतसई' में स्वामी और सेवक के सम्बन्धों की बड़ी अर्थपूर्ण व्यंजना है। यहाँ स्वामी को 'डाकी' कहा गया है। डाकी शब्द का सामान्य अर्थ अधिक खाने वाला (पेटू) तथा नरभक्षी होता है। यहाँ उसके अर्थ का उत्कर्ष हो गया है। डाकी शब्द से महान शक्तिशाली, प्रचण्ड वीर का बोध होता है। यह वीर आततायी न होकर धर्म और प्रण की रक्षा करने वाला है। उसमें सहनशीलता का जबरदस्त गुण है। वह अपने सेवकों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करता है कि अपराध हो जाने पर भी उन्हें कुछ नहीं कहता। परिणामस्वरूप सेवक उसे हृदय से चाहने लगते हैं और अवसर आते ही उसके लिए प्राण देने को तत्पर रहते हैं। उसकी सहनशीलता में डायन की दृष्टि का, माँ के स्तनों की स्मृति का और पत्नी के चूड़े की लज्जा का प्रभाव घनीभूत है।[१] वह केवल अपने दरवाजे पर आये हुए शत्रुओं का ही संहार नहीं करता वरन् अपने आश्रित सेवकों में इतनी प्रेरणा और उत्तेजना भर देता है कि वे वीर भी उसके लिए बढ़-बढ़ कर प्राणाहुति देने की प्रतिस्पर्धा करते हैं।[२] इस सच्चे स्वामी के यहाँ सेवकों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता। एक ही पंक्ति में सबका खान-पान होता है।[३] इस स्वामी का

१—डाकी ठाकर सहण कर, डाकण डीठ चलाय।
मायड़ खाय दिखाय थण, धण पण वलय बताय।।

२—नह डाकी अरि खावणो, आयां केवल बार।
वधावधी निज खावणो, सो डाकी सरदार।।

३—मिळियै मन खोबां अमल, पांते भोजन-पान।

खिड़िया जग्गा ने 'राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' के चरित्र-नायक रत्नसिंह में सेवक-वत्सलता के भाव की मनोहर झांकी देखी है। मरणोपरान्त वह अकेला स्वर्गवास का भागी नहीं बनना चाहता वरन् सभी वीर-गति प्राप्त साथियों के लिए भी वैकुण्ठ-वास की व्यवस्था करने को

ान्न सामान्य अन्न नहीं है। वह तक्षक के विष के समान प्रभावकारी होता है। ो भी उसे खाता है, उसका नशा मरने पर ही उतरता है।[१] बिना युद्ध किये कसी भी सेवक को उसका अन्न पच नहीं सकता।[२]

ऐसे स्वामी के साथ रहने वाले सेवक का व्यक्तित्व समाज के लिए कम प्रेरणा-ायी नहीं है। वह अपने स्वामी के पहले युद्ध-भूमि में गिरता है और जब चील गिरे ए स्वामी के नेत्रों पर झपटती है तब चौंककर अपना कलेजा उसकी ओर फेंक कर, वामी के नेत्रों की रक्षा करता है।[३] वह सर्वप्रथम ही शत्रु पर ऐसा प्रहार करता ः कि शत्रु हथियार छोड़कर आत्म-समर्पण कर देते हैं।[४] ऐसे स्वामिभक्त सैनिक कसे प्रसन्न नहीं करते? स्वयं रानियाँ, उनके घावों के उपचार के लिए अपने ाथों से नीम पीसती हैं[५] और स्वयं स्वामी उन पर रीझकर खतरों से उन्हें बचाता है।[६] स्वामी के पहुँचने से पूर्व ही समस्त शत्रु-सैन्य का संहार करने वाले वीरों की भुजाएँ सचमुच गज-मोतियों से पूजने योग्य हैं।[७]

(ख) वीर बालक और वीर युवक :

'वीर सतसई' में वीर बालक और वीर युवक के स्वाभाविक वीरत्व एवं ारम्परागत प्रतिशोध भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है। गोरा-बादल जैसे वीर ालकों की गाथाओं से राजस्थानी साहित्य अनुगुंजित है। 'वीर सतसई' में चित्रित

कहता है—'मो साथे वडा वडा गढपति छत्रपति कांमि आया''''त्यानूं सरजीत कीजै। वैकुंठसवास दीजै।'

१—डाकी ठाकर-रो रिजक, ताखा-रो विख हेक।
गहल मुवां ही ऊतरे, सुणिया सूर अनेक॥

२—दमंगल बिण अ-पचो दियण, वीर धणी-रो धान।

३—भड़ सोई, पैलां पड़े, चील्ह विलग्गां चैंक।
नैण बचावै नाह रा, आपय कलेजो फैंक॥

संयमराय स्वामिभक्ति के इस आदर्श के उदाहरण थे—
रणथल मूर्छित स्वामि के, लीन्हें प्राण बचाय।
गीधनु निज-तनु-मांसु दै, धन्य संयमाराय
—वियोगी हरि कृत वीर सतसई से

४—पहला असिवर पाछटै, अरियां लोह विछोड़।

५—राणी इसड़ा रावतां, हाथां नींव बंटाय।

६—रीझे इसड़ा राव्रतां, नाह उबारै नीठ।

७—पूजीजै गज-मोतियां, सखी! भड़ां-भुज आज।
नाह नि-लोहो आणियो, करे अगाऊ काज॥

वीर बालक की प्रमुख विशेषता है युद्ध के प्रति सहज प्रेम। युद्ध उसके लिए भय और आतंक की वस्तु न होकर, मनोविनोद और मनोरंजन की क्रीड़ा-भूमि है। कोई युद्ध में जाने से उसे कितना ही रोकने का प्रयत्न करे, वह रुकेगा नहीं। युद्ध में जाने के लिए अवस्था के बन्धन को वह स्वीकार नहीं करता। पाँच साल का हुआ तो क्या हुआ? जो उसे रोकते हैं वे उसके स्वभाव और रणोत्सुकता से परिचित नहीं हैं। माता ने, दूसरे लोग युद्धभूमि में मारे गये हैं, यह सुनकर उसे युद्ध से विरत करने के लिए, घर में बन्द कर दिया। फिर क्या था, वह अपने हाथों की कलाइयों में ही बटके भरने लगा।[1] और पुकार कर माँ से कहने लगा—हे माँ, तू ही तो कहा करती थी कि तेरा कुल युद्ध-भूमि में सोने वाला है, फिर इस समय मुझे लड़ने से रोक क्यों रही है।[2]

यह बालक छोटा है, पर शत्रुओं से अपना प्रतिशोध लेने में अधिकाधिक व्यग्र और चेष्टारत है। यह सिंह-पुत्र बारह वर्ष की छोटी अवस्था में ही पिता के बैर का बदला ले लेता है।[3] यही नहीं पराये बैर का बदला लेने में भी यह पीछे नहीं रहता।[4] कोई भुलावा देकर—चाहे वे मामा-मामी ही क्यों न हों—उसे

१—और मुवा सुण ओहड़े, वरसां पांच विचाळ।
घर में मायड़ घातियो, बटकै पूंचां बाळ॥८६॥

नाथूसिंह महियारिया ने भी अपनी 'सतसई' में वीर बालक के इस स्वभाव की सुन्दर व्यंजना की है। उनका बालक अपने गले में सिंह-नख से युक्त माला पहनने में ही अपना अपमान समझता है और इसीलिए क्रोध के मारे सिंह-नख को अपने दांतों से चबा देता है (पुत्र के सिंह-हन्ता होने की व्यंजना)।

केहर रौ नख हालरै, चबतौ दांतां-हूंत।
मायड़ जद ही जाणगी, सीहां हणसी पूत॥

२—कुळ थारो रण-पौढणू, मो-नूं कहती माय।
प्राणां गाहक पेखियां, कजियो वरजै काय?॥८७॥

और नाथूसिंह महियारिया का वीर बालक तो वीरतापूर्वक लड़ता हुआ अपने पिता के शव के पास ही लाल पगड़ी सहित गिर पड़ा, सफेद पगड़ी बाँधने (उत्तराधिकारी बनने) के लिए वह घर पर आया ही नहीं—

पड़ियौ जोड़ै बाप रै, पाग कसूमल सेत।
बेटो घर आयौ नहीं, धोळी बांधण हेत॥

३—बारह वरसां बाप-रो, लहै वैर लंकाळ॥८५॥
४—वैर पराया वाहड़ै, जठै न घर रा जाय॥८८॥

वैर लेने से रोक नहीं सकता। वह पराश्रित नहीं है, स्वावलम्बी और पुरुषार्थी है। ननिहाल का निवास छोड़, अपना स्वयं का घर बसाकर वह एक-एक शत्रु से बदला लेता है।[१]

यह वीर बालक निर्भीक और निश्चिन्त है। इसे जो बालक समझते हैं, वे धोखे में हैं। यह तो काल-स्वरूप है।[२] क्या हुआ, पिता माहेरा लेकर चले गये और चाचा कुटुम्ब की 'जात' के लिए निकल पड़े? इसे किसका भय? शत्रुओं ने अकेला समझकर धावा बोल दिया तो भी कोई परेशानी नहीं। साहस बटोरकर इस वीर ने शत्रु-पक्ष के सभी लोगों को मार गिराया। उनके घर में हाहाकार मचा दिया।[3]

पारिवारिक सम्बन्ध की दृष्टि से यह बालक जेठूत, भतीजा और देवर के रूप में भी चित्रित हुआ है। जेठ का जो पुत्र हमेशा भोला-भाला और गरीबी भरे स्वभाव का दिखाई देता था, वही युद्ध-भूमि में हाथियों को काटता हुआ दृष्टिगत हुआ।[४] और देवर की युद्ध के प्रति इतनी ललक कि भावज हथियारों को छिपा कर, वंश के दीपक के रूप में देवर को बचाने की दृष्टि से उसे 'वाहर' जाने से रोकने का प्रयत्न करती है।[५] पर क्या वह रुकता है?

(ग) वीर पति :

वीर बालक का स्वभावगत शौर्य ही आगे चलकर और ऊर्जस्वित हो उठता है। पति के रूप में वीर योद्धा के कई रूप यहाँ दृष्टिगत होते हैं। उसका सर्व-प्रथम रूप है दूल्हा का। दूल्हा का रूप सामान्यतः प्रेम, शृंगार और सौन्दर्य का व्यंजक है पर यहाँ उसके वीरत्व की ही परख की गई है। विवाह के लिए दूल्हे ने सभी साज सज लिये हैं। बरात चल पड़ी है। तोरण की ओर (तोरण वांदने की प्रथा) दूल्हा चला जा रहा है पर अचानक उसे सुनाई दिया 'वाहर' के ढोल का शब्द। सुनते ही वह 'तो-रण' की भावना को चरितार्थ करने के लिए चल पड़ा रण-भूमि की ओर,

---

१—आप वसाया झूंपड़ा, वैर खळां चींताय ॥६३॥

२—अेथ घराणै सिंघणी, कंवर जणै सो काळ ॥६०॥

३—बाप गयो ले माहेरो, काको जात कडूंब।
  तोय मचायी डीकरै, वैरी-रै घर बूंब ॥८६॥

४—दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत।
  काकी कुंजर काटतां, जाणन्नियो जेठूत ॥६५॥

५—रण-सूता सब गेह-रा, वचियो देवर आय।
  भाभी सुणतां वाहरू, लीधा लोह लुकाय ॥६८॥

और लाखों शत्रुओं को मारकर सदा के लिए सो गया युद्धभूमि रूपी विशाल शयनागार में।[1]

यदि किसी तरह तोरण वांद लिया और जा बैठा चँवरी में तो वहाँ भी नजरों में युद्ध का ही तैरता दृश्य। विवाह के मांगलिक ढोल क्या बजे, वर की मूंछें ही भौंहों से जा मिलीं।[2] यहाँ दूल्हे की आँखों में दुल्हिन की रूप-माधुरी नहीं छलकी न दाम्पत्य जीवन की रंगीनियाँ ही कल्पना के पंख फैलाकर उड़ीं। पाणिग्रहण (हथलेवा-संस्कार) का अवसर आया तो शरीर रोमांचित नहीं हुआ, हाथों के स्पर्श ने दुल्हिन के दिल को भी गुदगुदाया नहीं। हथेली पर लगे तलवार की मूठ के निशानों ने उसे आश्वस्त कर दिया कि यह वीर प्राण देकर भी उसके चूड़े की रक्षा करेगा।[3] युद्ध की खुमारी इस वीर पर इतनी चढ़ी हुई है कि जब वह विवाह के लिए ससुराल पहुँचा, और इसी बीच शत्रुओं से युद्ध छिड़ गया तो स्वयं युद्ध में सम्मिलित होने के लिए चल पड़ा। जब साले आदि ससुराल के लोगों ने उसे जबर्दस्ती रोक दिया और उसे वहीं छोड़कर स्वयं युद्ध में चले गये तो वह इतना रूठा कि उसने तलवार के प्रहारों से अपने शरीर को काटकर बिखेर दिया।[4]

यदि किसी तरह विवाह सम्पन्न कर यह दूल्हा अपने गाँव लौटा और घर में प्रवेश करते समय उसे युद्ध के बाजे सुनाई पड़े तो उसका कर्तव्य देखिए। उसने बाजा सुनते ही वधू के अंचल के बंधन को छोड़ा और चल पड़ा युद्ध में जाने के लिए

१—तोरण जातां वाहरू, सुणियो अजकै वींद।
लाखां हण लीधी सखी ! मोटै पड़वै नींद।।६८।।

नाथूसिंह महियारिया की 'सतसई' में वर-निकासी के समय दूल्हे को माता द्वारा स्तन-पान कराना ही शेष था कि शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया, और अनिष्ट जान माता स्तन-पान कराने से रुक गई। इस पर वह वीर माता से कह उठा—मैं किसी गौरी से विवाह करने से रुक गया हूँ तो क्या आ, अब मैं अप्सरा से विवाह करने जा रहा हूँ—

देती जातौ परणवा, वैरी ऊभा आय।
अपछर वरवा नीसरूँ, मो मुख थण दै माय।।

२—ढोल सुणंतां मंगळी, मूंछां भूंह चढंत।।१००।।

३—हथलेवै ही मुट्ठि-किण, हाथ विलग्गा माय।
लाखां वातां हेकलो, चूड़ो मो न लजाय।।१०२।।

४—खागां अंग वखेरियो, रण-रो भूखो रूट।
वेखे साळो वींद नं, पछतावै परपूठ।।६६।।

घोड़े की ओर।[1] लगता है सोते-जागते, उठते-बैठते, हँसते-कूदते, खाते-पीते यहाँ तक कि लाड़-प्यार करते सर्वत्र और सब समय इन वीर कुमारों को युद्ध ही युद्ध दिखाई देता।

'वीर सतसई' का यह पति वीरत्व का धनी है। उसके पास रहने के लिए बड़े-बड़े महल नहीं, उपभोग के लिए लाखों की सम्पत्ति नहीं। वह तो मामूली सी झोंपड़ी में रहता है, सरकंडों की जिसकी भीतें हैं और घास की जिसकी छत है।[2] पर इससे क्या ? दरिद्रता ने उसे निकम्मा नहीं बनाया, कायर नहीं बनाया। उल्टे वह धनवानों की विलासिता और कर्तव्य-विमुखता से दूर रहा है। उसके शौर्य पर राजाओं के महल न्यौछावर हैं[3] और है दुर्लभ हाथियों का उपभोग निछावर उसकी भुजाओं पर।[4] वह दरिद्री होकर भी शूरवीर है। इसीलिए वरेण्य है।

विवाह के पूर्व भी युद्ध और विवाह के बाद भी युद्ध। युद्ध पर युद्ध। यही तो वीरों का जीवन है। नायक-नायिका मिले। प्रथम समागम। दाम्पत्य-जीवन का सर्वाधिक मधुर क्षण। अरमान भरा यौवन ! उमड़ता प्रेमिल हृदय। युगल-प्रेमियों का मधुर स्पर्श ! पर हाथ का यह खुरदरापन ? पत्नी ने पूछ ही लिया—हाथों में ये निशान किसने किये और पति तलवार को पकड़कर विश्वास के स्वरों में बोल उठा—'इण डाकण भू अथ्थ'।

विवाह का दूसरा दिन ! प्रेम की मस्ती में मग्न मतवाली जोड़ी। आकंठ श्रृंगार में डूबे प्रेम के पुतले। पति की बाँह पत्नी के लिए तकिया बनी हुई और इधर अचानक विनाशकारी युद्ध के भीषण नगाड़े। रंग में यह रण का विधान। पति जाग उठा। बाँह खींच ली और चल पड़ा युद्ध के मैदान की ओर।[5]

१—बंब सुणायो बींद-नूं पैंसंतां घर आय।
चंचळ साम्हो चालियो, अंचल, बंध छुडाय।।१०४।।

२—टोटै सरकां भींतड़ा, घाते ऊपर घास।।१०६।।

३—वारीजै भड़-भूंपड़ां, अधिपतियां आवास।।१०६।।

४—विण दामां विलसै सदा, दामां दुरलभ नाग।।१०८।।

५—गोरण दिन सूती सखी ! वागा ढोल विणास।
बांह - उसीसी खींचियो, जागी पटक निसांस।।१११।

नाथूसिंह महियारिया की 'सतसई' में चित्रित वीर पति, गोरण के दिन अपनी प्रिया से साक्षात्कार करने के लिए जाते समय भाटण के द्वारा रोके जाने पर तो रुक गया, पर जब युद्ध सिर पर है तो वह लाखों के रोकने पर भी नहीं रुकता है। उसे तो शत्रुओं का शिरच्छेद करना ही है—

घमासान युद्ध। रक्तरंजित दृश्य। घावों से लथपथ पति घर लौटा। कमर-बंद और मौड़ से छिपे हुए घाव कौन देख सकता है? रणांगण में मिली हुई इस भेंट को तो रंगमहल में क्रीड़ारत पत्नी ही परख सकती है।[1] रति-रंग का अधि-काधिक आनंद लेने की गरज से पत्नी ने वीर को फूल नामक जो बढ़िया मदिरा पिलायी वह उसके लिए साधक बनने के बजाय बाधक बन गई। पति को मदिरा का इतना रंग चढ़ा कि वह सब कुछ भूल कर युद्ध की बात ही सोचने लगा। उसमें चौगुना जोश चढ़ गया। बेचारी कलालिन भी क्या करे?[2]

यह वीर पति सदा घावों से लथपथ ही बना रहता है। इसका काम है दिन में युद्ध करना और रात में घावों के कारण बर्राते रहना।[3] बड़ी मुश्किल से कहीं इसे थोड़े समय के लिए नींद आ पाती है, वह भी रात्रि के चौथे प्रहर में जाकर। पर यह नींद भी कच्ची नींद ही होती है। कभी नकीब की आवाज सुनकर जाग पड़ता है, कभी चकवी का शोर सुनकर। इसीलिए इस वीर की पत्नी नकीब[4] और चकवी[5] को चुप रहने के लिए आग्रह करती है। इस वीर का क्या भरोसा, बहते घावों में ही उठ कर चल देगा युद्ध की ओर।[6]

यह वीर पति निर्भीक है। वैरियों की बस्ती में रहता है। घर-घर से इसने बैर मोल ले रखे हैं। दिन-प्रतिदिन धाड़वी डाका डालते रहते हैं, इस विषम परिस्थिति में रहकर भी, इसका साहस देखिए कि वह घर के किंवाड़ तक बंद नहीं करता।[7] युद्ध में लड़ना और लड़ते हुए मारा जाना उसे अच्छा लगता है। वह

मारग भाटण रोकियौ, रुकिया गोरण रैण।
लाखां रोकै नहं रुकै, खग झोकै सिर लेण॥

१—पेटी-मौड़ छिपाविया, जाणूं घाव न जीव।
हेली! दिवसां पाहुणो, पड़वै दीठो पीव॥११०॥

२—काय कलाळी! छल कियो, सेज गुमावण रंग।
फूल दुबारै छाकियो, चींतै चौगुण जंग॥११२॥

३—दिन में देखूं जूझतो, निस घावां वरड़ाय॥११६॥

४—पहर चवत्थै पौढ़ियो, गिणतो फौज गरीब।
एक घड़ी जक जीभनूं, वैरी आण नकीब॥११७॥

५—धीरपियां सूतो धणी, कुरळै चकवी! काव?
देखीजै मुख दीह-रै, सुख दो जाम सवाय॥११६॥

६—चगतां धावां चैंकसी, जे सुणसी बंबाळ॥११८॥

७—घर-घर वैर विसाविया, दिन-दिन लूंबै धाड़।
हेली! मो धव टेकलो, जड़ै न धाम किंवाड़॥१२२॥

शक्तिवान् है पर उस शक्ति का दुरुपयोग नहीं करता। आतताइयों के दमन के लिए ही वह शस्त्र उठाता है, निर्बलों को मारने या आतंकित करने के लिए नहीं।[1] उसका सिद्धांत है—छोटी उम्र के (सोलह वर्ष के) शत्रुओं को नहीं मारना। क्योंकि उनके मर जाने से युद्ध का सारा व्यवसाय ही चौपट हो जाता है, पर उनके जीवित रहने से विजय का लाभ बराबर मिलता रहता है।[2]

वीर नारी :

नारी पुरुष का आकर्षण-केन्द्र रही है और पुरुष नारी का जीवन-सम्बल। विश्व के कलाकारों ने अपने साहित्य-मन्दिर में नारी की प्रतिष्ठा कर उसकी भाव-भीनी आरती उतारी है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर 'जीवन के सुन्दर समतल' में 'पीयूष स्रोत' सी बहने का आह्वान किया है। 'मेघ-बन' बीच खिलते हुए 'बिजली के फूलों' से उसका शृंगार कर 'जीवन-निशीथ' के अंधकार को दूर भगाने का उपक्रम किया है। 'कदम्ब तरु' के नीचे धीरे-धीरे मुरली बजाकर उसे रिझाने का प्रयत्न किया है। और वस्तुतः नारी आई, सुनहला प्यार लेकर, आशा का प्रेरक पतवार लेकर, सृष्टि का सौन्दर्य-सार लेकर।

वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की दृष्टि इसी 'प्रेरक पतवार' के रूप पर पड़ी। उन्होंने नारी को शृंगार और शौर्य के संधिस्थल पर खड़ी देखा जहाँ शृंगार सतसई की वासनात्मक धारा आकर अवरुद्ध हो जाती है, जहाँ नारी को बाँधने वाली घर की चहार दीवारी टूट जाती है, जहाँ नारी की कोमलता भाप बनकर उड़ जाती है। यह नारी कोई पद्मिनी नायिका नहीं जिसकी 'ससि दैउ' सँवार कर बनाई गई हो और जिससे 'पद्म गंध' निकला करती हो, यह नारी इतनी आलोकपूर्ण भी नहीं कि 'पत्राहि तिथि पाइयै' और न इसमें इतनी नजाकत कि इसे 'दरसि के खरैं लजाने लाल'। यह नारी तो अपने व्यक्तित्व में एटमी ताकत भरे हुए है। उसके सामने कोई हारकर, कायर बनकर, युद्ध क्षेत्र से भाग कर आ ही नहीं सकता और अगर आ भी गया तो जिस प्रकार 'डाकण दीठ चला कर' अपने भक्ष्य को खा जाती है, उसी प्रकार माता अपने कायर पुत्र को 'यण' बताकर और पत्नी अपने कायर पति को 'वलय' बताकर खा जाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती।

१—कंत मचाड़ै नह कधी, काचां-रे घर कूक।
मुड़े विरोळै मांझियां, रोळै सोणित रूक ॥१२४॥

२—मरतां सब खेती मिटै, जीवंतां जय-लाह।
वरसां सोळह वैरियां, नथी विणासै नाह ॥१२५॥

क्योंकि यह राजपूत ललना सब कुछ सहन कर सकती है लेकिन अगर उसका पुत्र उसके दूध को लजादे और पति उसके चूड़े को, तो वह 'उलटी दाह' से संतप्त हो उठती है।[1]

'वीर सतसई' में कवि ने परम्परागत नारी भावनाओं को झकझोर कर उसे युग के अनुरूप नई अर्थवत्ता दी है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया के शब्दों में--'संस्कृत, हिन्दी आदि के कवियों ने स्त्री जाति को शृंगार अथवा करुण रस के आश्रय-आलम्बन के रूप में ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझ कर स्त्री समाज की बड़ी अवज्ञा की है। वीर रस का वर्णन करते समय उनकी आँख हमेशा पुरुष जाति पर गड़ी रही और कभी यह नहीं सोचा कि स्त्रियाँ भी बहादुर होती हैं, उनमें भी वीरोल्लास का अक्षुण्ण प्रवाह प्रवाहित होता है और मरने-मारने की इच्छा उनमें भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुषों में।[2] परन्तु डिंगल कवियों ने उन्हें नहीं भुलाया। पद्मिनी, करुणावती, जवाहरबाई, कृष्णा कुमारी आदि वीर नारियों के असंख्य उदाहरण सामने रहते, वे भुलाते भी कैसे ? अतः नारी-समाज की वीर भावनाओं को भी उन्होंने अपनी कविता में ला उतारा जो विश्व-साहित्य को उनकी अपनी एक अपूर्व देन है।

सूर्यमल्ल ने नारी को देशप्रेम और कुलधर्म की आराधिका तथा रक्षिका के रूप में देखा। रीतिकालीन कवियों में नारी के प्रति वासना की जो भावना थी, उसे गलाकर उन्होंने नारी को पुजापे की पवित्रता, वीरत्व की भावना और शक्ति की तेजस्विता प्रदान की। एक कवि ने एक स्थान पर लिखा है, हे धड़ा ! उस कविता को धूल में फेंक दो जिसमें नारी के शक्ति रूप की वन्दना न हो---'धूड़ा धूड़ कवत्त उण में, सगत न समझी नार'। कहना न होगा कि सूर्यमल्ल की नारी शक्ति की ही प्रतिमूर्ति प्रतीत होती है।

१--सहणीं सब-री हूँ सखी ! दो उर उळटी दाह।
दूध-लजाणो पूत, तिम वळय-लजा ो नाह ॥५४॥

२---कवि श्री नाथूसिंह महियारिया ने स्त्री जाति की विशिष्टता बतलाते हुए कहा है कि पुरुष में तो केवल एक ही गुण वीरता का होता है परन्तु स्त्री में तीन-तीन गुण होते हैं। वह अपने पति के साथ युद्ध में जाती है, उसके वीर-गति को प्राप्त होने पर उसके साथ सती होती है और दोनों लोकों में पति का साथ नहीं छोड़ती---

समर चढ़ै काठां चढै, तजै न पिव रौ साथ।
हेक - गुणां नर सूरमा, तिगुण गुणी तिय जात ॥

पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से 'वीर सतसई' में चित्रित नारी के मुख्यतः निम्नलिखित रूप परिलक्षित होते हैं—

क. वीर माता

ख. वीर सास

ग. वीर पत्नी

घ. वीर देवरानी

ङ. वीर ननद

च. वीर सेवक की पत्नी

यहाँ इन विभिन्न रूपों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

(क) वीर माता :

सतसई में चित्रित माता का रूप प्रेरणादायी वीरप्रसविनी क्षत्राणी का रूप है। वह छत्तीस वंशों के वीरों को जन्म देने वाली है। ऐसे पुत्रों की वह माता है जो सेर भर आटा, नमक सहित लेकर बदले में अपने सिर दे देते हैं।[1] प्रताप[2], दुर्गादास, पन्ना धाय जैसे वीर-वीरांगनाओं को जन्म देने का श्रेय इसी वीर माता को है। गर्भावस्था में ही वह वीर माता अपने पुत्र को शस्त्रों से प्रेम करने का पाठ पढ़ा देती है इसीलिए नवजात शिशु नाल काटने की लोहे की छुरी को हथियार समझकर उसे लेने को झपटता है,[3] और अपनी पुत्री को सती होने का सबक सिखा देती है, इसीलिए नवजात बालिका जच्चा के तापने की अग्नि को अपलक देख-देख कर हर्ष-अनुभव करती है।[4] यह माता अपने पुत्र को झूला झुलाती है पर

१—हूं बळिहारी राणियां, जाया वंस छत्तीस।
सेर सलूणो चूण ले सीस करै बगसीस ।।५५।।

२—माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणैं सांप—पृथ्वीराज

३—हूं बळिहारी राणियां, भ्रूण सिखावण भाव।
नाळो वाढण-री छुरी, झपटै जणियो साव ।।५७।।

४—हूं बळिहारी राणियां, साचा गरभ सिखाय।
जाचां ह्वंदै तापणै, हरखै धी द्रिग लाय ।।५८।।

नाथूसिंह महियारिया ने दीपक की लौ को आधार बनाकर इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है—

धी हंसती थण छंडती, दीपक लोय निहार।
मायड़ जद ही जाणगी, बेटी बळण विचार।।

इसलिए नहीं कि 'मेरे लाल को आउरि निंदरिया' बल्कि इसलिए कि वह 'मरण बड़ाई' समझ जाय और जान ले कि 'इळा न देणी आप-णी, रण-खेतां भिड़ जाय।' वह अपने पुत्र को सोया हुआ जानकर 'करि करि सैन' नहीं बताती बल्कि वह तो उसे सदैव सजग रखना चाहती है। इसीलिए उसका लाल न तो कभी 'पलक' मूँदता है' न 'अधर' फरकाता है और न अकुलाकर उठता है। वह तो लाख बाधाओं के होने पर भी नागिन और सिंहनी के जने हुए बच्चे के समान निर्भीक होकर समर-भूमि की ओर जाने के लिए सचेत हो जाता है[१] क्योंकि जन्म लेते समय ही बजते हुए थाल को उसने आँख फुला-फुला कर देख लिया था।[२]

यह वीर माता ऐसी नहीं है कि जिसके 'आंचल में है दूध'। यहाँ तो दूध भी जहर के समान है।[३] जो इस दूध को पी लेता है, वह अवश्य ही कुल की रीति का पालन करने के लिए मर मिटता है। पीठ देकर भागना उसे जहर के समान कड़ुवा लगता है।[४]

इस माँ की आत्मा निर्मल, हृदय उदार और दृष्टि निष्पक्ष है। जब कभी वात्सल्य और कर्तव्य में द्वन्द्व छिड़ा, उसने कर्तव्य को ही महत्त्व दिया। उसका पुत्र, एक बार किसी युद्ध में गया। वह उसी युद्ध में घायलों को जल पिलाने का काम करती थी। एक दिन उसकी पुत्र-वधू भी साथ गई। माँ को आते देखकर, घायल बेटे ने पुकारा—माँ पानी ! इस पर माँ ने पूछा—तुम्हारे कितने घाव हैं बेटा ? बेटे ने उत्तर दिया—सात घाव ! इतने में कोई दूसरा घायल चिल्ला उठा—मेरे दस घाव हैं। माँ ने जाकर उसे पानी पिलाया। इस तरह माँ अधिक से अधिक घाव वाले योद्धाओं को जल पिलाती रही और पुत्र की बारी ही नहीं आई। पुत्र घावों की पीड़ा, दुपहर की गर्मी और प्यास के मारे तड़प रहा था। माँ की ओर

१—नागण-जाया चीटला, सिंघण-जाया साव्र।
राणी-जाया नह रुकै, सो कुळ-वाट सुभाव्र ॥६०॥

२—थाळ वजंतां हे सखी ! दीठो नैण फुळाय ॥५९॥

३—बाळा ! चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण ॥६२॥

४—मूझ भरोसो दूध-रो, जहर भजाड़े पीठ ॥६४॥

नाथूसिंह महियारिया कृत 'वीर सतसई' में एक वीर बालक को पूर्ण क्षत-विक्षत अवस्था में देखकर उसकी माता गर्व के मारे फूल उठती है क्योंकि उसने तो श्वेत दूध द्वारा उसका पालन-पोषण किया था, किन्तु आज तो वह रक्त (लाल) वर्ण का दिखाई दे रहा है—

सुत आयौ घावां सहित, अंजस थायौ माय।
पय पायौ धोळै वरण, रातौ वरण दिखाय॥

से निराश होकर उसने अपनी पत्नी को इशारा किया, परन्तु वह क्या करती ? विवश थी। पानी पिलाने की ड्यूटी माँ की थी। अपनी निस्सहायता प्रकट करती हुई वह बोली—

किण विध पाऊँ आणियौ, बोलंता जल लाव।
बांट्यो सास बलोवली, भालां हंदा घाव।।२१०।।

डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने इस दोहे की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "भाव की बड़ी कोमलता और मर्मस्पर्शिता है इस दोहे में। रणभूमि की विकरालता, बेटे की बेचैनी, बहू की असमर्थता और माँ की निष्पक्षता का चित्र घूमने लगता है और मन में माँ के प्रति श्रद्धा, बेटे के प्रति सहानुभूति और पुत्रवधू के प्रति करुणा के भाव उमड़ने शुरू होते हैं।"

(ख) वीर सास :

माता का ही दूसरा रूप सास है। नायक के लिए जो माँ है वही नायिका (पुत्र-वधू) के लिए सास है। सास के रूप में नारी का पद कम गौरवशाली नहीं है। उसे अपने बेटे और बहू, दोनों पक्षों के गौरव और सम्मान की रक्षा करनी होती है। 'वीर सतसई' की सास बड़े विश्वास और विवेक के साथ अपना कर्तव्य निभाती है। एक ओर वह पुत्र वधू को इस बात के लिए आश्वस्त करती है कि उसका पुत्र अवश्य ही शत्रुओं की स्त्रियों के चूड़ों के लिए यमराज सिद्ध होगा[1] तो दूसरी ओर यह सुनकर कि उसका पुत्र शत्रुओं को बिना मारे, अकेला ही युद्ध में मर गया है तो वह पुत्र-वधू को सती होने से (बेटे के कायर होने के कारण) रोकती है।[2] लेकिन ऐसे क्षण भी उसके जीवन में आते हैं जब उसके हर्ष का पारावार नहीं रहता। ये वे क्षण हैं जब उसका पुत्र युद्ध में मरने जा रहा है और पुत्रवधू सती होने को उमंगित हो रही है।[3] कुल

१—मूझ भरोसो दूध रो, चूड़ां रो जमराज ।।६६।।

२—सुण मरियो सुत हेकलो, सासू प्रभणै धार।
मो जणियो कायर थयो, बेटी ! बळण निवार।।६८।।

३—आज घरे सासू ! कह, हरख अचानक काय ?
बहू बळेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय ।।६७।।

नाथूसिंह महियारिया कृत 'वीर सतसई' में भी वीर की माता और उसकी सास इसी प्रसंग को लेकर अत्यन्त हर्ष मना रही हैं—

व्याहणियाँ मिल ऊमगे, हरख मनाय-मनाय।
हिक रौ पय बगतर कसै, हिक रौ सीस खुलाय ।।

की लाज रखने वाले इन दोनों पर्वतों को विलीन होते देखकर सास फूली नहीं समाती ।[1]

(ग) वीर पत्नी :

माता और सास के बाद नारी का आकर्षक रूप पत्नी का रूप है। पत्नी रूप में यहाँ नारी का भोग्या रूप चित्रित नहीं हुआ है। वह प्रेरणा और शक्ति के रूप में ही चित्रित हुई है। परम्परागत संयोग-वियोग के विभिन्न संदर्भों को कवि ने वीर रस के अनुरूप वाणी दी है। रीतिकालीन कवियों ने चंवरी और पड़वा (शयनागृह) जैसे स्थलों पर घोर कामुकता का वर्णन किया है पर सूर्यमल्ल ने इन प्रेमोत्तेजक प्रसंगों पर भी वीर भावों का ही चित्र खींचा है। यहाँ नारी के नखशिख-निरूपण और मन में उठने वाली काम भावनाओं का वर्णन न होकर वीर व्यक्तित्व की छटा पर नारी का मुग्ध होना चित्रित किया गया है। यहाँ नारी के लिए संयोग के विशिष्ट स्थल हैं चितारोहण और स्वर्गारोहण। इन वीरांगनाओं के लिए संयोग की सार्थकता मृत्यु का आलिंगन कर पति के साथ जल मरने में है।

यहाँ की नारी वीर ही नहीं, वह सती साध्वी भी है, सामाजिक मर्यादाओं की रक्षिका भी है। जब वह देखती है कि उसका पति धारातीर्थ में स्नान करता हुआ काम आया, तब वह ज्वाला का शृंगार करने को तत्पर हो उठती है। 'वीर सतसई' के सम्पादकों ने ठीक ही लिखा है कि यह वीर नारी कोई दब्बू दासत्व में पली हुई स्त्री नहीं है। उसमें स्वतंत्र तेज की ज्वाला द्रौपदी की तेजस्विता की याद दिलाती है। चितारोहण के बाद स्वर्ग में पहुँच कर अपने पति को अप्सरा के साथ देखकर वह, अप्सरा पर पिल पड़ती है—

> काली अच्छर ! छक म कर, सूना धव्र अपणाय।
> सूर किसो पाखै सती, बौली ! सुरग वसाय ॥२६१॥

और सावधान करती है—

> छोडो अच्छर-छेहड़ो, सो धण झालै हाथ ॥२६०॥

चितारोहण की इस भावना को क्षणिक जोश नहीं कहा जा सकता। मर मिटने की यह अमिट पिपासा सांसारिक लालसा नहीं कही जा सकती। यह तो अपने आप में एक महान् साधना थी, निष्काम तपस्या थी। इसमें रमणियों का

१—लखिया डूंगर लाज-रा, सासू उर न समाय ॥६६॥
राठोड़ र. म. री वचनिका में भी राजा रतन को लज्जा का दुर्ग कहा गया है—'लाज रो कोट उज्जेणि लड़ि पड़ि रतंन राजा पडे।'

मदमाता यौवन साधना का मंडप बन गया, करुणा और वीरत्व का यज्ञ कुंड बन गया, काम पर धर्म की विजय का प्रतीक बन गया।

सूर्यमल्ल ने जिस वीर पत्नी का चित्रण किया है, उसे कायर पुरुषों का पड़ोस अच्छा नहीं लगता वह ऐसे देश में रहना चाहती है जहाँ सिरों का लेन-देन होता हो,[1] जहाँ तलवारें चमका करती हों। यह नारी पति के लिए प्रेरणा और शक्ति का स्रोत है।[2] गजमोतियों से पूजा हुआ, अनेक चँवरों से व्यंजित किया हुआ, हाथ में धारण किया हुआ उसका चूड़ा उसके पति के लिए बल-स्वरूप है।[3]

सूर्यमल्ल ने जिस नारी का चित्रण किया है, वह वीर समाज के अनुरूप ही है। क्या हुआ यदि परिवार के लोग कहीं प्रीति भोज में चले गये और अचानक आक्रमणकारी आ गये। कोई परेशानी नहीं, कोई विकलता नहीं। वीर पत्नी ने अकेले ही तलवार उठाकर शत्रु-सेना का सामना किया।[4]

कायरों को लेकर इन वीर रमणियों ने बहुत सुन्दर उक्तियाँ कही हैं। एक पत्नी अपने पति को यहाँ तक कह देती है कि युद्ध से भागकर आने पर तुम्हें सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, बाँह तो मिलने की नहीं—

१—नह पड़ोस कायर नरां, हली ! वास सुहाय।
बलिहारी जिण देसड़ै, माथा मोल बिकाय ॥७०॥

२—गाडण शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' में अचलदास की तीनों रानियों का प्रेरणादायी स्वरूप देखने योग्य है। मेवाड़ के राणा मोकल की पुत्री पुष्पा ने कहा—हे स्वामी, युद्ध के समय जब आप शरों के जाल में प्रवेश करेंगे तब मैं भी अपने तीनों—मातृ, पितृ और श्वसुर—पक्षों को समुज्ज्वल करूँगी—

हउं उजालिसि आपणा, त्रेवे पख तिणि तालि।

कछवाही रानी ने कहा—नाथ ! जब शत्रुओं के बाणों की वर्षा होगी तब मैं गढ़ की कोट पर खड़ी होकर आपके आड़े आ जाऊँगी—

तो आडी होइसंम तठइ, हउ कोसीसां कंत।

बागड़ देश की सांखली रानी ने भी वीर-मंत्र को ही श्रेष्ठ बताया—भलउ मंत्र भडिवाह।

३—पूजाणो गज-मोतियाँ, मींडाणो कर मूझ।
वीजाणो घण चामरां, है चूड़ो बळ तूझ ॥७४॥

४—गोठ गया सब गेहरा, वणी अचाणक आय।
सिंघण-जायी सिंघणी, लीधी तेग उठाय ॥७६॥

मुड़ियाँ मिळसी गींदवो, मिळै न धण-री बांह ।।७३।।

युद्ध से भागकर पति का आना उसके लिए वैधव्य का सूचक है। वह दर्जिन से कहती है, तू मेरे लिए विधवा की लम्बी कंचुकी लाना और मनिहारिन से कहती है—मैं तो विधवा हो गई हूँ, अब कैसा शृंगार ?

पिव मुआ घर आविया, विधवा किसा बणाव ।।

यह नारी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति इतनी अधिक सजग है कि उलाहना, व्यंग्य, धमकी और झिड़कियाँ दे-देकर अपने कायर पति पर टूट पड़ती है—

१. कंत भला घर आविया, पहरीजै मो बेस ।

२. कंत घरे किम आविया, तेगां रौ घण त्रास ।
लहंगे मूझ लुकीजियै, वैरी रौ न विसास ।।

३. विण मरियां, विण जीतियां, जे धव्र आवै धाम ।
पग-पग चूड़ी पाछटूं, तो रावत-री जाम ।।७८।।

४. कंत सुपेती देखतां, अब की जीवण आस ।
मो धण रहणै हाथ हूँ, घातै मुंहडै घास ।।

अवसर आने पर पति के वस्त्र पहनकर तथा तलवार हाथ में लेकर डाकुओं से सामना करने में भी यह नहीं हिचकती। पति की कायरता के कलंक को अपनी विजय-कीर्ति से यह मिटा देती है—

भागा कंत लुकाय-धण, ले खग आतां धाड़ ।
पहर धणी चा पूगरण, जीती खोल किंवाड़ ।।८०।।

यही नहीं जब वह देखती है कि उसके पति 'दमंगळ बिण दुमणौ' रहते हैं और कवच की कड़ियाँ भी बन्द नहीं करते हैं तो वह सखी से कहती है—

'सखी बधावौ त्यां भड़ां, जेथ जुड़ीजै कंत'

जब वह देखती है कि युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं, शत्रु का दल उन्मत्त होकर गरज रहा है तो वह प्रेम की पुतली मदिरा की प्याली ढुलका देती है और अदम्य साहस बटोर कर कह उठती है—

नींदाळू अब छोड़णा, भीड़ाणा कुच पीण ।

पति के विजयोल्लास में अपना उल्लास मिलाकर वह कुमैत पर बलिहारी जाती है। सिकलीघर की चतुरता पर अपने आपको न्यौछावर करती है क्योंकि उसने तलवार की धार इतनी तेज बनाई है कि 'रण झाटकतां कंत रे लगे न झाटक एक।'

(घ) वीर देवरानी :

देवरानी-जिठानी के प्रसंग से भी नारी के वीर रूप की सुन्दर व्यंजना हुई है। शत्रुओं का मुकाबला करने की इनमें क्षमता है। घुड़सवारी करना और शस्त्र चलाना ये अच्छी तरह जानती हैं। बिना बुलाये यदि अतिथि (शत्रु) आ गये तो क्या हुआ, उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए तत्काल ही योजना बन गई। देवरानी तो ढाल और तलवार लिये डयौढ़ी पर खड़ी हो गई और जिठानी बन्दूक लेकर मेड़ी पर।[1]

(ड) वीर ननद :

ननद का व्यक्तित्व भी कम प्रेरक नहीं है। वह तो अपनी शृंगार-मंजूषा में नारियल तक सुरक्षित रखती है[2] ताकि यथासमय बिना किसी विलम्ब के वह अपने पति के साथ सती हो सके। कितनी मिलन-व्यग्रता, कितना आत्मीय-स्नेह, कितनी दूरदर्शिता ! आज नारी भले ही क्रीम, पाउडर, इत्र-फुलेल और लिपि-स्टिक से अपनी शृंगार-मंजूषा सजाकर पति को रिझाने का प्रयत्न करे, पातिव्रत निभाने का दंभ भरे पर क्या समर्पण की यह झांकी उसके लाल-लाल अधरों में मिल सकेगी ? वीर चरित्र की यह उज्ज्वलता उसके कजरारे नैनों में झलक सकेगी ? आत्म-दर्प की यह ज्वाला उसका सुकुमार तन सहन कर सकेगा ?

(च) वीर सेवक की पत्नी :

स्वामिभक्त सेवक की तरह उसकी पत्नी भी वीर और निर्भीक है। स्वामि-भक्ति के निर्वाह के लिए अपने पति को युद्ध में भेजने के लिए वह किंचित् भी विलम्ब नहीं करती। ठकुराणियों के व्यवहार को लेकर उन्हें खरी-खोटी सुनाने में भी वह नहीं चूकती। वह स्पष्ट कहती है, तुम शुष्क सेर भर आटा देने में भी आना-कानी करती हो पर हम, जिस दिन हमारे चूड़े की आवश्यकता होगी, वह भी तुरन्त दे देंगी।[3] हमारे पति का सिर, दूसरों के पहले, ऋण चुकाकर गिरेगा।[4]

१—भाभी ! हूं डोढ्यां खड़ी, लीधां खेटक-रूक।
थे मनवारो पाहुणां, मेड़ी झाल बंदूक॥८३॥

२—पीहर पूछै खोलणी, पेई भूखण केर।
हेड़व्रियां भाभी हंसी नणद कनै नाळेर॥८४॥

३—ठकुराणी ! सतियां भणे, चूण समप्पो सेर।
चूड़ो जिण दिन चाहसी, उण दिन केथ अवेर ?॥५१॥

४—सूर्यमल्ल के वीर सेवक की पत्नी तो ठकुराणियों को ही खरी-खोटी सुनाकर

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'वीर सतसई' में चित्रित नारी का आदर्श महान् है। वह सच्चे अर्थों में प्रेरणा, स्फूर्ति और शक्ति है। कवि ने जो बात अपनी कविता के लिए कही है, वही बात 'वीर सतसई' में चित्रित वनिता पर भी लागू होती है। उसकी नारी सचमुच 'जंपै भड़खाणी जठै, सुणै कायरां साल' है।

[ग] सतसई में युद्ध-वर्णन

'वीर सतसई' यद्यपि वर्णनप्रधान काव्य नहीं है तथापि युद्ध-वर्णन का वास्तविक चित्र यहाँ देखने को मिलता है। इस चित्र के दो पक्ष हैं—युद्ध की तैयारी और युद्ध। यहाँ इन दोनों रूपों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

युद्ध की तैयारी :

सामान्यत: वीर काव्यों में युद्ध-तैयारी का बड़ा अतिरंजनापूर्ण वर्णन मिलता है। सेना के प्रस्थान को लेकर कवि आकाश-पाताल को मिला देने वाली अतिशयोक्तियाँ करने में कभी नहीं चूकते। उनका ध्यान केवल बाह्य हलचल पर रहता है। मन में उठने वाली आन्तरिक भावनाओं और अदम्य उमंगों के चित्रण की ओर सामान्यत: उनका ध्यान नहीं रहता। वीर योद्धाओं की पत्नियों की मनोदशा और उनके प्रेरणादायी व्यक्तित्व की ओर तो वे आँख उठाकर भी नहीं देखते। पर सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई' में यह बात नहीं है। युद्ध की तैयारी में कवि ने निम्नलिखित बातों का संकेत किया है—

क. शत्रुओं का आक्रमण
ख. पत्नी का पति को जगाना
ग. युद्ध की तैयारी
घ. कवच-धारण

रह जाती है पर नाथूसिंह महियारिया के वीर सेवक की पत्नी तो ठाकुरों को सुनाने में भी नहीं हिचकती—

ठांठौ देता ठाकरां, देता गण-गण दन्न।
धवनूं हरवल देखजै, आज उजाळ अन्न।।

अर्थात् हे अन्नदाता ! आप तो हमें अपने जीवन-निर्वाह के लिए अन्न कम तोल-तोल कर दिया करते थे और वह भी महीने के दिन गिन-गिनकर देते थे। किन्तु आज उसी अपर्याप्त अन्न से पले हुए मेरे पति की स्वामिभक्ति तो देखिए ! वे आज आपकी सेना के अग्रभाग में विचरण कर रहे हैं अर्थात् आपके लिए सबसे प्रथम मरने के लिए प्रस्तुत हैं।

ङ. युद्ध भूमि को प्रस्थान

च. वीर का आतंक

छ. युद्ध-भूमि पर पहुँचना।

यहाँ प्रत्येक बात का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है।

(क) शत्रुओं का आक्रमण :

शत्रु बिना बुलाये मेहमानों के समान अचानक आक्रमण कर देते हैं।[1] वे आक्रमण करने की योजना सामान्यत: तब बनाते हैं जब वीर योद्धा घर में नहीं होता। पर उनकी योजना सफल नहीं हो पाती। शत्रुओं के आ पहुँचने की खबर पाकर वीर योद्धा उनकी सेना पर इस प्रकार टूट पड़ता है जैसे फूल की सुगंधि पाकर भौंरा उड़कर फूल पर आ पहुँचता है।[2]

(ख) पत्नी का पति को जगाना :

कभी ऐसी स्थिति भी आती है जब पति तो निश्चिंत होकर सोया है और बाहर हजारों प्रकार का युद्ध का शब्द हो रहा है।[3] आकाश में गिद्ध पक्षी उड़ रहे हैं, कटोरों में अफीम उछल रहा है।[4] मतवाले हाथी द्वार पर झूम रहे हैं, आकाश भालों से ढक गया है और पृथ्वी पाखरों से युक्त घोड़ों से आच्छादित हो गई है।[5] शत्रु इतना समीप आ पहुँचा है कि किले के द्वार तक खुल गये पर यह निर्भीक वीर गलबांहे डालकर, प्रेम में बेसुध हो सोया पड़ा है। पत्नी उसे बार-बार जगाने का प्रयत्न करती है। पर वह आलसी सिंह (वीर) करवट बदलकर फिर

१—क. विण नूंतै घण पाव्रणा, हेली ! ढळिया आय ।।१२६।।

ख. पड़वै पासै पाहुणां, अस आफू उछरंग।
नाह निवारौ नींदड़ी, कव कहवै कवरंग।।

—मुकनसिंह : रंग रा दूहा

२—सखी ! भरोसो नाह-रो, सूनो सदन म जाण।
फूल सुगंधी फौज-में, आसी भँवर-उडाण ।।१२७।।

'राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' में भी इस प्रकार के भाव की अभिव्यक्ति हुई है—

ऊंडै द्रहि किलकिला ज्यूं फूलधारा विचै उडि पड़ां।

३—धण आखै, जागो धणी ! हूंकळ-कळळ हजार ।।१२८।।

४—पंथ निहारै पाहुणा, गीध विहारै गैण।
अमल कचोळां ऊझलै, नींद विछोड़ो नैण ।।१२९।।

५—मतवाळा ! दळ आविया, छोडीजै गळ-बांह।
आभ त्रिभागां ढंकियो, छोणी पाखर छाह ।।१३३।।

सो जाता है।[1] उसे अपने पराक्रम पर इतना विश्वास है कि जब चाहेगा तभी उठकर शत्रुओं को मार भगायेगा। अभी तो उसकी दृष्टि में शत्रु दूर हैं।

(ग) युद्ध की तैयारी :

जो योद्धा युद्ध के बिना उदास रहा करता था और अपने कवच की कड़ियाँ भी बन्द नहीं करता था[2], वह अब युद्ध में जाने की—अप्सरा को वरण करने की—तैयारी कर रहा है। उसका सेवक घोड़ा कस रहा है।[3] योद्धा के उल्लास की कोई सीमा नहीं। उसकी मूँछें भौंहों को छू रही हैं। वह अवश्य ही लाखों शत्रुओं को मारकर अपने हाथ की खुजली मिटायेगा।[4]

(घ) कवच-धारण :

योद्धा युद्ध में जाने के लिए कवच-धारण करने लगा। कवच की कड़ियाँ बज उठीं तो उसका उत्साह सौगुना बढ़ गया।[5] उसकी बोटी-बोटी उमंग से फूल उठी।[6] रति-क्रीड़ा में बाहुपाश में समा जाने वाला प्रिय अब कवच में भी नहीं समाता।[7] कवच इतना छोटा पड़ गया कि उसके माथे में कवच की (टोप की) कड़ी घुस गयी।[8]

१—कांकड़ त्रंबक त्रहकिया, ऊठो खुलियो कोट।
सुणतां नाहर आळसी, सूतो बदळ करोट ॥१३४॥

नाथूसिंह महियारिया ने इस प्रसंग को लेकर निम्न दोहा कहा है—

कंत ! बधाई हूं दऊं, जागौ घण - नींदाळ।
आज सिमाड़ै आपणै, बज रहिया त्रंबाळ ॥

२—दमंगळ विण दुमनो रहै, जड़ै न कंगळ-जंत ॥१३८॥

३—आज सवेळो जागणो, कसियो चर तोखार ॥१३६॥

४—सुणतां हाको धव सखी । मूंछ भुंहारां छूय।
एकण लाखां आंगमे, मेटै कर - कंडूय ॥१३९॥

५—कंत सजंतां सौ गुणो, कड़ी वजंतां कोच ॥१४१॥

६—कड़ी लियंतां कंत - री, बड़ी-बड़ी विगसाय ॥१४३॥

७—हूं हेली ! अचरज कहूँ, घर में बाथ समाय।
हाको सुणतां हूलसै, मरणो कौच न माय ॥१४०॥

नाथूसिंह महियारिया कृत 'वीर सतसई' में तो योद्धा के कवच धारण करने पर सारा का सारा घर ही प्रसन्न है। पत्नी के अंग चोली में नहीं समाते और आनंद मन में नहीं समाता—

कंत न मावै कवच में, हरख न मावै गेह।
अंग न मावै अंगियां, नहँ मन मावै नेह ॥

८—फूलंतां रण कंत रै, कड़ी समाणी मथ्थ ॥१४५॥

(ङ) युद्धभूमि को प्रस्थान :

अस्त्रशस्त्रों से सजकर वीर योद्धा युद्ध-भूमि की ओर चला। सेनाओं के झंडों से आकाश छा गया और घोड़ों से पृथ्वी पददलित हो गई। पर यह वीर इतना लापरवाह और धैर्यवान है कि बड़े विश्वास के साथ, विवाहार्थ तोरण की ओर बढ़ने वाले वर के समान धीरे-धीरे (बिना किसी घबराहट के) आगे बढ़ रहा है।[1] दूसरी ओर देवर की गति बड़ी द्रुततर है। वह पवन की भाँति (पवन की गति से) शत्रुओं के घोड़ों के समुद्र में जा पहुँचा।[2]

(च) वीर का आतंक :

वीर योद्धा को देखकर सर्वत्र आतंक छा गया। कायर योद्धाओं के हाथ काँप उठे, फिर उनके हाथों से बाण नहीं छूटे।[3] डर के मारे सैनिकों की छातियों में खड्डे पड़ गये और वे 'आ गया, आ गया' कहते हुए छिपने के लिए स्थान ढूँढ़ने लगे।[4] सेना के अग्रभाग में खलबली मच गई। योद्धाओं के पैर उलटे-सीधे पड़ने लगे। उनका स्पष्ट बोलना बन्द हो गया।[5]

(छ) युद्ध भूमि पर पहुँचना :

प्राणों को हथेली पर लेकर वीर योद्धा युद्ध-भूमि में जा पहुँचा। उसने दूल्हे की भाँति सिर पर कलंगी और सेहरा धारण कर लिया, शरीर पर केशरिया वस्त्र पहन लिए।[6] उसे मृत्यु का क्या भय? वह तो पगली के घड़े के समान कभी भी गिरकर फूट सकता है और सती के नारियल के समान उसका मर जाना (जल जाना) निश्चित है।[7]

१—झंडा ओछाड़े गयण, वसुधा पाड़ै वाह।
तो भी तोरण-वींद तिम, धीरो-धीरो नाह ॥१४७॥

२—सोकरड़ां-रा सिन्धु में, पूगो पवन प्रमाण ॥१४९॥

३—कुबणैतां कर कंपिया, वळे न छूटा बाण ॥१५१॥

४—पड़ै डहोळा छातियाँ, नजर पड़ेतां नाह।
'आवै, आवै' ऊचरे, ओडो हेर सिपाह ॥१५२॥

५—'आघा ! आघा !' ऊचरे, रावत तेथ हरोळ।
पग खरड़ै, हळबल पड़ै, बोलै गळबळ बोळ ॥१५३॥

६—सीस कलंगी-सेहरो, केसर - बोळ दुकूळ ॥१५७॥

७—अजको, गहली-रो कळस, बळती रो नाळेर ॥१५६॥
'राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' में वीर के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है—काल्ही रा कळस। सती रा नाळर।

युद्ध :

युद्ध की तैयारी के बाद युद्ध का समारम्भ होता है। सामान्यतः युद्ध-वर्णन में मारकाट, हायहत्या, रक्तपात आदि बाह्य दृश्यों और बाह्य चेष्टाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया जाता है पर सूर्यमल्ल ने बड़ी बारीकी और सजीवता के साथ वीर योद्धा के तरंगित हृदय की थाह ली है, उसके शस्त्र-प्रहार का कौशल देखा है, पराजित शत्रु की दुर्दशा और विजयी नायक की गरिमा देखी है। युद्ध-वर्णन के विभिन्न प्रसंगों को इस प्रकार रखा जा सकता है—

क. प्रतिपक्षियों का मिलन
ख. युद्ध का आरंभ
ग. युद्ध-वर्णन
घ. शत्रुओं की पराजय
ङ. विजयी योद्धा का स्वागत

(क) प्रतिपक्षियों का मिलन :

राजस्थान के वीरों ने युद्ध को कभी विपत्ति के रूप में नहीं लिया। वे शत्रुओं को मेहमान की तरह समझकर, उनके साथ खेल खेलने में ही आनन्द का अनुभव करते। जब प्रतिपक्षी मिलते, दोनों में खूब मनुहारें होतीं। प्रतिपक्षी वीर घोड़ों से उतर पड़ते, अपने भाले जमीन में गाड़कर घोड़े उनसे बाँध देते और मेजबानों के समान परस्पर अंजुली से अफीम पिलाने का खेल आरंभ करते।[1]

(ख) युद्ध का आरंभ :

अफीम-सेवन के बाद दोनों दल समधियों की तरह गलबाहीं भरते और एक-दूसरे से, पहले शस्त्र का वार करने के लिए आग्रह करते।[2] इन मान-मनुहारों के बाद युद्ध आरंभ होता। तोपों के चलने से जो शब्द होता उससे पृथ्वी में दरारें पड़ जातीं और उनके आघात से पहाड़ों की चोटियाँ टूटकर गिर पड़तीं।[3] पृथ्वी लचक जाती।[4] कंकिनी (पक्षी विशेष) मृतकों के कलेजे खाने को उतावली

१—मिलतां ऊतरिया मरद, साकुर बांधा सेल।
मिजमानां जिम मंडिया, खोबांबाजी खेल ॥१५८॥
२—संपेखे वाल्हा सगा, मिल गळ-बथ्थां मार।
पहली वाहण पाहुणां, मंडीजै मनुहार ॥१६३॥
३—तोपां धर दरजां पड़े, झड़ै गिरां सिर झाट ॥१६४॥
४—नाग ! द्रमंका की पड़े ? नागण ! धर मचकाय ॥१६५॥
मिलाइये—धरा सेज धूजै, डिगै धू धडक्कं—राठोड़ रतनसिंघ री वचनिका।

हो उठती ।[1] योगिनी खप्पर हाथ में लेकर रक्तपान करने के लिए चल पड़ती ।[2] महादेव अपनी मुंडमाला में वीरों के सिरों को पिरोने के लिए आतुर हो उठते ।[3]

(ग) युद्ध–वर्णन :

बाहरी हलचल का वर्णन ऊपर हो चुका। अब देखिए स्वयं वीर योद्धा की चपल गति, शस्त्र-प्रहार की अद्भुत क्षमता और आत्मा की दृढ़ता। वह लड़ क्या रहा है, शत्रु-सेना के साथ होली खेल रहा है।[4] मंदाराचल पर्वत के समान सैन्य-समुद्र को मथ रहा है।[5] और मदिरा के प्यालों के समान शत्रु-सैनिकों को पी रहा है।[6] उसका सिर कट गया है फिर भी वह सेनाओं को काट रहा है। समझ

१—कंत समप्पै हेकलो, कटकां ढाहि कळेज ॥१६६॥

२—भर खप्पर वाल्है रुधिर, देसी कंत धपाय ॥१६७॥

इस संदर्भ में 'क्रिसन-रुक्मणी री वेलि' का युद्ध-वर्णन (युद्ध-वर्षा-रूपक) द्रष्टव्य है।

३—ईस ! घणा जे आखता, तो लीजै सिर तोड़ ॥१६६॥

नाथूसिंह महियारिया कृत 'सतसई' की वीर पत्नी महादेव से अपने पति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हुई पार्वती से कहती है कि जिस मस्तक को मेरे पति अनादर से ठोकरें मारते हैं, उसी को तुम्हारे पति सौन्दर्यवर्धक समझ अपने गले में धारण करते हैं—

सीस डगावै ठोकरां, ऊमा सुभड़ सभाव।
मो धव अण आदर दियै, तो धव करै बणाव ॥

४—देख सखी ! होळी रमै, फौजां में धव्र एक ॥१७०॥

'राठोड़ रतनसिंघ री वचनिका' में 'डांडिया रास' के रूप में यह प्रयोग आया है—

क. खांडा री खटाखड़ि झटाझड़ि डंडाहड़ि खलीजै।
ख. रमै महा रिण रूक रस जोध डंडाहड़ि जाणि॥

५—सागर मंदर सारखो, डोहै अनड़ अनेक ॥१७०॥

६—मद प्यालां जिम एकलो, फौजां पीवत जाय ॥१७१॥

'राठोड़ रतनसिंघ री वचनिका' में यह भाव इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

रूक पियाला पीयस्यां पायस्यां।

में नहीं आता आँखें उसके सिर में थीं या हृदय में ?[1] वह प्रसन्न हो-होकर कितना फूल गया है। आधे पलंग में ही समा जाने वाला यह स्वामिभक्त योद्धा आज दृष्टि के समस्त क्षेत्र (आँखों में) में भी नहीं समा रहा है।[2] कितनी दृढ़ता आ गई है इसमें ? रंगमहल की आनंद-क्रीड़ा में कुचों को भी कठोर बताने वाला यह सेनानी आज भालों के आघातों को भी फूलों के समान समझकर छाती पर झेल रहा है।[3] कितनी चपलता आ गई है इसमें ? 'तोरण-वींद तिम' धीरे-धीरे चलने वाला यह योद्धा बन्दर को भी मातकर दुर्ग पर चढ़ रहा है।[4]

और शस्त्र-प्रहार की अद्भुत क्षमता का क्या कहना ? बाण-विद्या में इतना कुशल कि जितनी देर में उसकी चुटकी बाणों से खाली होती है, उतनी देर में वह शत्रु-सेना को नष्ट कर देता है।[5] इतना अचूक निशानेबाज कि उसकी पत्नी को इस बात की चिन्ता है कि घर में तीर रखे हैं हजार और शत्रु हैं पांच सौ

१—विण माथै वाढै दळां, आँख हिये कै सीस ? ॥१७४॥

नाथूसिंह महियारिया ने कल्पना की है कि मानो तलवार को ही ईश्वर ने नेत्र दे दिये हैं जिससे वह, योद्धा के बिना सिर के लड़ने पर भी, निर्दिष्ट स्थल पर वार करती है—

देख सखी बिण सिर बहै, तौय न चूकै धार।
सकियक पिवरी खाग नै, नैण दिया करतार॥

२—मंच अधूरै मावतो, आंख न मावै आज॥१७५॥

नाथूसिंह महियारिया ने इससे अधिक व्यापक फलक पर यह कल्पना की है। वीर योद्धा के अद्भुत रण-कौशल से इतने अरि-मस्तक उड़े कि वे शिव की मुण्डमाला में नहीं समा रहे, इतने गजदन्त कटे कि वे घर में नहीं समा रहे, इतने शत्रु वीरगति को प्राप्त हुए कि वे स्वर्ग में नहीं समा रहे और प्रियतम की वीर-मुद्रा आँखों में नहीं समा रही—

सीस अमावड़ सिव-गळै, घर हसती रा दंत।
अरी अमावड़ सुरग में, आँख अमावड़ कंत॥

३—करड़ो कुचनूं भाखता, पड़वा हंदी चोळ।
अब फूलां जिम आंगमै, सेलां-री घमरोळ॥१७६॥

ईसरदास ने इस भाव की व्यंजना इस प्रकार की है—

सेल घमोड़ा किम सहया, किम सहिया, गज-दंत।
कठिण पयोहर लागतां, कसमसतौ तू कंत॥

४—अजको धव पूगो उठै, मांकड़ मेल्हे पीठ॥१७७॥

५—चिमठी खाली ह्वै जितै, निमठी चाली फोज॥१७८॥

ही। आधे तीर वह किन पर चलायेगा?[1] इतना हस्तलाघव और त्वरित संचरण कि घर में दिखाई देने वाले दो हाथ युद्ध के मैदान में हजार हाथ बन जाते हैं।[2] खड्ग-प्रहार का कौशल तो यह कि एक ही झटके में वीर और घोड़े उड़ जाते हैं, घोड़ों के शरीरों में तलवार तिरछी होकर, उन्हें बराबर दो हिस्सों में बाँटती हुई, एकदम साफ निकल जाती है[3] फिर भी योद्धा को जरा भी झटका नहीं लगता। भाले के प्रहार से शत्रु-प्राणरहित होकर ज्यों के त्यों खड़े रह जाते हैं।[4] उन्हें घायल होकर बर्राने का अवसर ही नहीं मिलता। एक ही बार में वे निष्प्राण हो जाते हैं। योद्धा इतना दयालु है कि उसे शत्रुओं का बर्राना और चिल्लाना सुहाता ही नहीं।[5]

यहाँ का वीर योद्धा खतरों से घबराता नहीं। सामने से आते हुए भाले के प्रहार से विंधते हुए भी वह हाथी के दाँत उखाड़ लेता है।[6] वह पहले शत्रुओं को वार करने का अवसर देता है फिर ऐसा वार करता है कि शत्रुओं के सिर उनके कंधों से अलग हो जाते हैं।[7] उसने हाथियों को मारकर उनके अस्थिपंजरों से गाँव के चारों ओर परकोटा सा बना दिया है।[8] एक वैर के बदले उसने दस-बीस वैर मोल ले लिये हैं।[9] घायल शत्रु प्रलाप कर रहे हैं और उनकी पत्नियाँ रो रही हैं।[10]

१—पैला सुणिया पांच सै, घर में तीर हजार।
आधा किण सिर ओलसी, जे खिजसी जोधार॥१७९॥
२—घर में देखूं दोय कर, रण में होय हजार॥१८०॥
३—तेग वखाणों कंत री, आडै वाजि अछंट।
वेखीजै जिम बाप-रै, बेटां दो घर वंट॥१८३॥
४—जीव पखै ऊभा जठै, सखी! धणी-री सांग॥१८४॥
५—निरदय दीठा आन भड़, कूकावै पर-सेन।
वाहै कंत दयाल ह्वै, अरियां हाय सुणै न॥१८५॥
६—साम्है भालै फूटतो, पूग उपाड़ै दंत।
हूं बलिहारी जेठ-री, हाथी हाथ करंत॥१८६॥
७—पहली झेलै पार-री, वाहै अंस-उतार।
जोवो भाभी! जेठ-री, बळिहारी सौ बार॥१८७॥
८—रूंस सहर-री गामड़ै, आजे वणियो ओट।
हाथाळै हण हाथियां, कीधा पंजर-कोट॥२००॥
९—भाभी! हेकण वेर में, वोळविया दस-बीस॥१९६॥
१०—होवै घर-घर हाय रे! रोवै बर-बर नार॥१९५॥

(घ) शत्रुओं की पराजय :

वीर योद्धा के आगे शत्रु परास्त हो गये। उनके झंडे क्षण भर भी नहीं ठहरते, वे ऐसे उड़े जा रहे हैं जैसे मोर उड़कर भाग रहे हों।[1] शत्रु के भी पैर छूट गये। वे ऐसे भागे जा रहे हैं मानो लंका के युद्ध में कुंभकरण से लिपटे हुए बन्दर, उसके झटकारते ही चारों ओर भाग गये हों।[2] उनके नगाड़ों के पुट (चमड़े) फूट गये हैं और झंडों के डंडे टूट गये हैं।[3]

(ङ) विजयी योद्धा का स्वागत :

वीर पत्नी ने सती होने की सारी तैयारी कर रखी थी। इतने में पति विजय प्राप्त करके लौट आया। पत्नी के उल्लास की सीमा न रही। उसने सती होने के ढोल को बन्द करवा दिया, एकत्र हुए सभी लोगों को विदा कर दिया, नारियल को घर में रख दिया और घावों से रक्तरंजित पति के पैरों में प्रणाम कर उनका स्वागत किया।[4]

युद्ध-सम्बन्धी परम्पराएँ

सामान्यतः वीर-काव्यों में युद्ध सम्बन्धी विश्वासों और परम्पराओं की स्थान-स्थान पर व्यंजना मिलती है। 'वीर सतसई' में भी इन परम्पराओं की कई स्थानों पर गूंज है। प्रमुख परम्पराएँ जो युद्धप्रिय राजपूत-जाति में मान्य हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. युद्ध आरंभ होने पर बाजे बजना[5]

२. योद्धा को प्रोत्साहित करने के लिए वंदीजन जातियों (चारण, भाट,

---

१—पेख सहेली ! पार-रा, झंडा खिण न रहाय।
एकण बाण उतारिया, जाण सिखंडी जाय ॥२०१॥

२—दीधा दिस-दिस लूंबिया, ऊठे कंत भजाय।
कुंभकरण रा झाड़िया, जाणै बन्दर जाय ॥२०२॥

'राठोड़ रतनसिंघ री वचनिका' में भी ऐसा उपमान प्रयुक्त हुआ है—

रौद्रां रिण भूमि करंत रतंन।
कपी दळ जांणि कि कुंभकरंन ॥

३—फूटै पुड़ नौवत पड़ी, टूटै डंड निसाण ॥२०३॥

४—ढोल वरज, सब भेज घर, धर नाळेर सु-धाम।
घावां कंत पधारिया, पांवां हंत प्रणाम ॥२१२॥

५—परख भड़ां अर कायरां, त्रहत्रहियां त्रंबाल ॥३२॥ सूर्यमल्ल मिश्रण

ढोली आदि) द्वारा सिन्धुराग गाना।[1]

३. युद्धार्थ सुसज्जित होते समय योद्धा द्वारा आदर्श वीरों का स्मरण[2]

४. योद्धा का अफीम-सेवन एवं मदिरा-पान कर युद्ध करना।[3]

५. योद्धा की भुजा का, गजमोतियों से, पूजन कर उसकी आरती उतारना।[4]

१—क. १. दूरा केम दकाळणा, हूंचकतां भड़ हंत ॥११॥

२. ढोलणिय धण तेड़वै, गाण मंडाड़ै गाह ॥२३२॥ सूर्यमल्ल

ख. घोड़ां पाखर धमधमी सींधू राग हुवाह—ईसरदास

ग. एक वार सूरां पूरां रा अवसाणसिद्ध खित्रिरां रा वड़ा राग माहे वड़ा दूहा गवाड़ौ। ज्यूं सूरां पूरां रा चाचरां रा केस चणणाइ नै ऊभा हुवै। पोरिस चढै।

इस अवसर पर जांगड़ियों ने बड़े राग में जो दूहे कहे उनका उल्लेख खिड़िया जग्गा ने इस प्रकार किया है—

परिजाऊ रा दूहा। वेगडे सांड धवल रा दूहा। अेकळगिड़ वाराह रा दूहा। मुञ्ज मारवणी रा दूहा। राव रिणमल रा दूहा। राव अमर रा दूहा। कल्याणमल रायमलौत रा दूहा। करण रामौत रा दूहा। तेजसी डूंगर-सीयौत रा दूहा। जैमल पत्ता रा दूहा। जेता कूंपा रा दूहा। प्रिथीराज जैतावत रा दूहा। गांगा डूंगारौत रा दूहा। अखैराज सोनिगरा रा दूहा। नगै भारमलौत रा दूहा। अमरै धरमावत रा दूहा। ईसर जीवावत रा दूहा। सोभा साचौरा वीकमसी रा दूहा। अवर ही छत्तीस वंश अवसाण-सिद्ध खित्रियां रा दूहा गाया अर सुणाया

२—१. तिण सूरां-रो नांव ले, भड़ बाँधे तरवार ॥३१॥

२. रंग-अचाही जोगियां, राउत वीरा रंग।
इम खोवां ले ले अमल, जीतण पूगा जंग ॥१६२॥

३—१. मिजमानां जिम मंडिया, खोवांवाजी खेल ॥१५८॥

२. ऊगे जिम दूणा अमल, लीजै आज अठेल ॥१५९॥

३. लीजै खोबां गाळमा, जमी कटै घुस जाय ॥१६०॥

४. फूल दुबारै छाकियो, चींतै चौगुण जंग ॥११२॥

५. काय उताली कंकणी ! जे मद पीवण जेज ॥१६६॥

—सूर्यमल्ल

४—जे खळ भग्गा तो सखी ! मोताहळ सज थाळ ॥२४८॥

५. युद्ध में मरने से इस लोक में सुन्दर कीर्ति और परलोक में प्रभुता (स्वर्ग) तथा अप्सरा का मिलना।[1]

६. घर में मरने से नरक मिलना।[2]

७. पति के युद्ध में मरने पर वीरांगना पत्नी का सोलह शृंगार कर उसके साथ सती होना, या जौहर करना।[3]

युद्धवर्णन सम्बन्धी रूढ़ियाँ :

उपर्युक्त निर्देशित युद्ध-विश्वासों के अतिरिक्त वीर-काव्यों में युद्ध-वर्णन सम्बन्धी कई काव्य-रूढ़ियाँ भी प्रचलित हैं जिन्हें इस प्रकार गिनाया जा सकता है—

१—क. १. अठै सुजस, प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय ॥२६॥
२. काली अच्छर। छक म कर, सूना धव अपणाय ॥२६१॥

—सूर्यमल्ल

ख. १. वरण कजि अपछरां सूरिमाँ वह वुवै।
२. बरण कजि अपछरा बाट जोवै खड़ी
३. विलम न धारै करतांर अपछर वरण —ईसरदास

ग. १. मरां तो अपछरां वरां। नहीं तौ जीवित सिभ हुइ ऊबरां।
२. वली मेडतियां सकज्ज वरै अपछरा वीर।
३. रमज्झम झांझर घूघर रोळ।
झले वर सूर वरै रंभ झोळ॥

—राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका

२—मरणो घर-रो मांझिया ! जम-नरकां ले जाय॥२६॥

३—क. १. ऊभी गोख अवेखियो, पैलां-रो दल सेर।
पडियो धव सुणियो नहीं, लीधो धण नाळेर॥२४६॥
२. जे वाल्ही धण जीव-हूं, आगै मूझ करेह॥२५०॥

—सूर्यमल्ल

ख. १. सोळह सिंगार परिमल पहरि——वैकुंठ महाराज पास चाली।
२. इणि भाँति सूं च्यारि राणी त्रिव्ह खवासि द्रव्य नाळेर उछाळि वळण चाली।

—खिड़िया जग्गा

ग. नायण मत पाड़ौ पटी, रण सांचरिया नाह।
वेळा लागै खोलतां, बन रौ करतां दाह॥

—नाथूसिंह महियारिया

१. राजपूतों के छत्तीस वंशों का उल्लेख।[1]
२. मांगलिक ढोल का शब्द सुनकर वर-योद्धा की मूंछों का भौंहों से जा मिलना।[2]
३. शत्रुओं को मेहमान समझकर उनका स्वागत करना।[3]
४. योद्धा को दूल्हे की भाँति उपमित करना।[4]
५. बिना सिर के (कबन्ध रूप में) योद्धा द्वारा शत्रु-सेना को नष्ट करना।[5]

१—क. हूं बळिहारी राणियां, जाया वंस छत्तीस ॥५५॥ —सूर्यमल्ल
ख. अैसा जैसा छत्तीस वंस वणाव करि बैठा राजेसुर
—रतनसिंघ राठौड़ री वचनिका

२—क. १. ढोल सुणंतां मंगळी, मूंछां भूंह चढंत ॥१००॥
२. सुणंतां हाको धव सखी ! मूंछ भुँहारां छूय ॥१३६॥
—सूर्यमल्ल
ख. १. ऊससै सुबप मुख मूंछ भोहाँ मिलै।
२. मूंछां बाय फुरुकिया, रसण झबूकै दंत।
—ईसरदास

३—क. १. विण नूंतै घण पावणा हेली ! ढलिया आय।
जाणै पीव परूसणो, भूखो हेक न जाय ॥१२६॥
२. विण नूंता-रा पावणा, मिलण बुलावै वार ॥१२८॥
—सूर्यमल्ल
ख. वैरी आया पावणां दलथंभ तूझ दुवारि
—ईसरदास

४—क. तो भी तोरण वींद तिम, धीरो धीरो नाह ॥१४७॥
—सूर्यमल्ल
ख. चढ़ि पोरिस वर सोह घढ़ि चढ़ि रिण तोरणि चालि ॥
—ईसरदास
ग. दुल्लह रयण दुझाल सूरा पूरा जान सहि।
हैवै घड़ दुलहणि हुई धज तोरण गज ढाल ॥ —खिड़िया जग्गा

५—क. विण माथै वाढै दलां (३१, १७४)– —सूर्यमल्ल
ख. धड़ि लड़िसी गुड़िसी गयंद नीठि पड़ेसी नाह —ईसरदास
ग. ऋहऋह वीरह नाचि कमंध —खिड़िया जग्गा
घ. विण सिर खग वाहै पिऊ, हेली ! हरवल झांक।
—नाथूसिंह महियारिया

६. सिंह की गंध से ही हाथी और गैंडों का घबराना।[1]
७. सेना के चलने से पृथ्वी का लचकना और शेषनाग का घबराना।[2]
८. योगिनियों का युद्ध में आकर रक्त-पान करना।[3]
९. लाश पर गिद्ध-चील आदि मांस-पक्षियों का मंडराना।[4]

१—क. गज-गैंडा धीर न धरै, वज्र पड़ै वघ-वाव ॥१६॥

—सूर्यमल्ल

ख. बाघां रा वधवाव सूं, झिलै अंगजी झाड़।

—बांकीदास

२—क. नाग ! द्रमंका की पड़े ? नागण ! धर मचकाय।
इण रा भोगणहार जे, आज भिड़ाणा आय ॥१६५॥

—सूर्यमल्ल

ख. १. हैकंप उर नागेन्द्र हुव चक च्यारूँ चढ़ि चाक।
२. कसमस्सै कौरम्म सेस नागेन्द्र सळस्सळि।
सात समंद गिरि आठ ताम धर मेर टळट्टाळि ॥

—खिड़िया जग्गा

३—क. १. जोगण ! पहली खाय पळ, , करै उतावल काय।
भर खप्पर वाल्है रुधिर, देसी कंत धपाय ॥१६७॥
२. काली ! फील-कड़ाह ले, की खप्पर नो हाथ ?
हेकै साथ धपाड़ही, मो वे दळ गज-मथ्थ ॥१६८॥

—सूर्यमल्ल

ख. १. चोटियाळी कूदै चौसठि चाचरि —सूर्यमल्ल
२. ऊंधा पत्र बुदबुद जल आकृति, तरि चालै जोगिणी तणा।

—वेलि क्रिसन रुक्मणी री

४—क. १. गीध कळेजो, चील्ह उर, कंकां अन्त विलाय ॥२४२॥
२. कंकाणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह ॥२४३॥

—सूर्यमल्ल

ख. १. ग्रीझणि दीयै दुड़बडी समळी चंपै सीस।
२. ग्रीझणियां रतनाळियां सिर बैठी सुहडांह —ईसरदास

ग. १. गळ पळ भरि हंसवर गयण हुवा त्रिपत ग्रिध हूर।
२. पळच्चर साकणि डाकणि प्रेत। खुधांवत भक्ख लियै रण खेत।

—खिड़िया जग्गा

१०. महादेव का मुंडमाला में वीरों का सिर पिरोने के लिए युद्ध-भूमि में पहुँचना।[1]

११. देवी देवताओं द्वारा स्वर्ग में वीर-वीरांगना का स्वागत करना।[2]

१२. वीर-पत्नियों द्वारा गजमोतियों की कंठमाला तथा हाथीदांत का चूड़ा धारण करना।[3]

१३. पराजित शत्रु का मुँह में तृण लेकर आत्म-समर्पण करना।[4]

[घ] सतसई में वीरत्व की व्यंजना

वीर काव्यों में चरित्र-नायक के व्यक्तित्व को विकसित होने का अवसर सामान्यतः युद्ध-वर्णन में ही मिलता है। जो वीर काव्य कथा-प्रधान होते हैं उनमें वस्तु-वर्णन की ओर कवि की प्रवृत्ति विशेष रमती है पर भाव-प्रधान वीर काव्यों में

१—क. ईस ! घणा जे आखता, तो लीजै सिर तोड़ ॥१६६॥ —सूर्यमल्ल

ख. १. कैलास सूं सिंघवाहिणी चंडी सहित ईसर विखभ चढ़ि आया।
२. हड़ाहड़ रिक्खि हुवै हर हार —खिड़िया जग्गा

ग. बळिहारी देवर तणी, सीस कियौ सिव भेट
—नाथूसिंह महियारिया

घ. नारद अक्खे नाहरां, अरधंग चावै अंग।
धर चावै धड़ धुबकणां रत चावै कवरंग॥
—मुकनसिंह : रंग रा दूहा

२—क. काळी करै वधावणो, सतियां आयो साथ।
हथलेवै जुड़ियो जिको, हमै न छूटै हाथ॥२५७॥
—सूर्यमल्ल

ख. तिणि वेळा गैब री आवाज आकासवाणी कहियौ। महाराज रैणसाह वधाई वधाई। अगनि सिनान करि सती पिणि आई। ब्रह्मा, त्रिसन, महेस, इंद्र, सुर साथे सुरत्रियां नूं कहियौ ज। महा सतियां सांम्ही जावौ। धमळ मंगळ पोहप वरिखा करि वधावौ।
—राठोड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका

३—१. पोत जणी में मोतियाँ, चूड़ो मैंगळ-दंत॥१०७॥
२. विण दामां विलसै सदा, दामां दुरलभ नाग।
न्याय भड़ां घर नारियां, चूड़ो-पोत सुहाग॥१०८॥
—सूर्यमल्ल

४—अरियां जे त्रण आपणा, मुख मुख लीधा माय॥२३६॥
—सूर्यमल्ल

वस्तु-वर्णन के लिए कम गुंजाइश रहती है। 'वीर सतसई' दूसरी कोटि की कृति है। इसमें प्रत्यक्षतः कोई कथा नहीं है न किसी विशिष्ट पात्र का ही चरित्रांकन किया गया है। यहाँ तो कवि ने वीररस का वातावरण उपस्थित कर प्रकृत वीर —युद्धवीर—का ही रूप खड़ा किया है।

अन्य प्रदेशों की अपेक्षा राजस्थान के डिंगल कवि युद्ध का वास्तविक वर्णन करने में अधिक सफल हुए हैं। इसका कारण यह है कि ये कवि वीरों के देश में पैदा हुए थे, वीरता के वायुमंडल में पले थे और स्वयं भी वीर होते थे। 'इसके विपरीत संस्कृत आदि के कवि रणांगण की कटाकटी से कोसों दूर किसी शांत वातावरण में रहते थे और सुनी-सुनायी बातों के आधार पर वीररस के चित्र अंकित करने की कोशिश करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अस्वाभाविक और अधूरे हुआ करते थे। कारण, उनकी अनुभूति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न होता था। अतएव योद्धा जिस समय शत्रु पर वार करता है, उसकी तलवार बिजली के समान दिखायी पड़ती है। वीरगण पहाड़ों की तरह डटे हुए हैं इत्यादि ऊपरी बातों का वर्णन तो उन्होंने किया और बहुत अच्छा किया पर वीर-वीरांगनाओं के हृदय के गंभीरतर भावों का विश्लेषण उनसे न हो सका। डिंगल के कवियों ने इन मनो-भावों को भी व्यक्त किया है।[१]

भावों के इस व्यक्तिकरण में सूर्यमल्ल को असाधारण सफलता मिली है। 'सतसई के क्षेत्र में प्रवेश करते ही हम न केवल शूरवीरों के प्रदेश में विचरण करने लगते हैं, किन्तु हमारे हृदय पर भी वीर भावना का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। इस प्रदेश में सती अग्नि-स्नान करती है, शूरवीर योद्धा रणांगण में अपने प्राणों की आहुति देकर सूर्यमंडल को भेदकर अप्सराओं का आशिक बनता है। सद्योजात शिशु नाल काटने की छुरी लेकर झपटता है, छोटा बालक यदि युद्ध से रोक दिया जाता है तो कलाई को चबाकर अपना रोष प्रकट करता है, वीर प्रसविनी माता को सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि पुत्र उसका दूध लज्जित न करे, वीरांगना की अन्यतम विशेषता यह है कि उसका पति उसके वलय को न लजादे।[२]

'वीर सतसई' में मारकाट, हाय-हत्या का विशेष वर्णन न होकर वीर स्वभाव तथा वीर-चेष्टाओं का ही मुख्य रूप से अंकन हुआ है। यहाँ कोई बाला कभी विधवा नहीं होती क्योंकि उसका सतीत्व उसका अमर सुहाग है। यहाँ का योद्धा धड़ गिर जाने तथा गिद्धों द्वारा आँतों के ले जाये जाने पर भी स्वामी के लिए लड़ता रहता है। यहाँ के वीर-हृदय में कभी प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व उत्पन्न होता ही

१—डॉ. मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीर रस, पृ० २५ (भूमिका)
२—वीर सतसई की भूमिका, पृ० ६६

नहीं। यहाँ के स्त्री-पुरुष प्रेम-पाश को छिन्न-भिन्न कर तुरन्त कर्तव्य-पथ पर बढ़ चलते हैं। यहाँ युद्ध-वर्णन के बीच नारी के नखशिख-निरूपण और मन में उठने वाली प्रेमिल भावनाओं का वर्णन न होकर पति के वीर व्यक्तित्व पर नारी का मुग्ध होना प्रदर्शित किया गया है। यहाँ नारी को विरह और पति की अनुपस्थिति में संतप्त होने का अवसर ही नहीं। यहाँ विरह में विलास नहीं, विसर्जन है, शारीरिक दौर्बल्य नहीं, आत्मिक तेजस्विता है, विक्षिप्त दशा नहीं, विवेकशीलता है। इसीलिए पति की अनुपस्थिति में भी वह सबला बनकर काम करती है। उसकी सक्रियता और अधिक बढ़ जाती है।

वीर-भावना के चित्रण के लिए आवश्यक तत्त्व है—पराक्रम, साहस, धैर्य, सहिष्णुता, दुर्दमनीयता, स्फूर्ति, उत्सर्गशीलता, दूरदर्शिता आदि। वीर के चरित्र में इच्छा और क्रिया की भावना प्रबल होती है। वीर का धर्म वीरता है। यदि वह वीरता के प्रदर्शन के स्थान पर उसके विषय में चिन्तन करता है तो वीरत्व समाप्त हो जाता है। सतसई के सम्पादकों ने ठीक ही लिखा है—"ऐश आराम के स्वप्न-जाल में लिप्त राजपूत जाति के अन्दर अपनी प्रेरणा से प्रबल इच्छा शक्ति उत्पन्न करके राजपूती वीर भावना को फिर से जागरूक करने का उत्तरदायित्व सूर्यमल्ल ने अपनी 'सतसई' में लिया है। फूट और संकुचित दायरे के कारण राजस्थान यद्यपि उस समय संघ-शक्ति नहीं बन सका तथापि सूर्यमल्ल ने इस संकोच और आपसी फूट को मिटाने का प्रयत्न करके वीरत्व को व्यापक स्फूर्ति दी।[१]

साहित्यदर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीर' लक्षण देकर वीररस को अन्य रसों में श्रेष्ठ माना है। उत्साह वीररस का स्थायी भाव है। वीर पुरुष आश्रय है, शत्रु आलम्बन है, यश आदि उद्दीपन हैं। दानवीर, दयावीर, धर्मवीर और युद्धवीरों में से 'सतसई' में युद्धवीर का ही विशेष वर्णन है। युद्धवीर का वीरत्व तीन प्रकार का हो सकता है—

१. लोकसाधक परार्थ घटक (उत्तम)
२. कोरा स्वार्थ घटक (मध्यम)
३. स्वार्थ साधक परार्थ विघटक (निकृष्ट)

'वीर सतसई' में जो वीरत्व की भावना है, वह प्रथम प्रकार की है। 'इळा न देणी आपणी' जैसी पंक्तियों में यही उच्चकोटि की वीर भावना व्यक्त हुई है।

'वीर के आन्तरिक स्वभाव और बाह्य कार्यपटुता दोनों के चित्रण में कवि को

१—वीर सतसई की भूमिका, पृ० ११२

पूर्ण सफलता मिली है। वास्तव में घटनाओं की जितनी विविधता और व्याप्ति युद्ध वीर में पाई जाती है, उतनी अन्य वीरों में नहीं। युद्ध वीर वह है जो अकेला और निशस्त्र होकर भी तथा कवच इत्यादि से हीन होते हुए भी शत्रुओं का मुकाबला करने में डरता न हो, जिसे रण में शस्त्रास्त्र के प्रहार में आनन्द आता हो, जो युद्धभूमि से न भागता हो, जो भयभीत को अभयदान देता हो और दुखी का दुःख दूर करता हो। युद्ध वीर का सच्चा चित्र खड़ा करते समय दो बातों का वर्णन आवश्यक होता है। एक योद्धा का और दूसरे उसके युद्ध-कौशल का। योद्धा के वर्णन में उसकी तेजस्विता, निडरता, प्रचण्डता, धीरता, भीषणता, प्रसन्नता आदि गुणों का उल्लेख किया जाता है तो युद्ध-कौशल में मारकाट, विनाश, हस्तलाघव आदि का वर्णन किया जाता है। वीररस का सफल चितेरा वह है जो योद्धा की अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी, दोनों प्रवृत्तियों का सामंजस्य कर सके। कहना न होगा कि युद्ध के दृश्यों का चुनाव, निरीक्षण की पूर्ण क्षमता, समाहार की पूरी शक्ति, प्रभावोत्पादकता तथा व्यापक दृष्टि आदि गुणों ने सूर्यमल्ल को पूर्ण सफलता प्रदान की है।

यहाँ युद्ध वीर की आन्तरिक एवं बाह्य मनोवृत्तियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आन्तरिक स्वभाव :

१. उल्लास :

क. ढोल सुणतां मंगळी, मूंछा भूंह चढन्त
ख. फूलंता रण कंत रै, कड़ी समाणी मत्थ

२. उत्साह :

बंब सुणायौ बींद नूं, पैसंतां घर आय।
चंचळ साम्है चालियौ, अंचळ बंध छुडाय॥

३. धैर्य :

तौ भी तोरण बींद तिम, धीरौ धीरौ नाह॥

४. कष्ट सहिष्णुता :

साम्है भालै फूटतौ, पूग उपाड़ै दंत।
हूं बळिहारी जैठ री, हाथी हाथ करंत॥

५. लापरवाही :

कांकड़ त्रंबक त्रहकिया, उठौ खुलियौ कोट।
सुणतां नाहर आळसी, सूतौ बदल करौट॥

६. दुर्दमनीयता :

नागण जाया चीटला, सींहण जाया साव।
राणी जाया नहं रुकै, सो कुळवाट सुभाव।।

७. आतंक :

पग पाछा छाती धड़क, कालौ पीलौ दीह।
नैण मिचै साम्हौ सुणै कवण हकाळै सीह।।

८. रोब :

गीध कलेजो, चील्ह उर, कंका अंत बिलाय।
तौ भी सौ धक कंत री, मूंछा भूंह मिळाय।।

९. स्पर्धा :

बधाबधी निज खावणौ, सो डाकी सरदार

बाह्य कार्यपटुता :

१. हस्तलाघव और त्वरा :

क. चमठी खाली होवतां, नमटी चाली फौज।
ख. हेला की अचरज कहूँ, कंत परा बळिहार।
घर में देखूं दोय कर, रण में दोय हजार।।
ग. कै दीठौ हय आवतो, कै दीठौ पर फौज।
हेली कवण सिखावियौ, उडणौ उडणौ ओज।।

२. युद्ध-कौशल :

क. देख सखी होली रमै, फौजां में धव एक।
सागर मन्दर सारखौ, डोहै अनड़ अनेक।।
ख. पीव परूसै पांत में, भूलै केम दुभांत।

३. चापल्य :

और चढे गढ ऊपरां, नीसरणी बळ नीठ।
अजको धव पूगौ उठै, माकड़ मेल्हे पीठ।।

४. असाधारण कार्य-व्यापार :

मद प्याला जिम एकलौ, फौजां पीवत जाय।

५. मारकाट :

रूंस सहर री गामड़ै, आजे बणियौ ओट।
हाथाळै हण हाथियाँ, कीधा पंजर कोट।

सूर्यमल्ल ने वीर-भाव की व्यंजना के लिए विभिन्न प्रतीकों का सहारा लिया है। वीर-भावना के प्रमुख प्रतीक हैं—सूअर, सिंह, धवल और नाग। सूअर का राजस्थानी वीर साहित्य में विशेष महत्त्व है। यहाँ के राजघरानों में सूअर का शिकार करना अधिक प्रिय और दुष्कर माना जाता रहा है। उसकी डाढ़ें मजबूत होती हैं। वह निर्भीक होकर गोलियों की बौछार सहता हुआ भी सीधा चलता रहता है। यही निर्भीकता वीर पुरुष का गुण है।[1] इसीलिए सूर्यमल्ल ने स्थान-स्थान पर वीर को सूअर की उपमा दी है।[2] यथा—

क. तुंडां गज, फेटां तुरी, डाढां भड़ औझाड़।
हेकण कवळै घूंदिया, फौजां पाथर पाड़।।२२।।

ख. पूरा आकुळ पाठड़ा, भालां पड़तां भार।
हेकण कवळा बाहिरा, झाड़ां-झाडां डार।।२३।।

ग. सुहड़ा और सिकारसी, मन में या न समाय।
भाला ऊ गिड़ भांजसी, डाढ़ां प्रळय दिखाय।।२४।।

सिंह वीर की निर्भीकता, निश्चितता, आतंक और आत्म-विश्वास की भावना का प्रतीक है। वह अकेला संचरण किया करता है। उसके पंजे (हाथळ) में इतना अधिक बल होता है कि वह हाथी का मस्तक विदीर्ण कर देता है। उसका आतंक ही इतना जबर्दस्त होता है कि कोई उसके सामने सीधा जा ही नहीं सकता। सूर्यमल्ल ने सिंह के प्रतीक का प्रयोग कई स्थानों पर किया है, यथा—

१—राजस्थानी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कथा है 'डाढ़ाळो सूर'। इस कथा में वीरोचित कार्यों का आरोपण एक सूअर परिवार पर किया गया है। यह परिवार आबू की गिरि-कन्दराओं में रहता है। इसमें सूअरनी, सूअर और उनके पांच पुत्रों का युद्ध-वर्णन, उनकी निर्भीकता, स्वांतन्त्र्य प्रेम, प्रतिज्ञा-पालन, सतीत्व की सच्चाई, प्रगाढ़ प्रीति और वीर भावना का सुन्दर परिचय मिलता है। वीर पिता की वीर संतति के जाति-स्वभाव को बड़े कौशल के साथ प्रतीक-पद्धति से यहाँ अभिव्यक्त किया गया है।

२—बारहठ ईसरदान ने 'हालां झालां रा कुंडलिया' में वीर पुरुष के प्रतीक के रूप में 'सूअर' का प्रयोग इस प्रकार किया है—

क. हिरणां लांबी सींगड़ी, भाजण तणौ सभाव।
सूरां छोटी दांतळी, दै घण थट्टां घाव।।४०।।

ख. गैदंतौ पाड़ा खुरौ, आरण अचळ अघट्ट।
भूंडण जणै सु भूं भलौ, थोभै अरियां थट्ट।।४१।।

क. निधड़क सूतो केहरी, तो भी विमुहा पांव ।
गज-गैंडा धीर न धरै, वज्र पड़ै वघ-वाव[१] ॥१६॥

ख. पग पाछा, छाती धड़क, काळो-पीळो दीह ।
नैण मिचै साम्हो सुणे, कवण हकाळै सींह ?[२] ॥१७॥

ग. हेली ! घर-घर की हुवै, पूंचां छक पैगाम ?
हाथी हाथळ आहणै, नाहर जिण-रो नाम[३] ॥१८॥

घ. सीहां केहा देसड़ा, जेथ रहै सौ धाम[४] ॥१६॥

वृषभ संत काव्य में अकर्मण्यता का प्रतीक बनकर आया है पर वीर काव्य में वह सच्चे वीर सेवक का प्रतीक है। यहाँ इसे धवल कहा गया है। धवल का प्रयोग श्वेत वर्ण के बैल के लिए होता है।[५] उससे वीर पुरुष की स्वामिधर्म-निर्वाह के लिए उठाये जाने वाले दुर्वह भार एवं निर्विघ्न रूप से कार्य-सम्पन्न करने की क्षमता का बोध होता है। जिस प्रकार बैल, कितना भी पानी और कीचड़ क्यों न

१—बांकीदास ने सिंह की निर्भयता और उसके शरीर के गंध के प्रभाव की व्यंजना इस प्रकार की है—

क. सूतौ थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवंत।
बन कांठै मारग वहै, पग पग हौळ पड़ंत॥

ख. वन माझळ बघवाव सूं, दुरद बिसूकै डांण।
जेठ लुवां सूकंत जिम, निरजल देख निवांण॥

२—ईसरदास ने जसाजी को सिंह के रूप में उपमित कर उनके आतंक एवं प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है—

सादूळौ आपा समौ, बियौ न कोय गिणंत।
हाक बिडाणी किम सहै, घण गाजियै मरंत॥

३—ईसरदास ने भी इसी भाव को यों व्यक्त किया है—

केहरि मरूँ कळाइयाँ रूहिरज रत्तड़ियांह।
हेकणि हाथळ गै हणै, देत दुहत्त्था ज्याँह॥

४—बांकीदास ने इसी भाव की व्यंजना इस प्रकार की है—

सीहाँ देस विदेस सम, सीहाँ किसा उतन्त।
सीह जिकै वन संचरै, वो सीहांरौ वन्न॥

५—बांकीदास ने 'धवळ' को आधार बनाकर 'धवळ पचीसी' नामक ग्रंथ की रचना की है। इसमें ३४ दोहे हैं। इन दोहों में श्वेत वर्ण के बैल की उपयोगिता, उसके महत्त्व एवं गुणों का कथन किया गया है।

हो, बिना बाधा के अग्रसर होता है, उसी प्रकार वीर सेवक अपने स्वामी के हित के लिए सर्वत्र समान रूप से गतिमान रहता है। उसमें कुल-मर्यादा की रक्षा का सम्पूर्ण भार वहन करने की शक्ति होती है। उसके वंश को उजागर करने वाला पुत्र भी इसी भावना से उमंगित होकर कर्तव्यरत होता है। सूर्यमल्ल ने धवल-प्रतीक का प्रयोग इस प्रकार किया है—

क. धवळ पयंपै रे धणी ! की दुमणो घण भार ?
ओड़े घर-रो आवगो, करूँ पहाड़ां पार ।।२६।।

ख. धुर सूनी, मरियो धवळ, सकट हचक्का खाय।
तिण-रो वाल्हो वाछड़ो, तंडै खंध लगाय[1] ।।२७।।

नाग भी वीरता का प्रतीक माना गया है। उसको छेड़ते ही वह पीछे पड़ जाता है और छेड़ने वाले का प्राण लेकर ही रहता है। प्रतिशोध लेने की भावना जिस वीर में होती है, वह प्रायः नाग से उपमित किया जाता है। सूर्यमल्ल का प्रयोग देखिए—

बांबी भीतर पौढ़ियो, काळो दबकै काय ?
पूंगी ऊपर पाधरो, आवै भोग उठाय ।।२५।।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि ने वीर भावना के इन प्रतीकों को इस ढंग से अपनाया है कि वीरत्व की व्यंजना अधिक मार्मिक और प्रभावक बन गयी है।

'वीर सतसई' में वीरता की सार्वजनीन एवं सार्वकालिक भावना का वर्णन हुआ है। यह मुक्तक काव्य है, इसलिए इसमें कवि के प्रबन्ध काव्य 'वंश भास्कर' में चित्रित युद्ध-जन्य मारकाट, कोलाहल, शूरवीरों की मुठभेड़, योद्धाओं की पारस्परिक ललकार, सेना-प्रयाण की हलचल आदि का विशद वर्णन नहीं है। इसकी आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि 'वीर सतसई' वस्तु-प्रधान रचना नहीं है। यह भाव-प्रधान रचना है। तीन सौ से भी कम दोहों में सतसईकार ने जो वीरत्व के रूप की प्रतिष्ठा की है वह कवि-कर्म की चिर प्रशस्ति है। कवि का 'वंश भास्कर' यदि एक विस्तृत अरण्य है तो 'वीर सतसई' एक सुरम्य वनस्थली। 'वंश भास्कर' पाठक को आतंकित करता है तो 'सतसई' संतुष्ट करती है। डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने सूर्यमल्ल और भूषण की तुलना करते हुए लिखा है—वीररस का जैसा भावानुरंजित और पूरअसर वर्णन सूर्यमल्ल ने किया है वैसा

१—ईसरदास ने इस प्रतीक का प्रयोग इस प्रकार किया है—

सींगाळौ अवखल्लणौ, जिण कुळ हेक न थाय।
जास पुराणी वाड़ जिम, जिण जिण मत्थै पाय ।।

हिन्दी के किसी दूसरे कवि की रचना में देखने को नहीं मिला—कहाँ सूर्यमल्ल, कहाँ भूषण ! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। वीर-वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों का विश्लेषण और काव्यमय निरूपण भूषण की कविता में कहाँ ? जिसके दर्शन सूर्यमल्ल की रचना में पग-पग पर होते हैं। सच तो यह है कि सूर्यमल्ल की स्वभावसिद्ध स्वर-लहरी के सामने भूषण के वागाडम्बरपूर्ण कवित्त-सवैये प्राण-विहीन पंजर की तरह शुष्क और निर्जीव प्रतीत होते हैं।[1]

सक्षेप में कहा जा सकता है कि सूर्यमल्ल मिश्रण ने शताब्दियों से भक्ति या शृंगार के रंग में रँगी आ रही कविता की बाँसुरी के मधुर स्वर को रणभेरी का सिन्धु राग सुनाकर ओजस्वी व्यक्तित्व प्रदान किया। 'केवल चुम्बन और आलिंगन, रति और विलास, रोमांच और स्वेद, स्वकीया और परकीया' की कड़ियों से जकड़ी हुई कविता को विलास-भवन और लता-कुजों से बाहर लाकर प्रशस्त पथ पर खड़ा किया और अराजकता-जनित विलासिता की दैन्यभरी रात्रि में शक्ति, पुरुषार्थ और देशप्रेम की लौ जलाकर, वीरों को आदर्श के लिए मर-मिटने की प्रेरणा दी।[2]

[ङ] सतसई में चित्रित समाज और संस्कृति

'वीर सतसई' मुक्तक काव्य है। अतः इसमें समाज और संस्कृति का विशद एवं वैविध्यपूर्ण चित्रण नहीं मिलता जो सामान्यतः प्रबंधकाव्यों में परिलक्षित होता है। फिर भी इसके अध्ययन से तत्कालीन समाज विशेषकर राजपूती जीवन और संस्कृति का अच्छा परिचय मिलता है।

'वीर सतसई' समाज का दर्पण भी है और दीपक भी। दर्पण के रूप में समाज का यथार्थ चित्र सामने आया है। सदियों की पराधीनता के कारण भारतवर्ष के समाज का जो नैतिक पतन हुआ और उसके परिणाम-स्वरूप पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या, ऐंठ, दारिद्रय, आलस्य, विलासिता, फूट, अविश्वास आदि परिणाम सामने आये, उसके व्यंजनापूर्ण संकेत सतसई के दोहों में मिलते हैं। दीपक के रूप में वीर समाज का भव्य और प्रभावपूर्ण रूप प्रस्तुत किया गया है, ऐसा रूप जहाँ सभी वीर ही वीर हैं, क्या बालक, क्या युवा, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी प्रण-पालक, स्वाभि-

---

१—राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा

२—वीररस के अतिरिक्त सतसई में अन्य रसों के उदाहरण भी हैं, यथा—संयोग शृंगार (१०२), विप्रलम्भ शृंगार (११४, ११५), हास्य (२६६), अद्भुत (६५, १८०), वीभत्स (१६७, २४२, २४३), शृंगार-वीर (१३१), वीर-वात्सल्य (२५१)।

मानी, देश-रक्षक, स्वतंत्रता-प्रेमी, वचन के सच्चे, आन के पक्के, सहर्ष मृत्यु का वरण करने वाले शूरवीर योद्धा हैं।

मनमई का समाज वीर भावों से अनुप्रेरित और उच्च आदर्शों के लिए मर-मिटने वाला है। वहाँ वीरत्व का प्रसार परिवार के सभी सदस्यों में है। यहाँ की नारी दब्बू नहीं है, विलासिनी नहीं है। वह शक्ति, स्फूर्ति और प्रेरणा की देवी है। उसमें अपने व्यक्तित्व का तेज है। वह उपहार की वस्तु नहीं है। पुरुष के सुषुप्त चैतन्य को जागृत करने की क्षमता उसमें है। वह तप, त्याग और तेज में अपने अर्धाङ्ग से घटकर नहीं, बढ़कर है। यहाँ का पुरुष वीर, धीर और निर्भीक है। उसमें शत्रुओं से वैर लेने की बलवती स्पृहा है, मातृभूमि की रक्षा में मर-मिटने की अदम्य लालसा है और है जीवन-मूल्यों के प्रति समर्पित होने की उत्कट चाह।

वीरसतसई का समाज संयुक्त परिवार का समाज है। उसमें सास-बहू, देवरानी-जेठानी, ननद-भाभी, पिता-पुत्र, माँ-बेटी, स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धों की शौर्यपूर्ण मधुर व्यंजना हुई है।

सतसई का समाज, वीर-समाज होते हुए भी, एकदम निरापद नहीं है। विदेशी आक्रमणकारियों से तो वह आक्रान्त है ही, पर अपने ही देश के डाकुओं के आक्रमणों से भी वह सशंकित है। स्वतंत्रता के बाद भी राजस्थान—विशेषतः करौली, धौलपुर का इलाका—डाकुओं के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाया है। आये दिन डकैतियों के समाचार पढ़ने को मिलते-रहते हैं। इनका सामना करने की क्षमता 'वीर सतसई' के समाज में है। यहाँ की नारी में आक्रमणकारी शत्रु और डाकू को चेतावनी देने की निर्भीकता और साहस है। वह डाकुओं से स्पष्ट कहती है—इस घर पर आक्रमण करने को आना लोहे के चने चबाना है, यमराज को चिढ़ाकर आना है[1] उसकी मूंछें खींच लाना है, अपने ही शरीर में आग लगाना है।[2] अच्छा है, मृत्यु-मुख से बचकर अपने घर जाओ, वहाँ पार्वती की पूजा कराओ जिससे तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा चिरायु रहे।[3] यह न समझो

१—लोह-चिणां रे चावणै, दाँत-विहूणा थाय।
इण घर भोळा ! आवणो, जम री कूट कढाय ॥२१६॥

२—जम-री मूंछां ताणवो, अंग लगावो आग।
अेक न भोळां ! ऊबरो, जे खीजाणो जाग ॥२१७॥

३—नींदाणो गिण टेकलो, पुळो, न छेड़ो पीव।
जाय पुजावो पावई, चूड़ो धण चिर जीव ॥२१८॥

कि मेरा पति सोया हुआ है। वह पिटारे में बैठे काले नाग के समान है, उसे मत छेड़ो।[1]

तुम व्यर्थ ही मारे जाओगे। उसकी झोंपड़ी साधारण झोंपड़ी नहीं है। इसका एक तिनका भी वह अरबों रुपयों में बेचेगा।[2] बदले में तुम्हें अपने प्राण देने होंगे। कितना आत्म-विश्वास, और स्फुलिंगमयी ललकार !

आक्रमणकारी शत्रुओं और डाकुओं की पत्नियाँ भी इन वीर-वीरांगनाओं के साहस और तेज से परिचित हैं। वे अपने ही पतियों को चेतावनी देती हुई कहती हैं—हे प्रिय ! उन घरों पर आक्रमण मत करना जहाँ कटोरों में गलाया हुआ अफीम उछल रहा हो, हौजों में केशर का रंग घुला हुआ हो,[3] जहाँ बारी-बारी से बदले हुए घोड़े कसे जाते हों और स्त्रियाँ सती होने के लिए सदा नारियल अपने साथ रखती हों।[4] क्योंकि ऐसे घरों के स्वामी पर आक्रमण करने से मृत्यु निश्चित है।

यहाँ के वीर को जब कभी 'वाहर'[5] के ढोल का शब्द सुनाई देता है, सहायता को चल पड़ता है। सवेरा होते ही शत्रुओं ने गोधन को घेर लिया। वह वीर चल पड़ा उसे छुड़ाने।[6] उसने शत्रु को ललकारा—या तो डटकर मुकाबला कर

१—कंत न छेड़ो ठाकुरां ! काळो जाण करंड।
इण भोगी-रा जहर-थी, दूजो की जम-डंड ? ॥२१८॥

२—वालम आयां वेचसी, अड़बां रो त्रण हेक॥२२८॥

३—अमल कचोळां ऊझलै, होदां केसर-रंग।
पीव ! जिके घर जावतां, सीस न लीजै संग॥२१३॥

४—भीड़ै पळटाणा भिड़ज, नीड़ै धण नाळेर।
नाह ! इसा घर नूंतणा, आप घरां जळ दे'र॥२१४॥

५—डाकू आदि गाँव के गाय-बैल आदि को लेकर चले जाते हैं तब उनको छुड़ाने के लिए गाँव वाले चढ़कर पीछा करते हैं। इसे वाहर करना कहा जाता है। वाहर के लिए गाँव के लोगों को एकत्र करने के लिए ढोल बजाया जाता है।

६—फजरां चोपा घेरिया, धूळी अंबर धूंद।
कै धण माट विलोवसी, कै घट जासी खूंद॥२३१॥

नाथूसिंह महियारिया कृत 'वीर सतसई' में तो वीर योद्धा गायों की रक्षा में मर मिटा। गायें घर लौट आईं पर उनके खुर खून से रँगे हुए थे—

देवर रौ धड़ घूंदियौ, कै घूंदी पर सेन।
आवै भाभी आपणी, रंगी खुरियां धेन॥

या तलवार को फेंक दो।[१] शत्रु परास्त हुआ। उसने अपने मुख में तृण ले लिया। पर वीर योद्धा ने तृण को भी नहीं जाने दिया, उसे भी मुँह से निकलवा लिया।[२]

इस समाज में कायर के लिए कोई स्थान नहीं। वीरत्व ही सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतिमान है। यहाँ कायरों को चेतावनी दी गई है कि स्वामी के नमक का तिरस्कार करके भागो मत। मृत्यु के उपरान्त जब यम-यातना भोगोगे तब पता चलेगा कि तुमने कितना बुरा काम किया था।[३] यहाँ कायरों की खुलकर भर्त्सना भी की गई है। खाये हुए धन का बदला चुकाये बिना जो युद्धभूमि से मुड़ चलते हैं उन्हें कवि ने कुलटा-पुत्र, (वर्णसंकर—फरती-रा लीधा) कहा है।[४] माता ने उसे जन्मदात्री के दूध को लज्जित करने वाला कहा है।[५] पत्नी ने फटकारते हुए कहा कि 'मेरे लँहगे में घुसकर छिप जाइये,[६] मेरा वेष पहन लीजिए, शत्रु का कोई भरोसा नहीं, कहीं यहाँ (घर में) भी न आ पहुँचे। तुम युद्ध से भाग क्या आये, मैं तो विधवा ही हो गई। अब तुम्हारा और मेरा क्या सम्बन्ध?[७] मुझे अब सधवा के वेश अच्छे नहीं लगते। आधी बाँहों की चोली में अपने हाथ दिखाते हुए मुझे बड़ी लज्जा होती है।[८] मुझे अब चूड़ियों की भी जरूरत नहीं।' वह मनि-

---

१—कै पग मंडो ठाकरां। कै छंडो करवाळ ॥२३३॥

२—अरियां जे त्रण आपणा, मुख-मुख लीधा माय।
जाण न धव दीधा जिके, लीधा फेर पड़ाय ॥२३६॥

३—रखे पधारो रावतां! नमक धणी रो नाख।
जम-री पड़सी पास जद, ऊघड़सी तद आँख ॥२६२॥

४—फरती रा लीधा फिरै, धरती रा धन खाय ॥२६३॥

५—अेम न जाणी, आवसी, जामण-दूध लजाय ॥२६५॥

६—लहंगै मूझ लुकीजियै, वैरी रो न विसास ॥२६६॥

७—कंत भलां घर आविया, पहरीजै मो वेस।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजै भेंटेस ॥२६७॥

८—मो-नूं ओछे कंचुवै, हाथ दिखातां लाज ॥२६९॥

नाथूसिंह महियारिया कृत 'वीर सतसई' की पत्नी, अपने पति की कायरता के कारण इतनी दुर्बल हो गई है कि विवाह के समय की कंचुकी ढीली हो गई है—पिउ पडळारी कांचळी ढीली बांहड़ियांह।

हारिन[1], दर्जिन[2], रंगरेजिन[3], गांधिन[4], सुनारिन[5] आदि को माध्यम बनाकर अपने कायर-पति पर व्यंग्य-बाण छोड़कर अपनी सामाजिक स्थिति का बोध कराती है। 'कूड़ा', 'भूंडा', 'कुळ खोय' जैसे तिरस्कार सूचक विशेषणों का, कायर के लिए प्रयोग, न केवल नारी की जागरूकता का सूचक है वरन् सामाजिक मूल्यों का भी व्यंजक है।

१—क. मणिहारी जा री ! परी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवा कवण वणाव ॥२७२॥
—सूर्यमल्ल

ख. ले मणियारी चूड़लो, को ठाढ़ी 'ज कुनार।
अबे पुराणों फोड़स्यूं, रखूं न इण भरतार॥
—गाडण रामदयाल

२—क. दरजण ! लांबी आंगिया, आणीजै अब मूझ।
तव तोटै मोनूं दया, दूण सिवाई तूझ ॥२७३॥ —सूर्यमल्ल

ख. दरजण ओछी कंचु सो, ले जा थोड़ो लाभ।
दूण सिवाई देवस्यूं, सिल्यां लंबी सताब॥
—गाडण रामदयाल

३—क. झूरै इम रंगरेजणी, कूड़ा ठाकुर ! काय।
वसण सती धण रंगती, दीधी आस छुड़ाय ॥२७४॥ —सूर्यमल्ल

ख. रंगरेजणि रंग रा बस्त्र, क्यों ले खड़ी निकाम।
रंड साड़ो रंग ल्यावरी, कंत आवियो काम॥
—गाडण रामदयाल

४—क. गंधण कू की रे। गजब, भूंडा ! आगम भौण।
वळण कढ़ायो अतर धण, मुंहघो लेसी कोण ? ॥२७५॥ —सूर्यमल्ल

ख. नाक भुजा छाती नहीं, कायर पग्र चख कांन।
गंधग्राही बिण गंध को, गंधणि कंत न ग्यांन॥
—गाडण रामदयाल

५—क. सोनारी झूरै, कहै, रे ठाकुर कुळ-खोय।
मूझ घड़ोई-खोवणा, तूझ मड़ाई होय ॥२७६॥
—सूर्यमल्ल

ख. नग जड़िया घड़िया नवा, नोखा भूषण नारि।
आव तियां दे औरठै, सतियां काज सुनारि॥

इस समाज में स्वामी-सेवक के सम्बन्धों की मधुरता और उत्सर्गशीलता की भी अच्छी व्यंजना हुई है। स्वामी के लिए सेवक प्राणों को हथेली पर लेकर चलता है तो सेवक के लिए स्वामी के मन में स्नेह और वात्सल्य भाव है।

'वीर सतसई' के समाज में वीर भावों को उद्दीप्त करने वाले चारण, भाट और ढोलियों का अपना विशेष स्थान है। यह ठीक है कि नैतिक पतन के प्रवाह में ये लोग भी बह गये और सिन्धु राग अलाप कर युद्ध की प्रेरणा भरने के बजाय, ये रंग-महल के सुख-वर्धन में ही अपनी कला का कमाल दिखाने में कर्तव्य की इतिश्री समझने लगे।[1] कवि ने इन दोनों स्थितियों का संकेत किया है। इनकी वाणी में इतना बल है[2] कि वे मुर्दों में जान फूँक देते हैं और कायरों को वचनों के चाबुक से ही काट डालते हैं। कवि उन्हें अपने कर्तव्य की याद दिलाकर प्रेरित करता है कि वे युद्ध में चलकर अपनी ओजस्वी वाणी से वीरों को प्रोत्साहित करें।[3]

'वीर सतसई' की इस सामाजिक भूमिका पर ही सांस्कृतिक परम्पराएँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ भारतीय संस्कृति—विशेषकर राजस्थानी लोक संस्कृति—का उज्ज्वल रूप सामने आया है। भारतीय जीवन में षोडस संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। इन संस्कारों में प्रमुख संस्कार हैं—जन्म, विवाह और मृत्यु। 'सतसई' में इन तीनों संस्कारों के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं।

१—क. आघा चारण खावकां, वीड़ी मौज वटंत ॥११॥
ख. आघा पड़वां ओळगण, जांगड़ जीमण जाग ॥१४॥

२—नाथूसिंह महियारिया ने चारणों की वाणी का महत्त्व इस प्रकार बतलाया है—

क. घण तोपां जागै नहीं, रीत सखी अद्‌भूत।
चारण वयणां जागसी, ऊंघांणा रजपूत ॥

ख. रिपु तोपां हालै नहीं, देख सखी घमसाण।
परदळ हालै काळजा, हलियां चारण-बाण ॥

३—क. रण हालीजै चारणां। चाहे अब लग चैन।
करै सुहड़ जिसड़ी कहो, विध सो दूर वणै न ॥१०॥

ख. भाट घणा दिन भाखता, कुळ भूला भू-कंत।
रहियां नेड़ै वीर ही. जाणां विरद जपंत ॥१३॥

ग. ढोलण ढोली-नूं कहै, पुळो उतांवळ मांह।
भीड़ै वाह दुवाह चर, भीड़ै नाह सनाह ॥१४॥

जन्म-संस्कार के सम्बन्ध में संकेत मिलता है कि पुत्र के जन्म होने पर थाल बजाया जाता है।[१] लोहे की छुरी से नाल काटा जाता है।[२] बालक को पालने में झुलाया जाता है।[३]

विवाह-संस्कार की कई रस्मों का भी पता चलता है। इस समाज में बहु-विवाह की प्रथा है। कई स्थलों पर सौतिया डाह के संकेत मिलते हैं। बरात में खूब गाना-बजाना होता है। तोरण बाँधा जाता है। तोरण के लिए जाते समय दूल्हा बड़ी धीमी चाल से चलता है।[४] वह सिर पर कलंगी बाँधे रहता है और शरीर में केशरिया वस्त्र धारण किये होता है। प्रीतिभोज होता है। गोठ होती है। उसमें सबको समान रूप से—बिना भेदभाव के—परोसा जाता है।[५] विवाह के समय चँवरी—विवाह-वेदिका—बनाई जाती है। उसमें दूल्हा-दुल्हिन बैठते हैं। हथलेवा जोड़ा जाता है।[६] दहेज देने की प्रथा है।[७] लड़की या बहिन के यहाँ पहरावनी (माहेरा) ले जाई जाती है। प्रथम मिलन का विशेष महत्त्व है।[८] यहाँ प्रथम-मिलन में पत्नी की लज्जा, संकोचशीलता, सौन्दर्य-लीला और पति की आतुरता, मिलनोत्कंठा आदि प्रेम-भावनाओं का वर्णन न होकर पति-पत्नी के उमड़ते हृदय की वीर भावनाओं को ही अभिव्यक्ति दी गई है। दूसरे दिन (गोरण दिन) के मिलन का भी संकेत मिलता है। पत्नी, पति की बाँह को तकिया बनाकर सोयी हुई है।[९] पति, पत्नी के पीन पयोधरों को दबाये हुए है।[१०] दोनों में अगाध प्रेम है। वे गलबाँहे डाले हैं।[११] पर सिन्धु राग सुनते ही बाहुपाश

१—हूं वळिहारी राणियाँ, थाळ बजाणै दीह ॥५६॥
२—नाळो वाढण-री छुरी, झपटै जणियो साव ॥५७॥
३—पूत सिखावै पालणै, मरण-बड़ाई माय ॥६१॥
४—तो भी तोरण-वींद तिम, धीरो-धीरो नाह ॥१४७॥
५—क. जाणै पीव परूसणो ॥१२६॥
ख. पीव परूसै पांत में, भूलै केम दुभांत ॥१७२॥
६—हथळेवै ही मुट्टि-किण, हाथ विलग्गा माय ॥१०२॥
७—यो ही मायड़ ! डायजो, दीजै सूवस वास ॥१०३॥
८—पहल मिले धण पूछियो, किण कीधा किण हथ्थ ?
बीजड़ साहे बोलियो, इण डाकण भू अथ्थ ॥१०६॥
९—गौरण दिन सूती सखी ! बागा ढोल विणास ।
बांह-उसीसो खींचियो, जागी पटक निसांस ॥१११॥
१०—नींदाळू ! अब छोड़णा, भीड़ाणा कुच पीन ॥१३१॥
११—मतवाळा दळ आविया, छोड़ीजै गळ-बांह ॥१३३॥

में समाया हुआ यह प्रिय इतना फूलता है कि कवच में भी नहीं समाता।[१] वीर और श्रृंगार रस का एक ही स्थल पर यह मिलन देखते ही बनता है।[२]

मृत्यु-संस्कार की गौरवानुभूति सर्वाधिक प्रिय और आकर्षक है। मृत्यु, अमरता की भूमिका है, जीवन की चिर निधि है। उसके वरण में प्रसन्नता है, दाहकता नहीं; प्रफुल्लता है, दग्धता नहीं। वीरता के साथ ही उसका सामना किया जा सकता है। जीवन में केवल एक बार ही मृत्यु का आस्वादन किया जा सकता है।[३] 'वीर सतसई' के वीर पुरुषों की मृत्यु की सार्थकता स्वामि-भक्ति, देश-रक्षा, प्रण-पालन और शूरधर्म के निर्वाह में है। यहाँ की नारी सतीत्व की रक्षा के लिए ज्वाला का श्रृंगार करती है। वह हँसते हुए मृत्यु का आलिंगन करती है। जब वह देखती है कि उसका वीर पति राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ गया तब वह सोलह श्रृंगार कर उसके साथ चिता पर चढ़ बैठती है। उसने नाइन से अपने पैरों में महावर लगवाया है, मणिहारिन से नया चूड़ा पहना है, रंगरेजिन से बढ़िया वस्त्र रँगवाया है, गंधिन से सुगंधित बहुमूल्य इत्र मँगवाया है, सुनारिन से कीमती आभूषण गढ़वाया है और नारियल तो उसने विवाह के दिन से ही सहेज कर रखा है। ढोल बजने लगा है, सब लोग एकत्र हो रहे हैं। वह नारियल उछालती हुई आगे-आगे चली जा रही है। पति का शव पीछे-पीछे चला आ रहा है।[४] उसने पति के शव को गोद में ले लिया है। ज्वालाएँ आकाश को छू रही हैं। दोनों स्वर्ग में पहुँच गये हैं। देव-देवांगनाओं ने इनका अभिनंदन कर आरती उतारी है।[५] कितनी गौरवपूर्ण मृत्यु है यह, कितना उत्साह भरा स्वागत है यह, और कितनी हृदय भरी विदाई है यह !

१—हूं हेली । अचरज कहूं, घर में बाथ समाय।
हाको सुणतां हूलसै, मरणो कोच न माय ॥१४०॥

२—आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सोमनाथ महालय' में इस सम्बन्ध में एक स्थल पर लिखा है—शौर्य को प्यार की शाश्वत भूख रहती है। वास्तव में रस की दृष्टि से देखा जाए तो वीर और श्रृंगार एक ही स्थान पर संघात खाता है। वह केन्द्र है 'पौरुष।'

३—Cowards die many a time before their deaths. The valiant never taste of death but once.—Shakespeare.

४—हूं पाछै, आगै हुवे, आणी नाह घरेह।
जे वाल्ही धण जीव-हूँ, आगै मूझ करेह ॥२५०॥

५—काळी करे वधावणौ, सतियाँ आयो साथ।
हथलेवै जुड़ियो जिको, हमैं न छूटै हाथ ॥२५७॥

यदि पति कायर निकल गया तो वह उसके साथ सती नहीं होगी ।[1] वह उसका मुख भी नहीं देखना चाहेगी, पीहर चली जायेगी ।[2] यदि वह गर्भवती है तो भी सती नहीं होगी ।[3] अपने कुल-दीपक की रक्षा करेगी ।

उपर्युक्त तीन संस्कारों के अतिरिक्त युद्ध-प्रसंग से भी कई सांस्कृतिक तत्त्वों और रीति-रिवाजों का पता चलता है। युद्ध जीवन का सामान्य-क्रम है। उसके लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं। योद्धा जब युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तब अफीम-सेवन करता है, मदिरा-पान करता है। शत्रु के मिलने पर अफीम की मनुहार करता है। उससे इस प्रकार मिलता है जैसे बहुत दिन के बिछुड़े हुए दो मित्र मिले हों।[4] लगता है, युद्ध क्या है? घर पर आये हुए प्रिय पाहुन का स्वागत है। वीरों को प्रोत्साहित, उत्तेजित एवं एकत्र करने के लिए ढोल बजाया जाता है। चारण, भाट और ढोलियों द्वारा सिन्धुराग में दूहे कहे जाते हैं। स्वामिभक्त सेवक घोड़े को कसता है, वीर योद्धा कवच धारण करता है। हथियारों में तलवार, बाण, भाला, बन्दूक, तोप और ढाल का प्रयोग किया जाता है। सेना में पदाति सैनिकों के अतिरिक्त हाथी और घोड़ों का विशेष उल्लेख है।

युद्ध-प्रसंग में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ युद्ध का कारण कोई कन्या या स्त्री नहीं है। यहाँ युद्ध आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए लड़ा जाता है। कहीं मातृभूमि की रक्षा का सवाल है, कहीं परम्परागत प्रतिशोध लेने की भावना है, कहीं स्वामिभक्ति का अटल निर्वाह है, कहीं गोधन को बचाना है, कहीं डाकुओं से मुकाबला है और कहीं स्वतंत्रता व स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न है।

वीर योद्धाओं का इस समाज में बड़ा सम्मान है। आरती उतारकर उन्हें विदा दी जाती है और आरती उतारकर ही उनका स्वागत किया जाता है। गज-मोतियों से उनकी भुजाओं का पूजन किया जाता है। योद्धा ही नहीं उससे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ भी सम्मान और पूजा की अधिकारिणी हैं। वीर पत्नी घोड़े और नीम पर इसीलिए न्यौछावर होती है कि घोड़े ने अपने खुरों की टापों से शत्रुओं के झुंड को मारकर, स्वामी का धड़ गिरने से पूर्व ही, टुकड़े-टुकड़े होकर

१—मो जणियो कायर थयो, बेटी बळण निवार ॥६८॥

२—वै दिन जो कायर वणो, पीहर भेजो पीव ॥७६॥

३—चित में खटकै मास चव, कुळटा सोक कुसंग ॥२५२॥

४—प्यारा मिलिया पाहुणा, मिजमानी री बार।

युद्धभूमि में अपना प्राणान्त कर दिया है[1] और नीम ने उसके पति के घावों को अच्छा करके उसके जाते हुए सुहाग को फिर लौटा दिया है।[2]

राजनीतिक दृष्टि से 'सतसई' का समाज संगठित समाज नहीं है। वहाँ स्वेच्छारिता, विलासिता और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की प्रवृत्ति प्रधान है।[3] यही कारण है कि 'वीर सतसई' में आपस के बैर निकालने की भावना का स्थल-स्थल पर निर्देश और उसकी प्रशंसा की गई है, परन्तु संपूर्ण वीर सतसई में एक भी दोहा ऐसा नहीं है जिसमें पारस्परिक वैमनस्य को भुलाकर देशव्यापी संगठन करके विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए जोरदार अपील हो।[4] यह ठीक है कि सूर्यमल्ल जी इस प्रकार की देशव्यापी एकता के बल से विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के पक्षपाती थे पर जिस परिस्थिति में वे थे, उस परिस्थिति में शासकों के विरुद्ध कदाचित खुल्लमखुल्ला इस प्रकार के उद्गार प्रकट करना, उनके लिए संभव न था। यही कारण है कि ऐसे भाव सतसई में व्यंग्य का आश्रय लेकर ही, यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुए हैं।

आर्थिक दृष्टि से भी यह समाज विशेष समृद्ध प्रतीत नहीं होता। ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने व्यापारिक हितों को सर्वोपरि महत्त्व देती थी। फलस्वरूप नमक और अफीम के व्यापार पर वह अपना एकाधिकार किये हुए थी। यहाँ तैयार किये गये नमक पर समुचित नमक-कर वसूल करने के लिए राजस्थान के चारों ओर के अंग्रेजी प्रदेश में चौकियों का घेरा डाल दिया गया, जिससे राजस्थान के इस लाभप्रद धंधे को गहरा धक्का लगा। 'वीर सतसई' में इस आर्थिक विपन्नता के संकेत कहीं-कहीं मिलते हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि वीर योद्धा के पास रहने के लिए आक और पलास के पत्तों का झोंपड़ा तक नहीं है।[5] वह जिस झोंपड़े में रहता है उसकी भीतें सरकंडों की बनी हुई हैं और उस पर घास छाया हुआ है।[6] स्त्री के पास आभूषण के नाम पर गले में पहनने के

१—नीला ! बळिहारी थयी, हण टापां खळ - झुंड।
पहली पड़ियो टूक ह्वै, खड़ै धणी-रै रुंड ॥२८५॥
महाराणा प्रताप का प्रसिद्ध घोड़ा चेतक इस आदर्श का श्रेष्ठ उदाहरण है।

२—हेली ! तिल-तिल कंत-रे, अंग विलग्गा खाग।
हूँ बळिहारी नींबड़ै, दीधो फेर सुहाग ॥२८७॥

३—इसके लिए सतसई के निर्माण की पृष्ठभूमि वाला अंश देखिए।

४—वीर सतसई की भूमिका, पृ० ८३

५—आक पळासा झूंपड़ो, देवै कीध न हंत ॥१०५॥

६—टोटै सरकां भींतड़ा, घाते ऊपर घास ॥१०६॥

लिए गजमोतियों की कंठमाला है और हाथ में पहनने के लिए हाथी दाँत का चूड़ा।

सतसई में चित्रित समाज ग्रामोद्योग प्रधान समाज है। लुहार, सिकलीगर, सुनार, रँगरेज, बढ़ई, दर्जी, गंधी, कलार, माली, मनिहार सभी अपना-अपना व्यवसाय करते हैं। सूअरों का शिकार किया जाता है। खेलों में गेंद खेलने का उल्लेख आया है। विधवा के लिए शृंगार करना निषिद्ध है। वह लम्बी बाँह की कंचुकी पहनती है। कमरबंद, अंगीठी, लंगर (पैरों में पहनने का गहना) नीसरणी, पूंगी, तांबूल आदि के नामोल्लेख भी यथा प्रसंग हुए हैं।

यह समाज धर्मप्रधान समाज रहा है। देवी-देवताओं की मनौती करना यहाँ का सामान्य विश्वास है। भूत-प्रेत और डायनों के प्रभाव से भी यह समाज मुक्त नहीं है। महादेव, योगिनी, चंडी, अप्सरा आदि के सम्बन्ध की मान्यता युद्ध-वर्णन के प्रसंग से स्पष्ट है। गणेश और सरस्वती का स्मरण प्रत्येक शुभ कार्य और काव्य-रचना के प्रारंभ में किया जाता रहा है। स्वर्ग, नरक, यमराज, आदि के उल्लेख भी यथा प्रसंग आये हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'सतसई' में चित्रित समाज और संस्कृति का रूप प्राणों में बिजली का आलोक और तूफान का वेग भरने वाला है। वह शक्ति का उत्प्रेरक और मूल्य-निष्ठा का जीवन्त स्वरूप है।

[च] सतसई का कला-विधान

यद्यपि सतसई भावप्रधान कृति है तथापि कलात्मक दृष्टि से भी यह भव्य और प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। इसके कला-विधान का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है—

१. शैलीगत २. भाषागत।

१. शैलीगत कला-विधान :

भावों को अधिकाधिक प्रभावोत्पादक और प्रेषणीय बनाने के लिए कवि सूर्यमल्ल ने सामान्य वीर कवियों की भाँति शब्दों को तोड़-मरोड़ कर, चमत्कारपूर्ण अतिशयमूलक अलंकारों का प्रयोग न कर, हृदय में उठते हुए उद्गारों को विशिष्ट शैलियों के माध्यम से अभिव्यक्त कर सहजता प्रदान की है। शैलियों के मुख्य प्रकार ये हैं—

क. सम्बोधन शैली

ख. प्रश्नोत्तर शैली

ग. सूक्ति शैली

घ. नाटकीय शैली
ङ. चित्र शैली

(क) सम्बोधन शैली :

सतसई के अधिकांश दोहे सम्बोधन शैली में ही लिखे गये हैं। सर्वाधिक दोहे वीर पत्नी द्वारा दूसरों को सम्बोधन करके कहे गये हैं। कवि ने भी प्रेरणा-रूप में कुछ दोहे इस शैली में कहे हैं। इस शैली के दूहों को अध्ययन की दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. वीर पत्नी द्वारा सम्बोधन

१. पति के प्रति : ७१-७६, ११४, १२८-१३४, १४६, २१३-२१४, २३८, २५०, २५८, २६०।
२. नायन के प्रति : ७७
३. कलालिन के प्रति : ११२
४. नकीब के प्रति : ११७
५. चकवी के प्रति : ११९
६. लुहारिन के प्रति : १४५
७. कंकनी के प्रति : १६६
८. योगिनी के प्रति : १६७, १६८
९. महादेव के प्रति : १६९
१०. सिकलीगरनी के प्रति : १८१
११. चील के प्रति : २४१
१२. घोड़े के प्रति : २८३-२८६
१३. सास के प्रति : १९७
१४. ननद के प्रति : १९८
१५. पथिक के प्रति : २१०
१६. सरदारों (शत्रुओं) के प्रति : २१५-२२३
१७. डाकुओं के प्रति : २२४-२३०
१८. अप्सरा के प्रति : २६१
१९. कायर पति के प्रति : २६६-२७१
२०. मनिहारिन के प्रति : २७२
२१. दर्जिन के प्रति : २७३
२२. रंगरेजिन के प्रति : २७४
२३. गांधिन के प्रति : २७५
२४. मनारिन के प्रति : २७६

२. कायर पत्नी द्वारा ईश्वर के प्रति सम्बोधन : २८०-२८२

३. वीर माता द्वारा सम्बोधन :

    १. वीर पुत्र के प्रति : ६२, ६३

    २. कायर पुत्र के प्रति : २६५

    ३. पुत्र-वधू के प्रति : ६४, ६६, ६८

४. देवरानी द्वारा जेठानी के प्रति सम्बोधन : ८१-८३, १४८-१५०, १८६-१९६, २५१-२५३।

५. जेठानी द्वारा देवरानी के प्रति सम्बोधन : १३५, २३७, २५४

६. वीर पुत्री द्वारा माँ के प्रति सम्बोधन : १०२, १०३, १२१

७. सखी द्वारा सखी के प्रति सम्बोधन : १८, ४९, ५४-५९, ६५, ७०, ९८, १०७, ११०, १११, ११५, ११६, १२०, १२२-२७, १३७-४३, १४७, १५१-५७, १७०-८०, १८२-८५, १९९-२०६, २१२, २४५, २४८, २५६, २५९, २८७, २८८।

८. सतियों द्वारा ठकुरानियों के प्रति सम्बोधन : ५०-५२।

९. ढोलिन द्वारा ढोली के प्रति सम्बोधन : १५

१०. वीर पुरुष द्वारा सम्बोधन :

    १. शत्रुओं के प्रति : २३३, २३४

    २. दासों के प्रति : २३५

११. वीर पुत्र द्वारा माँ के प्रति सम्बोधन : ८७, ८८, २३६

१२. भतीजे द्वारा काका के प्रति सम्बोधन : ९६

१३. कवि द्वारा सम्बोधन :

    १. चारणों के प्रति : १०

    २. ढोलियों के प्रति : १४

    ३. वीरों के प्रति : २९

    ४. सरदारों के प्रति : ३४, ३७, १६० १६१, २०८, २०९

१४. धवळ (बैल) द्वारा स्वामी के प्रति सम्बोधन : २६

इन दोहों में कहीं आदर्शों के प्रति मर मिटने की प्रेरणा दी गई है, कहीं कर्तव्य-च्युत होने पर भर्त्सना की गई है और कहीं पथ-भ्रष्ट व्यक्तियों को चेतावनी देकर उन्हें अभीष्ट पथ पर चलते रहने की शक्ति प्रदान की गई है।

(ख) प्रश्नोत्तर शैली :

कथन में नाटकीयता, त्वरा और गतिशीलता लाने की दृष्टि से प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया गया है। इस शैली के चार रूप द्रष्टव्य हैं—

१. दोहे के पूर्वार्द्ध में प्रश्न और उत्तरार्द्ध में उत्तर :

१. अन्य स्त्रियों और सास के मध्य प्रश्नोत्तर (६७)

प्रश्न : आज घरे सासू ! कह, हरख अचाणक काय ?
उत्तर : बहू बळेवा हूलसे, पूत मरेवा जाय ।।

२. पति और पत्नी के मध्य प्रश्नोत्तर (१०६, २७७-७८)

क. प्रश्न : पहल मिले धण पूछियो, किण कीधा किण हथ्थ ?
उत्तर : बीजड़ साहे बोलियो, इण डाकण भू अथ्थ ।।

ख. प्रश्न : की घर आवे थे कियो ? हणियां बळती हाय।
उत्तर : धण ! थारै घण नेहड़े, लीधी वेग बुलाय ।।

ग. प्रश्न : धण पूछै, की जीवियां ? धणी ! न लग्गी धार।
उत्तर : थारां सोगन, थां बिना, सूनो मन संसार ।।

३. नाग और नागिन के मध्य प्रश्नोत्तर (१६५)

प्रश्न : नाग ! द्रमंका की पड़े ?
उत्तर : नागण ! धर मचकाय।
इण-रा भोगण हार जे,
आज भिड़ाण आय ।।

२. एक दोहे में प्रश्न और दूसरे दोहे में उत्तर :

प्रश्न : कुसुम-मौड़, केसर-वसण, नेह न देह लसाय।
भाभी ! कंत सकैक तो, ल्होड़ी सोक वसाय ।।२५३।।
उत्तर : देराणी ! कुळ ऊपजी, दो-ही पख विण दाग।
की मुख ल्होड़ी सोक-रो, थारो लियण सुहाग ।।२५४।।

३. दो दोहों में प्रश्न और एक दोहे में उत्तर :

प्रश्न : रण हालीजै चारणां ! चाहे अब लग चैन।
करै सुहड़ जिसड़ी कहो, विध सो दूर वणै न ।।१०।।
आघा चारण खावकां, वीड़ी मौज वटंत।
दूरा केम दकाळणा, हूंचकतां भड़ हंत ।।११।।
उत्तर : भोळा की चहरो भड़ां ! ईखो चारण अैण।
के-ही कढ़ता कायरां, वाढां चाबुक-वैण ।।१२।।

४. उदबोधन के साथ-साथ गर्भित प्रश्न तथा उत्तर :

औरां की फळ जागियां, लड़णो जाग लंकाळ।

(ग) सूक्ति शैली :

सूक्ति शब्द सु+उक्ति से मिलकर बना है। सूक्ति का अर्थ है सुन्दर और सत्य कथन, ऐसा कथन जो लोकसम्मत आदर्श वाक्य बन गया हो। तुलसी के 'रामचरितमानस' में पद-पद पर सूक्तियों के दर्शन होते हैं। 'वीर सतसई' में भी ऐसे अनेक कथन हैं जो सूक्ति बन गये हैं। प्रमुख सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. सीहां केहा देसड़ा, जेथ रहै सो धाम (१६)
२. आ घर-खेती ऊजळी (२८)
३. अठे सु-जस, प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय (२६)
४. विण माथै वाढै दळां (३१)
५. रसा कंवारी रावतां ! वीर तिको ही वींद (३७)
६. डाकी ठाकर-रो रिजक, ताखा-रो विख हेक (४२)
७. दमंगळ विण अ-पचो दियण (४३)
८. सूरां घर सूरी महळ, कायर कायर-गेह (५३)
९. इळा न देणी आप-री (६१)
१०. बळिहारी जिण देसड़ै, माथा मोल विकाय (७०)
११. बारह वरसां बाप-रो, लहै वैर लंकाळ (८५)
१२. अेथ घराणै सिंघणी, कंवर जणै सो काळ (६०)
१३. वारीजै भड़-झूंपड़ां, अधिपतियां आवास (१०६)
१४. दमंगळ विण दुमनो रहै (१३८)
१५. जात पिछाणै जात री (२२५)
१६. रावत-जायी डीकरी, सदा सुहागण होय (२५५)
१७. उरसां खेती, बीज धर, रजवट उळटी राह (२५६)
१८. फरती-रा लीधा फिरै, धरती रा धन खाय (२६३)
१९. पींव मुवा घर आविया, विधवा कवण वणाव (२७२)

(घ) नाटकीय शैली :

तीव्र कार्य-व्यापार की अभिव्यक्ति और प्रभावान्विति के लिए नाटकीय शैली का प्रयोग किया गया है। इस शैली में लिखे गये दोहों में एक विशेष प्रकार की रवानगी और स्फूर्ति के दर्शन होते हैं। वीर पत्नी के साहस, दृढ़ निश्चय और आक्रोश की मिली-जुली अनुभूति की यह नाटकीय त्वरा देखिए—

विण मरियां, विण जीतियां, जे धव आवै धाम।
पग-पग चूड़ी पाछटूं, तो रावत री जाम ॥७८॥

और यदि पति कायर निकल गया तो फिर उसके साहस और पराक्रम का [illegible] पति को छिपाना, पति के वस्त्र स्वयं पहनना,

हाथ में तलवार लेना, किवाड़ खोलकर बाहर निकलना, डटकर शत्रुओं (डाकुओं) से सामना करना और विजयी होना। कितने कार्य-व्यापार हैं ? पर इस वीर ललना ने जैसे सब एक ही क्षण में कर डाले हों—

भागो कंत लुकाय धण, ले खग आतां धाड़।
पहर धणी-चा पूगरण, जीती खोल किंवाड़॥८०॥

वीर योद्धा भी कम नहीं है। जब सामने जाकर खड़ा होता है तो साक्षात् काल लगता है। उसकी ललकार के दो ही परिणाम निकल सकते हैं या तो शत्रु डटकर मुकाबला करे या शस्त्र-समर्पण—

पूगो नीठ पिछाणियो ! किसूं बुलायो काळ।
कै पग मंडो ठाकरां ! कै छंडो करवाळ॥२३३॥

(ङ) चित्र-शैली :

सतसईकार ने शब्दों और प्रतीकों के माध्यम से ऐसी चित्र-सृष्टि खड़ी की है कि वातावरण बोल उठता है, वीर-भाव तरंगित हो उठता है और हृदय नाचने लगता है। कई प्रकार के दृश्य और बिम्ब उभर कर सामने आने लगते हैं। वीर पति ने हाथियों को मारकर उनके अस्थिपंजरों की चहारदीवारी सी बना दी है। आज गाँव के चारों ओर शहर-कोट बन गई है—

रूंस सहर री गामड़े, आजे वणियो ओट।
हाथाळै हण हाथियां, कीधा पंजर-कोट॥२००॥

वीर योद्धा की कलाई की बढ़ी हुई शक्ति ने शत्रु को पराजित कर दिया है। उसके नगाड़ों के पुट फूट गये हैं और झंडों के डंडे टूट गये हैं। नगाड़े और झंडे पृथ्वी पर पड़े हैं। कितना सहज पर विवश और सुनसान निरवलम्ब चित्र है यह—

फूटै पुड़ नौबत पड़ी, टूटै डंड निसाण॥२०३॥

और पति लड़ता-लड़ता युद्ध में मारा गया। मारा क्या गया वह रण-शय्या पर सो गया। कंकनी उसके चरणों को दबा रही है और गीधनी उसके सिर को। कितना भव्य और भयंकर चित्र है यह, कितनी गरिमामय रण और रंग-विधान की कल्पना है यह ?

कंकाणी चपै चरण, गीधाणी सिर गाह।
मो विण सूतो सेज-री, रीत न छंडै नाह॥२४३॥

युद्धरत हृदय की उमड़ती हुई प्रसन्नता को चित्रित करने के लिए सूर्यमल्ल ने बछड़े और घोड़े की जिस नृत्य-मुद्रा का सहारा लिया है, वह कवि की प्रतीकात्मक चित्र-पद्धति का सुन्दर निदर्शन है। यथा—

धुर सूनी, मरियो धवळ, सकट हचक्का खाय।
तिण-रो वाल्हो वाछड़ो, तंडै खंध लगाय ॥२७॥
जंग नगारां जाण रव, आण धगारां अंग।
तंग लियतां तंडियो, तो-नै रंग तुरंग ॥२८३॥

प्रेम-पाश को छिन्न-भिन्न कर कर्तव्य-पथ पर बढ़ने वाले वीर योद्धा का यह शब्द-चित्र तो देखते ही बनता है—

वंब सुणायो वींद-नूं, पैसंतां घर आय।
चंचळ साम्हो चालियो, अंचळ बंध छुड़ाय ॥१०४॥

'अंचळ बंध छुड़ाय' में जैसे गहरा रंग भर दिया हो।

२. भाषागत कला-विधान :

सतसई की भाषा उत्तरकालीन डिंगल है जो बोलचाल के अधिक निकट है। इसके व्याकरण और वर्त्तनी दोनों में आधुनिकता की छाप देखी जा सकती है। यहाँ वीर भावना के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें अलंकारों को जबरदस्ती ठूँसने का प्रयास नहीं दिखाई देता। शब्दों की आन्तरिक शक्ति की पहचान द्वारा ही प्रभाव उत्पन्न करने का लक्ष्य बराबर बना रहा है। यही कारण है कि यहाँ न तो शब्दों की अनावश्यक तोड़-मरोड़ है न अनुप्रासों की भारी भीड़। जो कुछ भी कलात्मकता है वह बाहरी कम, भीतरी अधिक है। भाषागत कला-विधान का अध्ययन मुख्यत: निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

क. शब्द-प्रयोग
ख. शब्द-शक्ति
ग. अलंकार-योजना
घ. मुहावरे

(क) शब्द-प्रयोग :

कवि अपनी कविता में जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उनके पीछे उसका जीवन-दर्शन और समूचा सांस्कृतिक संदर्भ जुड़ा रहता है। 'वीर सतसई' में ऐसे कई शब्दों की खोज की जा सकती है जिनसे राजस्थानी लोक संस्कृति और वीर-भावना का अर्थ सम्बन्ध रहा है। शब्द-प्रयोग की कलात्मक रुचि का सर्वाधिक प्रदर्शन कवि द्वारा प्रयुक्त विशेषणों और सांस्कृतिक शब्दावली में हुआ है।

प्रयुक्त विशेषणों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. वीर पुरुष :

२. कायर पुरुष :

३. शत्रु :

२. थे मनवारो **पाहुणां** (८३)
३. **भोळा** जाणे भूलिया (६०)
४. जाणै **बंदर** जाय (२०२)
५. **दड़ियां** जिम दोटाय (२०५)
६. कंत न छेड़ो **ठाकुरां** (२१८)
७. सुण - सुण **वीरा धाड़वी** (२२४)
८. चख-मग आतां **चोर** (२२४)
९. महलां **लूटण धाड़वी** (२२७)
१०. **गोलां** ! किम मांडो गजर (२३५)
११. जे **खळ** भग्गा, तो सखी ! (२४८)

४. वीर पत्नी :

१. तो **रावत री जाम** (७८)
२. सिंघण-जायी **सिंघणी** (७६)
३. **रावत-जायी डीकरी** (२५५)

राजस्थानी लोक संस्कृति को उजागर करने वाले कुछ विशिष्ट शब्द इस प्रकार व्यवहृत हुए हैं—

१. **बीड़ी** मौज वटंत (११)	=तांवूल
२. बांबी भीतर **पौढ़ियो** (२५)	=सोया हुआ
३. **धुर** सूनी, मरियो **धवळ** (२७)	=गाड़ी की धुरी, बैल
४. पग **लंगर** पाछा दियण (३०)	=पैरों का गहना विशेष
५. पूत सिखावै **पालणै** (६१)	=झूला
६. है **चड़ो** बळ तूझ (७४)	=हाथों में पहनने की चूड़ियाँ
७. नायण ! आज न **मांड पग** (७७)	=पैरों में मेंहदी मांडना (लगाना)
८. **गोठ** गया सब गेह-रा (७६)	=प्रीतिभोज
९. **मेड़ी** झाल बन्दूक (८३)	=अटारी
१०. नणद कनै नाळेर (८४)	=नारियल (सती होते समय आवश्यक उपक ण)
११. बाप गयो ले **माहेरो** (८६)	=लड़की या बहिन के यहाँ विवाह आदि के अवसर पर पहरावनी लेकर जाना
१२. काको **जात** कडूंब (८६)	=मनौती पूरी करने के लिए देव-स्थान की यात्रा

१३. **तोरण** जातां **वाहरू** (६८) =वाहर (गाय-बैल आदि को डाकुओं से छुड़ाने के लिए पीछा करना) के ढोल का शब्द

१४. **मोटे पड़वै** नींद (६८) =बड़ा शयनागार अर्थात् युद्ध-भूमि

१५. **चंवरी** में पीछाणियो (१००) =विवाह-वेदी

१६. **हथलेबै** ही मुट्ठि-**किण** (१०२) =पाणिग्रहण के समय सूखे हुए घाव का अवशिष्ट निशान

१७. यो ही मायड़ ! **डावजो** (१०३) =दहेज

१८. पीव **परूसै पाँत** में (१७२) =पंक्ति में बैठे हुए जीमने वालों को परोसना

१९. **डाकण** रै घर **डावड़ा** (२२१) =बच्चों को डाकिनी के घर भेजना

२०. फजरां **चौपा** घेरिया (२३१) =गायों का समूह

२१. कै धण **माट विलोवसी** (२३१) =मटके में दही मथना

२२. **फरती रा लोधा** फिरै (२६३) =कुलटा

२३. **तंग** लियंता तंडियो (२८३) =जीन कसने का तस्मा

शब्द-प्रयोग के अध्ययन में अनेकार्थक शब्दों के प्रयोग का विशेष महत्त्व होता है। अनेकार्थक शब्द वे शब्द होते हैं जिनके एक से अधिक विभिन्न अर्थ होते हैं। इनका उचित अर्थ विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं, शब्द-संगति और वाक्य-रचना द्वारा जाना जाता है। 'वीर सतसई' में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अनेकार्थक शब्द निम्नलिखित हैं—

१ **कोट** :

उठो, खुलियो **कोट** (१३४) =किले का द्वार

कीधा पंजर- **कोट** (२००) =चहारदीवारी

२. **पार** :

करूं पहाड़ां **पार** (२६) = उस पार

राजा आणै **पार-री** (३८) =दूसरों की, परायी

३. **बार** :

मिलण बलावै **बार** (१२८) =बाहर

२. हेली ! कवण सिखावियो, उडणो-उडणो ओज (१५०)
३. कढ़तो कै दीठो सखी ! मिळतो बाण समाण (१५१)
४. मंच अधूरै मावतो, आँख न मावै आज (१७५)
५. अजको धव पूगो उठै, मांकड़ मेल्हे पीठ (१७७)

ख. मन्थर गति :

१. तो भी तोरण-वींद तिम, धीरो-धीरो नाह (१४७)

श्रुति-ज्ञान :

१. पूंगी ऊपर पाधरो, आवै भोग उठाय (२५)
२. साथण ! ढोल सुहावणो, देणो मो सह-दाह (२५६)
३. जंग नगारां जाण रव, आण धगारां अंग (२८३)

(ख) शब्द शक्ति :

काव्य में लक्षणा और व्यंजना शक्ति का जिस अनुपात में प्रयोग किया जाता है उसी अनुपात में उसका कलात्मक मूल्य बढ़ जाता है। साधारण कवि अभिधा शक्ति का ही विशेष-प्रयोग करता है पर जिस कवि में असाधारण प्रतिभा और अप्रतिम कवित्व शक्ति होती है वह लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग कर मूर्द्धन्य कवियों में अपना स्थान बना लेता है। सूर्यमल्ल कृत 'वीर सतसई' की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण यह भी है कि इस कृति में लक्षणा और व्यंजना शक्ति का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। सोद्देश्य रचित होने पर भी यह कृति अपने काव्यगत मूल्यों को स्थिरता प्रदान किये हुए है, यह कवि कर्म की सबसे बड़ी सार्थकता है।

दोहे जैसे छोटे छन्द में कवि ने शब्दों की लाक्षणिक शक्ति को जिस कौशल से बाँधने का प्रयत्न किया है, वह कवि की अपार भाषा-क्षमता का अनूठा उदाहरण है। इस संदर्भ में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. जंपै **भड़खाणी** जठै (६) =युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा देने वाली
२. आ घर-खेती **ऊजळी** (२८) =यशस्वी
३. राजा **पग बांधै रसा** (३८) =भूमि को अधिकार में कर लेते हैं।
४. **चूड़ो** जिण दिन चाहसी (५१) =पतियों के प्राण
५. **मेटे कर कंडूय** (१३९) =खूब तलवार चलाना
६. **फौजां पीवत जाय** (१७१) =शत्रु-सेना को नष्ट कर रहा है

'वीर सतसई' में व्यंजना शक्ति (ध्वनि) के प्रसंग भी द्रष्टव्य हैं। यथा—

वस्तु से वस्तु की ध्वनि :

१. धीरपियां सूतो धणी, कुरळै चकवी ! काय ?
देखीजै मुख दीह-रै, सुख दो जाम सवाय । (११९)

यहाँ ध्वनि यह है कि वीर पति का युद्ध देखने के लिए सूर्य भगवान् दो पहर और ठहर जायेंगे।

२. कह पंथी ! जिण गाम धण, फाटक घर न जुड़ाय।
अब तो चूड़ो ऊबरै, सूर धणी समझाय। (२१०)

इस दोहे में यह ध्वनित है कि वीर अपना फाटक खुला रख कर भी निःशंक सोता है। उसके घर पर डाका डालने का साहस किसी में नहीं है।

३. पैला सुणिया पांच सै, घर में तीर हजार।
आधा किण सिर ओलसी, जे खिजसी जोधार। (१७९)

यहाँ वीर द्वारा बाण चलाने की अचूकता ध्वनित है।

४. भाभी ! कुळ-खेती विचै, भय न हुवै धव-भंग।
चित-में खटकै मास चव, कुळटा सोक कुसंग। (२५२)

इस उदाहरण से ध्वनित है कि पत्नी गर्भवती है। वह चार मास तक सती नहीं हो सकेगी।

वस्तु से अलंकार की ध्वनि :

१. और मुवा सुण ओहड़े, वरसां पांच विचाळ।
घर में मायड़ घातियो बटकै पूंचाँ बाळ। (८६)

यहाँ यह ध्वनित है कि बालक युद्ध में जाने के हठ-स्वरूप अपनी कलाइयों को मुँह से काट रहा है।

२. टोटै सरकां भींतड़ां, घाते ऊपर घास।
वारीजै भड़ झूंपड़ां, अधिपतियां आवास। (१०६)

यहाँ यह ध्वनित है कि वैभवसम्पन्न लोगों से वे साधारण जन अच्छे हैं जो देश की पराधीनता दूर करने के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगा रहे हैं।

रस से रस की ध्वनि :

१. बंब सुणायो वींद-नूं, पैसंतां घर आय।
चंचळ साम्हो चालियो, अंचळ-बंध छुड़ाय। (१०४)

यहाँ शृंगार रस से वीर रस ध्वनित है।

२. को हेली ! अचरज कहूँ, कंत धणी-रै काज ?
मंच अधूरै मावतो, आँख न मावै आज। (१७५)

यहाँ अद्भुत रस से वीर रस ध्वनित है।

(ग) अलंकार-योजना :

भाषा को सौन्दर्यमय और भावों को स्पष्ट तथा प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लक्ष्य से सामान्यतः अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। सतसईकार की दृष्टि अलंकारों पर नहीं टिकी है फिर भी इसमें लगभग ४० प्रकार के अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

शब्दालंकारों में वयणसगाई, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। अनुप्रास के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग अधिकांश दोहों में हुआ है।

वयणसगाई

वयणसगाई का प्रयोग चारणी काव्य में अनिवार्य माना गया है। इसमें चरण के प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की आवृत्ति अन्तिम शब्द के आदि, मध्य या अन्त में होती है। इसके अनेक भेदोपभेद होते हैं।[1] इसके प्रयोग से काव्य में रस का परिपोषण होता है [वयणसगाई वाळियां, पेखीजै रस-पोस (९)] पर सूर्यमल्ल मिश्रण ने वीर रस के काव्य में वयणसगाई का प्रयोग अनिवार्य नहीं माना है क्योंकि वीर रस की अग्नि के जाज्वल्यमान रंग में समस्त दोष दब जाते हैं—वीर-हुतासण बोळ में, दीसै हेक न दोस। फिर भी इस कृति में चार-पाँच दोहों को छोड़कर लगभग सभी दोहों में वयणसगाई का प्रयोग हुआ है। यथा—

१—वर्ण-सम्बन्ध के आधार पर वयणसगाई को तीन कोटियों में विभक्त किया गया है—

१. उत्तम : चरण के प्रथम और अन्तिम शब्दों के प्रथम वर्ण जब एक हों—

धीरपियां सूतो **ध**णी (११९)

२. मध्यम : असमान स्वर, स्वर और य, स्वर और व तथा य और व में जब वर्णगत संबंध घटित हो—

ईस धणा जे **आ**खता (१६९)

३. अधम : तवर्ग और टवर्ग, अल्पप्राण और महाप्राण में जब वर्णगत सम्बन्ध घटित हो—

टोटै सरकां भींत**ड़ा** (१०६)

उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त एक चतुर्थ भेद भी है जिसे असाधारण वयणसगाई कहा गया है। इसके दो प्रकार हैं—

१. जब वर्णगत सम्बन्ध चरण के प्रथम शब्द तथा उपान्त्य शब्द में घटित हो—

चारों चरणों में वयणसगाई :

वीकम **व**रसां **वी**तियाँ, **गु**ण चौ चंद **गु**णीस।
विसहर तिथि गुरु जेठ **व**दि, समय पलट्टी **सी**स (३)

तीन चरणों में वयणसगाई :

सत्तसई दोहामयी, **मी**सण सूरज**मा**ल।
जंपै भड़खाणी **ज**ठै, **सु**णे कायरा **सा**ल। (६)

दो चरणों में वयणसगाई :

सहणी सबरी हूँ **स**खी। **दो** उर उळटी **दा**ह।
दूध लजाणो पूत, तिम, वळय लजाणो नाह। (५४)

एक चरण में वयणसगाई :

नाग ! द्रमंका की पड़े ? नागण ! धर मचकाय।
इण रा भोगणहार जे, **आ**ज भिड़ाणा **आ**य (१६५)

वयणसगाई का अभाव :

१. थाळ वजंतां हे सखी ! दीठो नैण फुळाय।
वाजां रै सिर चेतणो, भ्रूणां कवण सिखाय। (५९)

२. आज घरै सासू ! कट्ट, हरख अचानक काय ?
वहू बळेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय। (६७)

दमंगळ विण **दु**मनो रहै (१३८)

२. जब वर्णगत सम्बन्ध चरण के द्वितीय तथा अन्तिम शब्द में घटित हो—

जे **ख**ळ भग्गा तो स**खी** (२४८)

धारण-विधि के आधार पर भी वयणसगाई के तीन भेद किये गये हैं—

१. आदि मेल : जब प्रथम शब्द के आदि वर्ण का सम्बन्ध चरणान्त के शब्द के आदि में हो—

मिलतां ऊतरिया **म**रद (१५८)

२. मध्य मेल : जब प्रथम शब्द के आदि वर्ण का सम्बन्ध चरणांत के शब्द के मध्य में हो—

रण हालीजै चा**र**णां (१०)

३. अन्त मेल : जब प्रथम शब्द के आदि वर्ण का सम्बन्ध चरणान्त शब्द के अन्त में हो—

सदा कहाऊँ दा**स** (१)

३. झूठे हाकै हुलसता, पीव वधाईदार।
जागो, सिव सांचो कियो, घूमै मैंगळ बार।(१३०)

४. लोहारी ! तो पीव-रा, वले न पूजूं हथ्थ।
फूलंतां रण कंत-रै, कड़ी समाणी मथ्थ।(१४५)

लाटानुप्रास : जब कोई शब्द दो या दो से अधिक बार आये, अर्थ प्रत्येक बार एक ही हो परन्तु अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो—

१. **भीड़ै** वाह दुवाह चर, **भीड़ै** नाह सनाह (१५)
२. सूरां घर सूरी महळ, **कायर कायर**-गेह (५३)

अन्य उदाहरण (३८, १८८)

यमक : जब कोई शब्द अनेक बार आये और अर्थ प्रत्येक बार भिन्न हो—

१. भीड़ै **वाह दुवाह** चर (१५)
२. **सीस** करै बग**सीस** (५५)
३. **किण** कीधा **किण** हथ्थ (१०६)
४. तो नै **रंग तुरंग** (२८३)

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिकरांकुर, काव्यलिंग, अपह्नुति, दीपक, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, अनुमान, विभावना, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, रूपकातिशयोक्ति, पर्यायोक्ति, अन्योक्ति, असंगति, प्रश्नोत्तर, समासोक्ति, सन्देह, भ्रांतिमान, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, निदर्शना, विषम, अधिक, उदात्त, प्रहर्षण आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ इनके कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

उपमा : इसमें किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाता है।

१. कंत ! विणट्ठा काच-सा (३५)
२. मो थण जहर समाण (६२)
३. छकियो लाखां छांगसी, खाती डाहळ खांत (११३)
४. देराणी ! द्रिग गीध-रा, जेठ-स्रवण सैंजोड़ (१३५)
५. तो भी तोरण-वींद तिम, धीरो धीरो नाह (१४७)
६. सोकरड़ां रा सिन्धु में, पूगो पवन प्रमाण (१४६)
७. सागर मंदर सारखो, डोहै अनड़ अनेक (१७०)
८. मद-प्यालां जिम अेकलो, फौजां पीवत जाय (१७१)
९. वेखीजे जिम बाप-रै, बेटां दो घर वंट (१८३)
१०. दड़ियां जिम दोटाय (२०५)
११. पैंतीसां पग घींसतो, आवै डूंगर-ओप (२०६)

उत्प्रेक्षा : जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाय।

१. जाणै सागर खीर-रै, मंदर रो अरड़ाट (१६४)
२. अेकण बाण उतारिया, जाण सिखंडी जाय (२०१)
३. कुंभकरण रा झाड़िया, जाणै बंदर जाय (२०२)

रूपक : जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु बना दिया जाय।

१. वीर-हुतासण वोळ में (६)
२. वाढां चाबुक-वैण (१२)
३. रसा कंवारी रावतां, वीर तिको ही वींद (३७)
४. घोड़ां घर ढालां पटळ, भालां थंभ वणाय (३६)
५. लखिया डूंगर लाज रा, सासू-उर न समाय (६६)
६. बांह-उसीसो खींचियो (१११)
७. अजको गहली रो कळस, बळती रो नाळेर (१५६)

परिकरांकुर : जब साभिप्राय विशेष (नाम) का प्रयोग किया जाय।

१. **गणवइ** ! गाऊं तूझ गुण (१)
२. **पूंचाळा** हेकण पखै, दळ में प्रबळ दरोळ (२४६)

काव्यलिग : जब कोई कथन किया जाय और उसका समर्थक हेतु (पुष्टि करने वाला कारण) भी साथ में कहा जाय।

१ डाकी ठाकर-रो रिजक, ताखा-रो विख हेक।
गहल मुवां ही ऊतरै, सुणिया सूर अनेक। (४२)
२. मैं तो विण सब हांसिया, उण भड़ अेक महेस।
काय दियै धण मेहणूं, हूं भड़-हूंत विसेस। (२७६)

अपह्नुति : जब उपमेय का निषेध करके उपमान का होना कहा जाय।

१. सीह न वाजो ठाकरां ! दीन गुजारो दीह।
हाथळ पाड़ै हाथियां, सो भड़ वाजै सीह। (३४)
२. नह डाकी अरि खावणो, आयां केवळ बार।
बधावधी निज खावणो, सो डाकी सरदार। (४१)

दीपक : जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत को एक ही धर्म से अन्वित किया जाय।

१. डाकी ठाकर सहणकर, डाकण डीठ चलाय।
मायड़ **खाय** दिखाय थण, धण पण वळय वताय। (४०)
२. नागण जाया चीटला, सिंघण जाया साव।
राणी-जाया **नह रुके**, सो कुळ-वाट सुभाव। (६०)

अतिशयोक्ति : जब कोई बात बहुत बढ़ा करके कही जाय।

१. तोपां धर दरजां पड़े, झड़ै गिरां सिर झाट। (१६४)

२. चिमठी खाली ह्वै जितै, निमठी चाली फौज (१७८)

अत्युक्ति : जब किसी वस्तु का लोकोत्तर वर्णन हो।

१. चँवरी मे पीछाणियो, कंवरी मरणो कंत (१००)

२. सुणतां हाको धव सखी, मूंछ भुंहारां छूय (१३६)

३. कंत सजंतां सौ गुणो, कड़ी वजंतां कोच (१४१)

४. घर में देखूं दोय कर, रण में होय हजार (१८०)

अनुमान : जब कार्य के लक्षणों को देखकर अलक्षित कार्य का होना भी समझ लिया जाय।

१. भाभी ! जांगड़ आपणा, छिपै न लाखां गान।
सूनै घर सिंधू थया, आपां रा मिजमान। (८१)

२. पीहर पूछै खोलणी, पेई भूखण केर।
हेड़वियां भाभी हँसी, नणद कनै नाळेर। (८४)

३. हथलेवे ही मुट्ठि-किण, हाथ विलग्गा माय !
लाखां वातां हेकलो, चूड़ो मो न लजाय। (१०२)

विभावना : जब कारण के न होने पर भी कार्य हो जाय।

१. विण माथै वाढ़े दळां (१७४)

दृष्टान्त : जब पहले एक बात कहकर फिर उससे मिलती-जुलती दूसरी बात पहली बात के उदाहरण के रूप में कही जाय। दोनों वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, अर्थात् दोनों का धर्म एक न हो पर एक जैसा—मिलता-जुलता—हो।

१. नहँ वीरा ? त्रण झूंपड़ै, धाड़ो एथ खटाय।
थावै दादुर-थाप री, काळा रै फण काय ? (२२६)

रूपकातिशयोक्ति : जब उपमेय का लोप करके केवल उपमान का कथन किया जाय और उसी से उपमेय का अर्थ लिया जाय।

१. सिंघण जायी सिंघणी, लीधी तेग उठाय (७६)

२. औरां की फळ जागियां, लड़णो जाग लंकाळ (१३२)

३. सुणतां नाहर आळसी, सूतो बदळ करोट (१३४)

पर्यायोक्ति : जब वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ लगभग वही हों पर वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ से अधिक सुन्दर हो। जब बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा-फिरा कर कहा जाय।

१. कह पंथी ! जिण गाम धण, फाटक घर न जुड़ाय।
अब तो चूड़ो ऊबरे, सूर घणी समझाय। (२१०)

२. कंत न छेड़ो ठाकुरां, काळो जाण करंड ।
इण भोगी-रा जहर-थी, दूजो की जमडंड । (२१८)

अन्योक्ति : (अप्रस्तुत प्रशंसा) जब अप्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ निकले।

१. जिन वन भूल न जावतां, गैंद गवय गिडराज।
तिण वन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज। (२०)

अन्य उदाहरण (१६-२७)

असंगति : जब साथ रहने वाली वस्तुओं को अलग-अलग स्थानों में कर दिया जाय।

१. उरसां खेती, बीज धर, रजवट उळटी राह (२५६)

सन्देह : जब सादृश्य के कारण एक वस्तु में अनेक वस्तुओं के होने की संभावना दिखाई पड़े और निश्चय न हो।

१. आँख हिये कै सीस ? (१७४)

भ्रांतिमान : जब सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम हो, अर्थात् जब उपमेय को भूल से उपमान समझ लिया जाय।

१. कुच-भोळै गज-कुंभ नूं, नाहर भीड़ै नाह (२४४)

व्यतिरेक : जब उपमेय को उपमान से किसी बात में बढ़कर बताया जाय।

१. और चढै गढ़ ऊपरां, नीसरणी बळ नीठ।
अजको धव पूगो उठै, माँकड़ मेल्हे पीठ। (१७७)

विशेषोक्ति : जब कारण के होने पर भी कार्य न हो।

१. घर घर वैर विसाविया, दिन-दिन लूंबै धाड़।
हेली ! मो धव टेकलो, जड़ै न धाम किवाड़। (१२२)

व्याजस्तुति : जब निन्दा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निन्दा की जाय।

१. सूरां खोटो सूरपण, चूड़ां आव उतार।
हूं बळिहारी कायरां, सदा सुहागण नार। (२८२)

यहाँ स्तुति के बहाने निन्दा की गई है।

निदर्शना : जब दो कार्यों या दो वस्तुओं को, उनमें समानता सूचित करने के लिए एक बताया जाय।

१. लोह-चिणां रै चावणै, दांत-विहूणा थाय।
इण घर भोळां ! आवणो, जम री कूट कढाय। (२१६)

२. जम री मूंछां ताणबो, अंग लगावो आग।
अेक न भोळां ! ऊबरो, जे खीजाणो जाग। (२१७)

अधिक : जब आधार से छोटे आधेय को उस आधार से बड़ा बताया जाय। जब आधेय से बड़े आधार को उस आधेय से छोटा बताया जाय। (इसमें आधेय की बड़ाई पर जोर दिया जाता है।)

१. हूं हेली ! अचरच कहूँ, घर में बाथ समाय।
हाको सुणतां हूलसै, मरणो कौच न माय। (१४०)

२. आळस आणै अैस में, वपु ढीलै विकसंत।
सींधू सुणियां सौ गुणो, कवच न मावै कंत।(१४२)

३. मंच अधूरै मावतो, आँख न मावै आज (१७५)

उदात्त : जब संपत्ति का लोकोत्तर वर्णन हो (यह अत्युक्ति का ही एक रूप है)

१. पूजाणो गज मोतियाँ, मींडाणो कर मूझ।
वीजाणो घण चामरां, है चूड़ो बळ तूझ। (७४)

पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के निम्नलिखित अलंकार भी सतसई में प्रयुक्त हुए हैं—

ध्वन्यर्थ-व्यंजना (Onomatopoeia) : जब ऐसे शब्दों या वर्णों का प्रयोग किया जाय जो अपनी ध्वनि से ही वर्ण्यमान वस्तु या प्रसंग की ध्वनि का चित्र खड़ा कर दें।

१. कांकड़ त्रंबक त्रहकिया, ऊठो खुलियो कोट।
सुणतां नाहर आळसी, सूतो बदळ करोट। (१३४)

२. तोपां धर दरजां पड़े, झड़ै गिरां सिर झाट।
जाणै सागर खीर-रै, मंदर-रो अरड़ाट। (१६४)

मानवीकरण (Personification) : जब अ-मानव में मानव के गुणों का आरोप किया जाय।

१. गोळां ! किम मांडो गजर, होतां फजर हगाम।
नीठ हियां आया नजर, जाणो धजर दुजाम। (२३५)

कोमल कृत व्यंजना (Euphemism) जब किसी अप्रिय और कुरूप प्रसंग को रुचिकर एवं सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया जाय।

१. पोतां-रै बेटां थिया, घर में वधियो जाळ।
अब तो छोडो भागणो, कंत ! लुभायो काळ।(२७१)[1]

१—कवि ने प्रतीक-पद्धति का भी सहारा लिया है जिसका उल्लेख वीरत्व की व्यंजना के अन्तर्गत पृ० सं० १०८-११० पर किया जा चुका है।

(घ) मुहावरे :

मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रभावोत्पादक, प्रवाहपूर्ण, सरस और रोचक बन जाती है। उनसे विचारों की अभिव्यंजना में अधिक बल और शक्ति आ जाती है। भाषा में इनका वही स्थान है जो भोजन में नमक का होता है। इनके प्रयोग से सामाजिक जीवन और वस्तुओं की सम्मिलित अभिव्यक्ति होती है। सतसई में प्रयुक्त प्रमुख मुहावरे निम्नलिखित हैं—

१.	काळो-पीळो दीह (१७)	आँखों के सामने अंधेरा छा जाना
२.	दीठो नैण फुलाय (५६)	चकित होकर देखना
३.	वणी अचाणक आय (७६)	अचानक कोई घटना घटित होना
४.	मोटे पड़वै नींद (६८)	सदा के लिए सो जाना, मृत्यु प्राप्त होना
५.	मूंछां भूंह चढंत (१००)	क्रोधित होना
६.	चूड़ो मो न लजाय (१०२)	प्रतिष्ठा को धक्का न पहुँचाना
७.	जागो, सिव सांचो कियो (१३०)	युद्ध का हल्ला होना
८.	मेटे कर कंडूय (१३६)	खूब तलवार चलाना
९.	बड़ी-बड़ी विगसाय (१४३)	अत्यन्त प्रसन्न होना
१०.	हाथी हाथ करंत (१८६)	हाथियों से लड़ना
११.	अेको रंग-उतारणो (१८८)	परास्त करना, निस्तेज करना
१२.	मूंछ न तोड़ो कोट में (२०६)	अभिमान न करना
१३.	काळा-घर चेजो करै (२०६)	मौज मनाना
१४.	सो-रो विकसी सेर (२२६)	बहुत महँगा विकना
१५.	कै पग मंडो ठाकरां (२३३)	जमकर युद्ध करना
१६.	अरियां जे त्रण आपणा, मुख मुख लीधा माय (२३६)	दीन होकर अधीनता स्वीकार करना
१७.	नमक धणी-रो नाख (२६२)	स्वामी की नमकहरामी करना
१८.	मरदां नैण मिलाय (२६३)	सामना करना
१९.	नीचा करसी नैण (२६४)	लज्जित होना
२०.	जामण-दूध लजाय (२६५)	कलंकित करना

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'सतसई' में चाहे पृथ्वीराज कृत 'वेलि' जैसी कलात्मकता और कारीगरी का प्रदर्शन न हुआ हो फिर भी उसके दोहे, भावों की सहजानुभूति और स्वाभाविक कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण जन-जन की मानस-लहरी में हंस बनकर तैरते रहे हैं।

—नरेन्द्र भानावत

मंगलाचरण

१. गणेश-वंदना

: १ :

लाऊं प सिर लाज-हूं,
सदा कहाऊं दास
गणव्रइ ! गाऊं तूझ गुण,
पाऊं वीर-प्रकास

---

१. लाता हूं । चरणों में (पद) । सिर को । लज्जा से, मंकोच से । हूं= सू (समम्—सउं) । नित्य । कहलाता हूं । सेवक । हे गणपति । गाता हूं । तेरे, तुम्हारे (तुभ्यम्—तुज्भ) । गुण । मैं प्राप्त करूं । वीर रस के । प्रकाश को ।

---

१. हे गणेश ! मैं संकोच के साथ तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता हूं — तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूं । मैं सदा तुम्हारा सेवक कहलाता हूं । मैं तुम्हारे गुणों का गान करता हूं । तुम्हारी कृपा से मुझे वीर रस का प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त हो (क्योंकि मैं वीर-रस की रचना करना चाहता हू) ।

१. वयणसगाई । वृत्त्यनुप्रास । छेकानुप्रास ।

२. सरस्वती-वंदना

: २ :

आणो उर जाणो अतुळ
गाणी करण अ-गूढ
वाणी जग-राणो वळै
मैं चींताणी मूढ

प्रस्तावना

१ सामयिक परिस्थिति

: ३ :

वीकम वरसां वीतियां
गुण चौ चंद गुणीस

---

२. आनी, लाया। हृदय में। जानने वाली। अतोल, अपार। (ज्ञान) को। गायी। करनेवाली। स्पष्ट। सरस्वती, वाग्देवी। जगत् की रानी। फिर। मैंने। चिंतन किया। मूर्ख, अज्ञानी।

३. विक्रमादित्य के (विक्रम)। वर्षों के। बीतने पर (व्यतीत)। समझो, जानो (गण्)। चार (चतुर्-चउ)। चन्द्रमा=अेक। उन्नीस (अेकोनविंश, अेगूणवीस, ओगणीस, उगुणीस, गुणीस)। चौ चंद गुणीस= चार, अेक, उन्नीस=४११९=१९१४। नाग की तिथि=पंचमी (विषधर)। गुरुवार। ज्येष्ठ। बदि=बहुलदिवस, कृष्णपक्ष की तिथि। समय, जमाना (नारी-जातीय शब्द)। पलटी, बदली, पलटा खाया, उलट-फेर हुई। सिर पर, जनता के सिर पर (शीर्ष)।

---

२. अपार ज्ञान (को जानने) वाली वाग्देवी सरस्वती का मैंने हृदय में स्मरण किया, और समस्त विषयों को स्पष्ट करने वाली उस देवी के गुणों का गान किया। फिर अज्ञानी मैंने उस जगत् की रानी का चिन्तन (ध्यान) किया।

जाणी अतुळ–अन्यार्थ–उसे अपार महिमामयी पाया।

करण अगूढ–अन्यार्थ–विषय को स्पष्ट करने के लिए (उसकी महिमा का स्तवन किया)।

२. वयणसगाई। अन्त्यानुप्रास।

विसहर-तिथि गुरु जेठ बदि
समय पळट्टी सीस

: ४ :

इक-डंकी गिण अेक-रो
भूले कुळ - साभाव
सूरां आळस - अैस - में
अ-कज गमायी आव

---

४. अेकडंकी, अेकच्छत्र प्रभुता, अेकच्छत्र आधिपत्य। समझकर, जानकर, देखकर। अेक (शासक) की; अर्थात् अंग्रेजों की या अंग्रेज कंपनी की। भूलकर। कुल के स्वभाव को, क्षत्रिय-कुल के स्वभाव को, पराधीन नहीं होना यह क्षत्रिय-कुल का स्वभाव है। शूरों ने, वीरों ने (वीर क्षत्रियों ने)। आलस्य और अैशो-आराम में। व्यर्थ, बेकाम (अ+कार्य)। गँवा दी। आयु, जीवन।

---

३. सम्राट् विक्रमादित्य के १९१४ वर्ष बीत जाने पर, गुरुवार और जेठ बदि पंचमी तिथि को, जनता के सिर पर समय ने पलटा खाया; बड़ी उलट-पुलट हुई।

टि०—संवत् १९१४ विक्रमी=सन् १८५७ ईसवी। इस वर्ष भारतवर्ष में बड़ी भारी क्रान्ति हुई थी जिसे सिपाही-विद्रोह और स्वतंत्रता का युद्ध भी कहा गया है।

४. अेक शासक अर्थात् अंग्रेजी कंपनी का अेकच्छत्र आधिपत्य देखकर भारत के शूरवीर अपने कुल के स्वभाव को भूल गये और अंग्रेजों के पराधीन हो गये। उनने आलस्य और भोग-विलास में जीवन को व्यर्थ गँवा दिया।

: ५ :

इण वेळा रजपूत वै
राजस - गुण - रंजाट
सुमरण लग्गा वीर सब
वीरां - रो कुळ - वाट

२. सतसई और उसकी महिमा

: ६ :

सत्तसई दोहा - मयी
मीसण सूरजमाल

---

५. इस। वेला में, समय में। राजपूत, क्षत्रिय। वे। वीरता के गुण से रंगे हुअे। स्मरण करने लगे। वीर। सारे। वीरों के। कुल के मार्ग को, वंश-परंपरागत चलन को।

६. सतसई, सात सौ पद्यों का ग्रंथ (सं० सप्तशती)। दोहामय, दोहा छंद में बनी हुई। मीसण, चारणों की अेक शाखा का नाम है; मीसण शाखा का। सूरजमल, सूर्यमल्ल। कहता है (जल्प्–जंप), रचता है। वीरों को खानेवाली, वीरों को मौत के घाट उतारनेवाली, वीरों के प्राण लेनेवाली: जिसे सुनकर वीर वीरता से भर जायंगे और युद्ध में प्राण दे देंगे। जहां, जब =वहां, तब; उस समय, अैसे समय में। सुनने पर। कायरों के लिअे। शल्य, कांटा: कांटे की भांति चुभने वाली।

---

५. ऐसे इस समय में वे सब वीर क्षत्रिय, जो वीरता के गुण से रंगे हुअे थे, वीरों के कुल के मार्ग को याद करने लगे और पराधीनता के बन्धन को तोड़ फेंकने की तय्यारी करने लगे।

जंपै भड़ - खाणी जठै
सुणे कायरां साल

: ७ :

नथी रजोगुण ज्यां नरां,
ना पूरो ऊफाण
वे भी सुणतां ऊफणै
पूरा वीर प्रमाण

: ८ :

जे दो-ही पख ऊजळा,
जूझण पूरा जोध

---

७. नहीं है (सं० नास्ति)। रजोगुण, वीरता। जिन। मनुष्यों में। नहीं (है)। पूरा। उफान, वीरता-जनित जोश। वे भी। सुनते (ही), सुनने पर। उफनते हैं=उफनेंगे, उमड़ पड़ेंगे, जोश से भर जायंगे। पूरे। वीरों के। समान।

८. जो। दोनों ही पक्षों में (पितृपक्ष और मातृपक्ष)। उज्ज्वल, यशस्वी। (हैं)। जूझने में, युद्ध करने में। पूरे। योधा। (हैं)। सुनते (ही), सुनकर। वे। वीर (भट)। सौगुने। वीर रस, वीरत्व। प्रकाशित करने के लिअे। बोध को (भाव को)। (प्राप्त करेंगे)। प्रबुद्ध होंगे।

---

६. अैसे समय में मीसण सूरजमल दोहा छंद में रचित सात सौ पद्यों की सतसई नामक रचना ग्रंथ की करता है जो सुनने पर वीरों के प्राण लेने वाली है और कायरों को कांटे की भांति चुभने वाली है, जिसे सुनकर वीर युद्ध में प्राण दे देंगे और कायर लोग त्रस्त हो उठेंगे।

७. जिन मनुष्यों में वीरता नहीं है और न पूरा जोश है वे भी इसको पढ़ने पर पूरे वीरों के समान, न समाने वाले जोश से भर जायंगे।

सुणतां व्है भड़ सौगणा
वीर प्रकासण बोध

: ६ :

वयणसगाई वाळियां
पेखीजै रस - पोस
वीर - हुतासण - वोळ - में
दीसै हेक न दोस

---

६. वयणसगाई (को) । लाने से । देखा जाता है (सं० प्रेक्ष्) । रस का पोषण, रस की परिपुष्टि । वीर-रस रूपी अग्नि के रंग में । दिखायी पड़ता है (दृश्यते) । अेक (भी) । नहीं । दोष, दूषण, काव्य-दोष ।

वयणसगाई या बरणसगाई—यह अनुप्रास के समान अेक अलंकार है। इसमें पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द के आदि में जो वर्ण आता है वह उसके अन्तिम शब्द के आदि में भी आता है और यदि अन्तिम शब्द के आदि में नहीं आ पाता तो मध्य में या अन्त में कहीं-न-कहीं अवश्य आता है। वयणसगाई के अनेक भेदोपभेद होते हैं। चारणी काव्य में वैणसगाई का प्रयोग अनिवार्य माना गया है, उसके प्रयोग से काव्य में रस का परिपोषण होता है और सब दोष दब जाते हैं जैसा रघुनाथ-रूपक में कहा गया है—**वयणसगाई बेस मिल्यां सांच दोखण दटै** । पर इस वीर-सतसई काव्य में वैणसगाई का प्रयोग अनिवार्य रूप से नहीं किया गया है। न करने का कारण कवि इस पद्य में बताता है।

---

८. जो वीर पितृकुल और मातृकुल दोनों पक्षों से उज्ज्वल हैं—जिन वीरों के पितृकुल और मातृकुल ये दोनों पक्ष यशस्वी हैं—और जो युद्ध करने में पूरे वीर हैं, वे वीर तो इसे सुनकर सौगुना वीरत्व प्रकट करने का बोध प्राप्त करेंगे ।

६. देखा जाता है कि वैणसगाई का विन्यास करने से रस का पोषण होता है और सारे दोष दब जाते हैं पर वीर-रस की अग्नि के जाज्वल्यमान रंग में अेक भी दोष दिखायी नहीं पड़ सकता, अतः वीर रस के काव्य में वैणसगाई अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं ।

अन्वार्थ—वैणसगाई को जला देने पर भी रस का पोषण देखा जाता है क्योंकि वीररस की अग्नि की ज्वालाओं में अेक भी दोष बचा नहीं रह सकता ।

बंदीजन जातियाँ

१. चारण

: १० :

रण हालीजै चारणां !
चाहे अब लग चैन
करै सुहड़ जिसड़ी कहो,
विध सो दूर वणै न

: ११ :

आघा चारण खावकां
वीड़ी मौज वटंत
दूरा केम दकाळणा
हूंचकतां भड़ हंत !

---

१०. युद्ध में। चलिये। हे चारणों। देखे। अब तक। आराम। (करनी) करते हैं। वीर। जैसी। वैसी। वर्णन करो। विधि, कार्य। वह, यह। दूर से, दूर रहने से। बनती, बन सकती। नहीं।

११. आगे-आगे (रहते हैं) चारण। भोज्य और पेय पदार्थों की; या मजलिसों में। तांबूल की। मौज के, रीझ के। बँटते हुए, बाँटे जाते समय, वितरित किये जाते समय। दूर। कैसे। क्यों। ललकारने वाले, ललकार कर प्रोत्साहित करने वाले। हिचकते समय। वीरों के। अरे।

---

१०. हे चारणों ! अब युद्ध में चलो, अब तक आराम देख लिये। वीर जैसी करनी करें वैसा उसका बखान करो। यह काम दूर रहने से नहीं बन सकता।

१०. वै. स.। अनुप्रास।

११. खाने के पदार्थों और तांबूल की मौज के वितरण के समय चारण आगे-आगे रहते हैं, परन्तु अरे ! वीरों के हिचकिचाने के समय प्रोत्साहित करने वाले वे लोग दूर कैसे हैं ? अब जब वीरों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है तब आगे क्यों नहीं आते ?

: १२ :

भोळा की चहरो भड़ां !
ईखो चारण अैण
के-हो कढता कायरां
वाढां चाबुक-वैण

२. भाट

: १३ :

भाट घणा दिन भाखता,
कुळ भूला भू-कंत
रहियां नेड़ै वीर ही
जाणां विरद जपंत

---

१२. भोले । क्या । निंदा करते हो । हे वीरों । देखो । चारणों को । ठीक से । कई-अेक, कितने ही । (युद्ध-भूमि से) निकलते हुए, भाग कर जाते हुए । कायरों को । काट देते हैं । वचन-रूपी चाबुकों से ।

१३. भाट । बहुत दिनों तक, बहुत दिनों से । कहते थे, शिकायत करते थे । कुल के मार्ग को या कुल के स्वभाव को । भूल गये । पृथ्वी के स्वामी, भूमि-पति, क्षत्रिय । रहने पर । निकट । वीरों के । ही । समझें, समझेंगे । विरुद, प्रशंसा । बोलते हैं ।

---

१२. हे भोले वीरों ! चारणों की बुराई क्या करते हो ? चारणों को देखो तो सही; हमारी वीरता भी देखो, हम कितने ही भागने वाले कायरों को वचनों के चाबुक से ही काट डालते हैं ।

१२ रूपक ।

१३. भाट बहुत दिनों से कह रहे थे (उन्हें यह कहते बहुत दिन हो गये) कि पृथ्वी के स्वामी (राजा या क्षत्रिय लोग) अपने कुल के धर्म को भूल गये हैं । परन्तु अब तो वे वीरों के निकट रहेंगे तभी हम जानेंगे कि वे विरद गाते हैं (सच्चे विरद-गायक हैं) ।

३. ढोली

: १४ :

आधा पड़न्नां ओळगण
जांगड़ जीमण जाग
रण झड़तां भड़ दूर को
सुणसी सींधू राग ?

: १५ :

ढोलण ढोली-नूं कहै,
पुळो उतांवळ मांह
भीड़ै वाह दुवाह चर,
भीड़ै नाह सनाह

---

१४. आगे-आगे। घरों में,रंगमहलों में। गानेवाले। ढोली। यज्ञ, जान(बरात) की जेवनार के समय। युद्ध में। गिरते समय। वीर। दूर से। कौन। सुनेगा। सिंधू राग, वीर रस का एक राग जो युद्ध के समय वीरों को प्रोत्साहित करने के लिअे गाया जाता है। ओळगण=सेवा करने वाले (यहां गाने-बजाने की सेवा करने वाले)।

१५. ढोलिन। ढोली को=ढोली से। कहती है। चलो। शीघ्रता में, शीघ्रता से। कस रहा है। घोड़े को। योद्धा के(?) सेवक। कस रहा है। नाथ, स्वामी। संनाह, कवच।

---

१४. हे ढोलियों ! रंगमहल में गाने-बजाने के लिअे और बरात की जेवनार में जीमने के लिअे तुम बढ़कर आगे आते हो। पर युद्ध-भूमि से दूर क्यों हो ? युद्ध में गिरते समय कौन वीर दूर से तुम्हारे सिंधू राग को सुन सकेगा ?

१५. ढोलिन ढोली से कहती है—उतावले होकर चलो। देखो, सेवक योद्धा के घोड़े को कस रहा है और स्वामी कवच को कस रहा है। वीर युद्ध में जाने को तय्यार हो रहा है, हमें भी उसे प्रोत्साहित करने के लिअे जल्दी पहुंच जाना चाहिअे।

१५. छेकानप्रास, लाटानप्रास, यमक।

वीर के प्रतीक

१. सिंह

: १६ :

निधड़क सूतो केहरी,
तो भी विमुहा पांव
गज-गेंडा धीर न धरै
वज्र पड़ै वघ - वाव

: १७ :

पग पाछा, छाती धड़क,
काळो-पीळो दीह
नैण मिचै साम्हो सुणे
कवण हकाळै सींह ?

---

१६. निश्शंक। सोया है (सुप्त)। सिंह (केसरी)। तो भी। विमुख, उल्टे, पीछे की ओर। पैर। (पड़ते हैं)। हाथी और गैंडे। धीरज नहीं धारण करते हैं; घबरा रहे हैं। वज्र के समान, वज्र-सी। (सिर पर) पड़ती है। व्याघ्र-वायु, सिंह की गंध।

१७. पैर। पीछे (पश्चात्)। पड़ते हैं। छाती। धड़कती है। (वह सिंह)। काला-पीला, भयंकर। दीर्घ, लम्बा-चौड़ा। आँखें। बन्द हो जाती हैं। सामने (आया हुआ)। सुनकर। कौन। ललकारता है, ललकार सकता है। सिंह को।

---

१६. सिंह निर्भय होकर सोया है। वह गहरी नींद में है तो भी हाथी और गैंड़े धीरज धारण नहीं कर पा रहे हैं और भय के मारे उनके पैर पीछे की ओर पड़ रहे हैं। उस सिंह की गन्ध ही उन पर वज्र-सी गिरती है। सिंह स्वयं नहीं है पर उसकी गंध से ही हाथी और गैंडे जैसे पशु घबरा रहे हैं।

१६. अन्योक्ति। अनुप्रास।

१७. काला-पीला (भयंकर) और दीर्घाकार सिंह सामने आ रहा है यह सुनते ही पैर पीछे पड़ने लगते हैं, छाती धड़कने लगती है, और आंखें बन्द हो जाती हैं। उस सिंह को, सामने आकर, कौन ललकार सकता है ? कौन ऐसा साहस

: १८ :

हेलो ! घर-घर को हुवै
पूंचां छक पैंगाम ?
हाथी हाथळ आहणै,
नाहर जिण-रो नाम

: १९ :

खोयो मै घर-में अवट,
कायर जंबुक काम
सीहां केहा देसड़ा,
जेथ रहै सो धाम

---

१८. हे सखी । प्रत्येक घर में । क्या । होता है । कलाइयों में, हाथों में । छककर, पूरा । बल । हाथी को । हथेली से । मार दे । सिंह । जिसका= उसका, उसी का । नाम । (है) ।

१९. गँवा दिया । वय, उम्र, जीवन । घर में । व्यर्थ । कायर । गीदड़ों का । काम । सिंहों के । कैसे । देश । जहाँ, जिस स्थान में । रहते हैं । वही । घर ।

---

१८. हे सखी ! क्या घर-घर (सबके) पहुँचों में पूर्ण बल होता है (क्या सब सिंह कहला सकते हैं) ? जो हाथी को हथेली की थाप से ही मार डाले उसी का नाम सिंह है ।

अन्यार्थ—जिसका नाम सिंह होता है वह हाथी को हथेली से ही मार डालता है ।

१८. अन्योक्ति । अनुप्रास ।

१९. घर में रहकर जीवन को व्यर्थ गंवा दिया । यह तो कायरों और गीदड़ों का काम है । सिंहों के कौन से अपने देश होते हैं ? वे जिस स्थान में रहते हैं वही उनका देश हो जाता है ।

१९. अन्योक्ति ।

: २० :

जिण वन भूल न जांवता
गैंद गव्वय गिड-राज
तिण वन जंबुक ताखड़ा
ऊधम मंडै आज !

: २१ :

डोहै गिड़ वन-वाड़ियां,
द्रह ऊंडा गज दीह
सीहण - नेह सकैक तो
सहल भुलाणो सीह

---

२०. जिस । वन में । भूलकर (भी) । नहीं । जाते थे । गजेन्द्र, बड़े-बड़े हाथी । गवय, गैंड़े । बड़े-बड़े शूकर । उस । वन में । गीदड़ । उद्धत । ऊधम, धमा-चौकड़ी । मांड़ रहे हैं, मचा रहे हैं । आज ।

२१. मथ रहे हैं, विध्वस्त कर रहे हैं । शूकर । वनों को और वाटिकाओं को । ह्रद, सरोवर । गहरे । हाथी । दीर्घ, बड़े । सिंहनी के प्रेम में । कदाचित, सम्भवतः । सैर करना, वन में फिरना, सैर-सपाटे । भूल गया । सिंह ।

---

२०. (सिंह के) जिस वन में बड़े-बड़े हाथी, गैंड़े और वराह भी नहीं जाते थे उसी वन में आज गीदड़ उद्धत बने हुअे ऊधम मचा रहे हैं । दैवगति कितनी विचित्र है !

जिस वीर का कभी इतना आतंक था कि बड़े-बड़े वीर भी उसके स्थान में जाने का साहस नहीं करते थे वहां आज ओछे लोग उत्पात मचा रहे हैं ।

२०. अन्योक्ति । अनुप्रास ।

२१. सुअर वनों और वाटिकाओं को विध्वस्त कर रहे हैं और बड़े-बड़े हाथी गहरे सरोवरों को मथ रहे हैं । संभवतः सिंहनी के प्रेम में पड़कर सिंह अपने सैर-सपाटे भूल गया है । तभी, उसकी अनुपस्थिति में, इन का अैसा साहस हो रहा है ।

२१. अन्योक्ति । अनुप्रास ।

२. वराह

: २२ :

तुंडां गज, फेटां तुरो,
डाढां भड़ औझाड़
हेकण कव्रळै घूं दिया
फौजां पाथर पाड़

: २३ :

पूरा आकुळ पाठड़ा
भालां पड़तां भार
हेकण कव्रळा बाहिरा
झाड़ां - झाड़ां डार

---

२२. तुंडों से, थूथन से। हाथियों को। फेंटों से, टक्करों से। घोड़ों को। डाढ़ों से, दंष्ट्राओं से। वीरों को, सिपाहियों को। गिराकर। अेक ही। शूकर ने। रौंद दिया। फौजों को। पत्थरों पर, पथरीली भूमि पर। गिराकर, बिछाकर।

२३. पूरे। व्याकुल। (सुअर के) पट्ठे, बच्चे। भालों के। पड़ते हुए, पड़ते समय। बोझ। अेक। शूकर के। बिना। अेक-अेक झाड़ी में बिखर गया है। सुअरों का समूह।

---

२२. तुण्डों से हाथियों को, फेंटों से घोड़ों को और डाढ़ों से योद्धाओं को गिराकर अकेले शूकर ने फौजों को पत्थरों पर बिछा दिया और रौंद डाला।

२२. अन्योक्ति।

२३. भालों का भार पड़ने से पट्ठे (सुअरों के बच्चे) पूरी तरह से घबरा उठे हैं। अेक बली शूकर के बिना सारा झुंड वन में तितर-बितर हो रहा है।

२३. अन्योक्ति।

: २४ :

सुहड़ा और सिकारसो,
मन में या न समाय
भाला ऊ गिड़ भांजसी
डाढां प्रळय दिखाय

३. नाग

: २५ :

बांबी भीतर पौढियो
काळो दबकै काय ?
पूंगी ऊपर पाधरो
आवै भोग उठाय

---

२४. सुभट, योद्धा । और, फिर । शिकार करेंगे । मन में । यह बात । नहीं । समाती, बैठती, जँचती । भालों को । वह । शूकर । तोड़ डालेगा । डाढों के द्वारा । प्रलय । दिखाकर, उपस्थित करके ।

२५. बांबी के । अन्दर । सोया हुआ । काला सांप । दुबका रहता है, छिपा रहता है । क्या । पूंगी के । ऊपर । सीधा । आता है । फन को । उठा कर ।

---

२४. ये योद्धा अब और शूकर का शिकार करेंगे यह बात मन में बैठती ही नहीं । क्योंकि यह शूकर अपनी डाढ़ों से प्रलय का दृश्य उपस्थित करके उनके भालों को ही तोड़ डालेगा ।

२४. अन्योक्ति ।

२५. बांबी के भीतर सोया हुआ सांप पूंगी का शब्द सुनकर भी क्या भीतर दुबका हुआ रह सकता है ? वह फन को उठाकर सीधा पूंगी पर (आक्रमण करने को) झपटता है ।

२५ अन्योक्ति ।

४. धव्ळ (बैल)

: २६ :

धव्ळ पयंपै रे धणी !
की दुमणो घण भार ?
ओडे घर-रो आव्गो
करूं पहाड़ां पार

: २७ :

धुर सूनी, मरियो धव्ळ,
सकट हचक्का खाय
तिण-रो वाल्हो वाछड़ो
तंडै खंध लगाय

---

२६. धौला बैल । कहता है । अरे । मालिक । क्या । उदास (है) । अधिक । बोझ के कारण । उठाकर । घर भर का । बोझा । किये देता हूं । पहुंचा देता हूं, पहाड़ों के । उस पार ।

२७. धुरी । सो गयी, अचल हो गयी, चलती नहीं । मर गया । धौला बैल । गाड़ी । हिचकोले खाता है, ठीक ठीक नहीं चलता । उस (बैल) का । वल्लभ, प्यारा । बछड़ा । तांडव करता है, नाचता है । (गाड़ी के जुए में) कंधा । लगाकर ।

---

२६. धवल बैल कहता है—हे स्वामी ! अधिक बोझा देखकर मन में उदास क्यों हो रहे हो ? घर भर का सारा बोझा अपने पर उठाकर मैं पहाड़ों के उस पार पहुंचा दूंगा ।

२६. अन्योक्ति ।

२७. धवला बैल मर गया तो गाड़ी की धुरी सो गयी और गाड़ी हचकोले खा रही है (ठीक से नहीं चलती) । यह देखकर उस बैल का प्यारा बछड़ा जुए में कंधा लगाकर तांडव नृत्य-सा करने लगता है (उमंग में भरकर नाचता हुआ चलता है)।

२७. अन्योक्ति ।

वीर का कुल-मार्ग

: २८ :

आ घर - खेती ऊजळी,
रजपूतां कुळ - राह
चढणो धव्र लारां चिता,
वढणो धारा - वाह

मरण-महिमा

: २९ :

अठै सु-जस, प्रभुता उठै,
अव्सर मरियां आय
मरणो घर-रो मांझियां !
जम - नरकां ले जाय

---

२८. यह । घर की खेती, घर का व्यवसाय । उज्ज्वल, यशस्वी । राजपूतों के, वीरों के । कुल का मार्ग, कुल का आचार । चढ़ जाना । पति के । पीछे, साथ । चिता पर । कट जाना । (तलवार की) धार के प्रवाह में, चलती हुई तलवार की धार में ।

२९. यहाँ, इस लोक में । सुन्दर कीर्त्ति प्रभुत्व । वहाँ, परलोक में । अवसर पर, उपयुक्त अवसर पर । मरने से । आकर । मरना । घर का, घर में रहते हुए । हे वीरों । यम के नरकों में । ले जाता है ।

पाठान्तर—मांडियां=करने पर, घर में मरण करने से, घर में मरने से ।

पाठांतर—मरणो घर-रै मांझियां=घर के भीतर मरना (मांझियां=मध्य, मांझ, में) ।

---

२८. यह राजपूतों के (वीरों के) कुल का मार्ग है—यह उनके घर की यशस्वी खेती (व्यवसाय) है—नारी का पति के पीछे चिता पर चढ़ जाना और पुरुष का तलवार की धार से कट जाना ।

२९. (उपयुक्त) अवसर पर आकर मरने से इस लोक में सुन्दर कीर्त्ति और परलोक में प्रभुता की प्राप्ति होती है । हे वीरों ! घर के भीतर मरना यम के नरकों में ले जाता है ।

: ३० :

रण पाखे दु-मनो रहै,
लाज न नैण समाय
पग लंगर पाछा दियण,
सो बानैत कहाय

: ३१ :

दिण माथै बाढै दळां,
पोढै करज उतार
तिण सूरां-रो नांव ले
भड़ बांधै तरवार

---

३०. युद्ध के। बिना। दुर्मनस्क, उदास। रहता है। लज्जा, संकोच। नहीं। आँखों में। समाती। पैरों में। लंगर डाले हुअे है। पैर पीछे देने के लिअे; ताकि पैर पीछे न पड़ें। वह। बानाधारी, वीर। कहा जाता है।

३१. बिना। मस्तक, सिर के। काट डालते हैं। सेनाओं को। (युद्ध-भूमि में) सो जाते हैं। (स्वामी के) कर्ज को। उतार कर चुकाकर। उन। शूरवीरों का। नाम लेकर, स्मरण करके। वीर। बांधते हैं। (कमर में)। तलवार। (युद्ध के लिए सजते हैं)।

---

३०. जो युद्ध के बिना उदास रहता है, जिसके नेत्रों में लज्जा नहीं समाती (जो अत्यन्त लाजवाला अर्थात् संकोच-शील होता है) और जो युद्ध में पैर पीछे न पड़ें इसके लिअे पैरों में लंगर-सा डाल रहता है वह वीर कहा जाता है।

३१. जो (सिर कट जाने के बाद भी) बिना सिर के ही सेनाओं को काट डालते हैं और स्वामी के ऋण को चुकाकर रणभूमि में सो जाते हैं, उन वीरों का नाम लेकर वीर लोग तरवार बांधते हैं (युद्ध के लिए तय्यार होने पूर्व उनका स्मरण करते हैं)। वे वीर समस्त वीरों के आदरणीय बनते हैं।

: ३२ :

बळ खांध जण-जण बहै,
कस बांधै करवाळ
परख भड़ां अर कायरां
वहवहियां वंबाळ

: ३३ :

रुंड हुवा जीवै जिके,
सदा न हेरै साथ
सीहां-रै गळ सांकळै
वै भड़ घालै हाथ

---

३२. बल । कंधे में । प्रत्येक व्यक्ति । धारण करता है । कसकर । बांधता है । तलवार (को) । परीक्षा । (होती है) । वीरों । और । कायरों (की) । बजने पर । युद्ध के बाजों के ।

३३. धड़ । बने हुए । जीते हैं । जो । सदा, कभी । साथ (को) । नहीं । देखते, खोजते । सिंहों के । गलों (में) । जंजीरें डालने को । वे । वीर । डालते हैं, लगाते हैं । हाथ ।

---

३२. प्रत्येक व्यक्ति कंधे में (भुजाओं में) बल को धारण करता है और (कमर में) कसकर तलवार को बांधता है पर वीरों और कायरों की परीक्षा युद्ध के बाजे बजने पर ही—युद्ध आरंभ होने पर ही—होती है ।

३३. जो कबंध (बिना सिर के) होकर जीते हैं और कभी साथ को नहीं देखते (युद्ध में सहायक या साथी की अपेक्षा नहीं रखते) वे वीर सिंहों के गले में, जंजीर डालने के लिए, हाथ डालते हैं—सिंहो को पकड़ने का साहस कर सकते हैं ।

: ३४ :

सीह न वाजो ठाकरां !
दीन गुजारो दीह
हाथळ पाड़ै हाथियां
सो भड़ वाजै सीह

: ३५ :

सूता नाहर-सारखा
साळ न छोडै सूर
कंत ! विणट्टा काच-सा
दोही विलखै दूर

---

३४. सिह । नहीं । कहलाते हो । हे ठाकुरों । दीन होकर । बिताते हो । दिन । हथेली से । गिराता है । हाथियों को । वह । वीर । कहलाता है । सिंह ।

३५. सोये हुए (सुप्त) । सिंह के समान । शाला को, घर को । नहीं । छोड़ते हैं । शूरवीर । हे पति ! । टूटे हुए । कांच के समान । द्रोही, शत्रु । बिलखते हैं । दूर पर ।

---

३४. हे सरदारों ! दिनों को दीनता के साथ बिताने से सिंह नहीं कहलाओगे । जो हथेली से हाथियों को गिराता है वही वीर सिंह कहा जाता है ।

३५. मांद में सोये हुए सिंहों के समान घर में सोये हुए शूरवीर अपने घरको नहीं छोड़ते, वे निर्भय होकर सोये ही रहते हैं । टूटे हुए कांच के टुकड़ों की भांति उनके शत्रु दूर-दूर ही रह कर बिलखते हैं ।

३५. उपमा ।

: ३६ :

सूता घर-घर आळसी
वृथा गमावै वैस
खग-धारां घोड़ां-खुरां
दाबै अजका देस

: ३७ :

खाटी कुळ-री खोवणा
नेपै घर-घर नींद
रसा कंवारी रावतां !
वीर तिको ही वींद

---

३६. सोये हुए (सुप्त)। घर-घर में। आलसी लोग। व्यर्थ। खोते हैं। वयस् को, उम्र को। खड्ग की धारों से। घोड़ों के खुरों से। दबाते हैं, अधिकार में करते हैं। वीर, युद्ध के लिये आतुर रहने वाले वीर। देश को, भूमि को।

३७. कमाई को। कुल की। खोने वाले। नापते हैं, लेते हैं। घर-घर में। नींद। पृथ्वी। कुमारी। (है)। हे वीरों। (जो) वीर (है) वही। (उसका)। दूल्हा, वर, पति। (है)।

---

३६. घर-घर में आलसी लोग सोये हुये व्यर्थ ही जीवन को गँवाते हैं। और वीर लोग तलवारों की धारों से तथा घोड़ों के खुरों से भूमि को अपने अधिकार में करते हैं।

३७. कुल की अर्जित भूमि को गँवा देने वाले घर-घर में नींद में सोये रहते हैं। परन्तु हे सरदारों ! यह भूमि कुमारी कन्या (के समान) है। जो वीर है वही उसका वर है—वही उसे प्राप्त करता और भोगता है।

३७. रूपक।

: ३८ :

राजा आणै पार-री
जंग कुबंगां जीत
राजा पग बांधै रसा,
राजां कुळ-री रीत

: ३६ :

घोड़ां घर, ढालां पटळ,
भालां थंभ वणाय
जे ठाकर भोगै जमी,
अवर किसो अपणाय ?

---

३८. राजा, अर्थात् क्षत्रिय वीर। लाते हैं, अधिकार में करते हैं। परायी, दूसरों की, शत्रुओं की (भूमि)। युद्ध में। शत्रुओं को। जीत कर। राजा (क्षत्रिय वीर) अपने पैरों में। बांधे रखते हैं। पृथ्वी को (किसी को छीनने नहीं देते)। (यह)। राजाओं के। कुल की। रीति। (है)।

३८. लाटानुप्रास।

३६. घोड़ों के। घर। ढालों के। छत। भालों के। थंभे। बनाकर। जो। ठाकुर। भोगते हैं। भूमि को। (उनकी भूमि को)। और, दूसरा। कौन-सा, कौन। अपना सकता है, अधिकार में कर सकता है, छीन सकता है।

---

३८. वीर क्षत्रिय युद्ध में शत्रुओं को जीतकर शत्रुओं की भूमि को अधिकार में कर लेते हैं। वीर पृथ्वी-पति पृथ्वी को अपने पैरों से बांधकर रखते हैं। यह वीर क्षत्रियों के कुल की रीति है।

३६. जो सरदार भालों के खंभों और ढालों की छतों से घोड़ों पर ही घर बनाकर (सदैव घोड़ों पर सवार हुअे और हाथों में शस्त्र लिये हुअे अर्थात् युद्ध के लिए प्रस्तुत रहकर) भूमि का उपभोग करते हैं उनकी भूमि को दूसरा कौन अपने अधिकार में कर सकता है ?

स्वामी और सेवक

स्वामी

: ४० :

डाकी ठाकर सहण कर,
डाकण डीठ चलाय
मायड़ खाय दिखाय थण,
धण पण वळय वताय

---

४०. डाकी, भक्षक; डाकिन का नर-नातीय रूप । सरदार स्वामी । सहन करके, आश्रित वीरों की त्रुटियों के प्रति सहनशीलता दिखाकर; जब स्वामी इतना ध्यान रखता है तो सेवक भी उसके लिअे प्राण देने से पीछे नहीं हटते । डाकिनी । दृष्टि, नजर । चला कर (नजर लगाकर) । माता । खा जाती है, प्राण ले लेती है । दिखाकर, बताकर । स्तन । (पिये हुए दूध की याद दिलाकर कि मेरे इस दूध को लज्जित मत करना) । पत्नी । भी, और । चूड़ियां बताकर (मेरी इन चूड़ियों को मत लजा देना यह कहकर) ।

---

४०. डाकी मालिक सेवकों को सहनशीलता दिखाकर खा जाता है। डाकिनी लोगों को दृष्टि से देखकर (नजर लगाकर) खा जाती है। माता स्तन को दिखाकर (पिये हुअे दूध की याद दिलाकर) और पत्नी चूड़ियों को बताकर प्राण ले लेती है।

टिप्पणी—स्वामी सहनशीलता दिखाकर, सेवकों की त्रुटियों पर ध्यान न देकर उनको खा जाता है जब स्वामी सेवकों का इतना खयाल रखता है कि अपराध हो जाने पर भी कुछ नहीं कहता तो सेवक हृदय से उसे चाहने लगते हैं और अवसर आते ही उसके लिअे प्राण दे देते हैं।

माता जब अपने स्तनों की ओर इंगित करके कहती है कि मेरे दूध को मत लजा देना तो पुत्र स्वभावतः ही युद्ध में प्राण देने को तत्पर हो जाता है । इसी प्रकार प्रेयसी अपनी चूड़ियों को बताकर कहती है कि मेरे सुहाग को मत लजा देना तो कौन अभागा पति युद्ध से पीठ दिखाने का साहस करेगा ?

४०. दीपक ।

: ४१ :

नह डाकी अरि खावणो
आयां केवळ बार
वधावधी निज खावणो
सो डाकी सरदार

२. स्वामी का अन्न

: ४२ :

डाकी ठाकर-रो रिजक,
ताखा-रो विख हेक
गहल मुवां ही ऊतरै,
सुणिया सूर अनेक

---

४१. नहीं । भक्षक । शत्रुओं को खाने वाला । आने पर । केवल । द्वार पर। (आक्रमण करने पर) । अहमहमिका के साथ बढ़-बढ़कर, । अपनों को, अपने वीरों को । खाने वाला । वह । भक्षक । मालिक। (है) ।

सच्चा मालिक वह है जिसके लिअे आश्रित वीर बढ़-बढ़कर (होड़ लगा-कर) प्राण देते हैं ।

४२. भक्षक । मालिक का । रिजक, आजीविका, जीवन-निर्वाह के लिए दिया हुआ धन । तक्षक का । जहर । एक, एक जैसा घातक प्रभाव दिखाने वाले; जो मालिक का धन खाते हैं वे अपने प्राण अवश्य देते हैं । नशा । मरने पर ही । उतरता है । सुने हैं । शूरवीर । बहुत-से ।

---

४१. डाकी सरदार वह नहीं जो केवल द्वार पर आने वाले (आक्रमण करने वाले) शत्रुओं को ही खाता है; डाकी सरदार वह है जो अपने वीरों को भी बढ़-बढ़ कर खा जाता है, उसके शत्रु तो प्राण देते ही हैं परन्तु उसके आश्रित वीर भी उसके लिए बढ़-बढ़कर प्राण देते हैं ।

४२. डाकी मालिक का धन और तक्षक का जहर दोनों एक हैं—एक समान हैं। उनका नशा मरने पर ही उतरता है । हमने अनेक वीरों की बातें सुनी हैं । मालिक का धन खानेवाले आश्रित वीर उसके लिअे अपने प्राण अवश्य देते है ।

४२. निदर्शना (पूर्वार्ध) । काव्यलिंग ।

: ४३ :

दमँगळ विच अ-पचो दियण
वीर धणी-रो धान
जीव्रण-धण वाल्हा जिकां
छोडो जहर समान

३. सच्चा स्वामी

: ४४ :

मिळियँ मन खोबां अमल,
पांते भोजन-पान
भड़ घोड़ा अजका सदा,
जिण-रो हुकम जहान

---

४३. युद्ध। बिना। अपच, अजीर्ण। देने वाला, करने वाला। वीर। स्वामी का। अन्न। जीवन और पत्नी (या धन)। प्यारे। जिनको। वे उसे छोड़ दें। जहर के। समान। (जानकर)।

४४. मिले हुअे, मेल-युक्त, अेकीभूत। मन से। खोबों से, धोबों से। खोबा= दोनों हाथों के मिलाने से बना हुआ पात्र का आकार, दोनों हाथों की अंजुली। अफीम (का पिलाना)। एक ही पांत में। खाना और पीना। योधा। घोड़े। चंचल, आतुर, युद्ध के लिअे आतुर। सदा। जिनका, उनका। हुक्म (चलता है)। जगत में।

---

४३. वीर मालिक का अन्न युद्ध के बिना अजीर्ण को देने वाला है (पचता नहीं)। जिनको जीवन और पत्नी प्यारे हों वे उसे जहर के समान समझकर छोड़ दें, उससे दूर रहें।

४४. जो सबको मिले हुए मन के साथ धोबों में लेकर अफीम पिलाते हैं और जिनके यहां अेक ही पंक्ति में सबका खान-पान होता है तथा जिनके योद्धा और घोड़े युद्ध के लिअे आतुर रहते हैं उनकी आज्ञा सारे संसार में चलती है।

४ सच्चा सेवक

: ४५ :

भड़ सोई, पैलां पड़ै
चील्ह विलग्गां चैंक
नैण बचावै नाह-रा
आप कळेजो फ़ैंक

: ४६ :

पहला आसव्रर पाछटै
अरियां लोह विछोड़
पाछै अजका भूप-रा
दळ-भड़ पूगै दौड़

---

४५. वीर (है) । वही । (जो) । (स्वामी के) पहले । गिरता है । चील के । लगने पर । चौंक कर, होश में आकर । नेत्र । बचाता है । स्वामी के । अपना । कलेजा । फेंककर ।

४६. पहले । तलवार । पछाड़ता है, पटकता है, मारता है । शत्रुओं पर । शस्त्र । छुड़ा देने वाला । पीछे । वीर । राजा के । सेना के योधा, सैनिक । पहुँचते हैं । दौड़कर ।

---

४५. वीर वही है जो स्वामी के पहले युद्ध-भूमि में गिरता है और जब चील गिरे हुअे स्वामी के नेत्रों पर झपटती है तो, चौंक कर (होश में आकर) और अपना कलेजा चील की ओर फेंककर, स्वामी के नेत्रों की रक्षा करता है ।

४६. सच्चा वीर सेवक सब से पहले ही शत्रुओं पर तलवार का ऐसा वार करता है कि वे हाथों के हथियार छोड़ देते हैं । राजा की सेना के दूसरे वीर सैनिक तो दौड़कर बाद में कहीं पहुंचते हैं ।

: ४७ :

उर बूटो अटकाव्रतां
वाहै काळ - वसीठ
रीझे इसड़ा राव्रतां
नाह उबारै नीठ

५. वीर सेवक का सत्कार

: ४८ :

पर-दळ पाड़ै घूमता,
नाह जुहारै आय
राणी इसड़ा राव्रतां
हाथां नींब वँटाय

---

४७. हृदय में। भाले के वांस का अंत्य भाग, भाले की नोक। अटकाने पर (?)। (भी)। चलाता है। काल का दूत, मृत्यु के दूत के समान शस्त्र के प्रहार को। रीझ कर। ऐसे। वीरों को। नाथ, स्वामी। बचाता है। अनिष्टेन, कठिनता से, कठिनाई में पड़कर भी (?)

४८. शत्रु की सेना को। गिराते हैं। मस्त हुअे, छके हुअे। स्वामी को। प्रणाम करते हैं। आकर, युद्ध से लौटकर। रानी। अैसे। राजपुत्रों (वीरों) के लिअे, उनके घावों के उपचार के लिए। (अपने) हाथों से। नीम। पीसती है।

---

४७. स्वामी के वीर योद्धा छाती में भाले की नोक के अटकाये जाने पर भी काल के दूत के समान शस्त्र से प्राणहारी प्रहार करते हैं। ऐसे वीरों पर रीझकर स्वामी उनको कठिनाई में पड़कर भी बचाता है।

टि०—अर्थ संदिग्ध है।

४७. जो घावों से छके हुए भी शत्रु-सेना को गिरा देते हैं और फिर आकर स्वामी को प्रणाम करते हैं, अैसे वीरों के (घावों के उपचार के) लिअे रानी स्वयं अपने हाथों से नीम को पीसती है।

: ४९ :

पूजीजै गज - मोतियां
सखी ! भड़ां-भुज आज
नाह नि-लोहो आणियो
करे अगाऊ काज

६. वीर सेवक की पत्नी

: ५० :

ठकुराणी ! सतियां कहै,
भेजो चून घरां न
माथा जिण दिन मांगणा,
तिण दिन लोभ करां न

---

४९. पूजिये । गज–मुक्ताओं से । हे सखी । वीरों की भुजाओं को । आज । नाथ को, (मेरे) पति को । लोहे से रहित, लोहे के शस्त्र के घाव से रहित । ले आये । करके, पूरा करके । पहले ही । पति के पहुँचने के पहले ही काम को । (पति को न युद्ध करना पड़ा और न घाव खाने पड़े) ।

५०. हे ठकुरानी । सतियाँ=भावी सतियां; वीरों की पत्नियाँ । कहती हैं । भेजती हो । आटा । घर पर । नहीं । सिरों को । जिस दिन । मांगा जायगा । उस दिन । लोभ । नहीं करेंगी ।

---

४९. हे सखी ! वीरों की भुजाओं को आज गज–मोतियों से पूजो। उनने पहले से (स्वामी के पहुचने के पूर्व) ही सारा काम कर डाला और स्वामी को बिना शस्त्र का घाव लगे ले आये ।

४९ अनुप्रास ।

५०. सतियां कहती हैं कि हे ठकुरानी ! तुम हमारे घर आटा नहीं भेज रही हो । परन्तु जिस दिन तुम हमारे पतियों के सिर मांगोगी उस बिन हम तुम्हारी तरह लोभ नहीं करेंगी, अपने पतियों को अविलंब युद्ध में मरने के लिए भेज देगी ।

: ५१ :

ठकुराणी ! सतियां भणें,
चूण समप्पो सेर
चूड़ो जिण दिन चाहसी,
उण दिन केथ अवेर ?

: ५२ :

राणी ! सोकळ चून-री
कमी दिखाव्रो काय ?
औरां पहली सीलणो
म्हारा-रो सिर जाय

---

५१. हे ठकुरानी । सतियाँ । कहती हैं । आटा । दो (समर्पण) । सेर भर । चूड़ा, चूड़ियाँ; सुहाग, पतियों के प्राण । जिस दिन । चाहियेगा । उस दिन । कहाँ । देरी । (हम देर नहीं करेंगी; तुरन्त देंगी) ।

५२. हे रानी । सूखे (?) । आटे की । कमी । दिखाती हो । क्या ? दूसरों के । पहले । बदला देनेवाला, ऋण चुकाने वाला । मेरे (पति) का । सिर । जावेगा । (मेरा पति सबसे पहले प्राण देगा) ।

---

५१. सतियां कहती हैं—हे ठकुरानी ! हमें सेर भर आटा दो । जिस दिन हमारे चूड़े की आवश्यकता होगी उस दिन हमारे देर कहाँ ? हम तुरन्त देंगी; पति को युद्ध में मरने के लिए तुरन्त भेज देंगी ।

५२. हे रानी ! सूखे आटे की कमी क्या बताती हो ? मेरे पति का सिर दूसरों के पहले, ऋण चुकाकर, गिरेगा ।

पाठान्तर—थारा पहली (=तुम्हारे पति के पहले) ।

: ५३ :

नरां ! न ठीणो नारियां,
ईखो संगत अेह
सूरां घर सूरी महळ,
कायर कायर-गेह

: ५४ :

सहणी सब-री हूँ सखी !
दो उर उळटी दाह
दूध-लजाणो पूत, तिम
वळय-लजाणो नाह

---

५३. हे मनुष्यों। नहीं, मत। उपालम्भ दो। स्त्रियों को। देखो। संगति, संगति का फल। यह। वीरों के। घर में, वीर। महिलाएँ, स्त्रियाँ। कायर। कायरों के। घर में।

५४. सहने वाली (हूं)। सब की, सब को। मैं। हे सखी। दो बातें। हृदय में। उलटी, विपरीत, अनुचित। दाह-रूप, संतापकारक। (हैं)। दूध को लजाने वाला। पुत्र। वैसे ही, इसी प्रकार। चूड़ियों को लजाने वाला। पति।

---

५३. हे मनुष्यों ! स्त्रियों को उपालंभ मत दो। देखो, यह संगति का फल होता है। वीरों के घर में स्त्रियां भी वीर होंगी और कायरों के घर में कायर। ईखो इ०—अन्यार्थ—इनकी संगति को देखो।

५४. हे सखी ! मैं सब सह सकती हूं पर दो मर्यादा के विपरीत बातें मेरे हृदय को जलाती हैं (उनको मैं सहन नहीं कर सकती)—अेक तो दूध को लजाने वाला पुत्र और दूसरा चूड़ियों को लजाने वाला पति।

५३. छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

: ५५ :

हूं बळिहारी राणियां,
जाया वंस छतीस
सेर सलूणो चूण ले
सीस करै बगसीस

: ५६ :

हूं बळिहारी राणियां
थाळ बजाणै दीह
वींद जमी-रा जे जणै,
सांकळ-ढीटा सीह

---

५५. मैं । बलिहारी हूं । रानियों पर, क्षत्राणियों पर । (जिनने) । जन्म दिया, पैदा किये । (राजपूतों के) वंश । छतीस । सेर भर; थोड़ा-सा । स-लवण, नमक सहित । आटा । लेकर । सिर को । करते हैं । बख्शीश, दान ।

क्षत्रियों के छत्तीस कुल प्रसिद्ध हैं, नामावलियों में नामों का अन्तर पाया जाता है ।

५६. मैं । बलिहारी हूं । रानियों पर । थाली बजाने के दिन, पुत्र को जन्म देने के दिन । दूल्हे, पति । पृथ्वी के । जो । जनती हैं । शृंखला (जंजीर) की अवमानना करने वाले (ढीटा=धृष्ट) । सिंह , सिंहों के समान वीर ।

---

५५. मैं क्षत्राणियों पर बलिहारी हूं जिनने छत्तीस वंशों (के वीरों) को जन्म दिया; जो सेर भर आटा, नमक सहित, लेकर बदले में अपने सिर दे देते हैं ।

५५. यमक ।

मैं क्षत्राणियों के थाल बजने के दिन (पुत्र-जन्म के दिन) पर बलिहारी हूं जो जंजीर की पर्वाह न करने वाले सिंहों के समान पृथ्वी-पतियों को जन्म देती हैं ।

५६. लुप्तोपमा (अथवा रूपक) ।

: ५७ :

हूँ बळिहारी राणियां
भ्रूण सिखावण भाव
नाळो वाढण-री छुरी
झपटै जणियो साव

: ५८ :

हूँ बळिहारी राणियां
साचा गरभ सिखाय
जाचां हंदै तापणै
हरखै धी द्रिग लाय

---

५७. मैं। बलिहारी हूँ। रानियों के। गर्भ के बालक को। शिक्षा देने के भाव पर।, नाल के काटने की। (लोहे की) छुरी की ओर। झपटता है। (हाल का) जना हुआ, नवजात। बालक (शावक)।

५८. मैं। बलिहारी हूँ। रानियों पर, क्षत्राणियों पर। सच्चे। गर्भ के बालकों को। सिखाती हैं। जच्चा के, प्रसूता के। तापने की आग की ओर। हर्षित होती है। (नव-जात) बालिका (दुहिता)। आँखें लगाकर, एकटक देखती हुई।

---

५७. मैं क्षत्राणियों की गर्भ को शिक्षा देने की रीति पर बलिहारी हूं जिसके फलस्वरूप नवजात शिशु नाल काटने की लोहे की छुरी को देखकर, उसे हथियार समझ कर, लेने को झपटता है।

वीर बालक जन्म से ही शस्त्रों से प्रेम करने लगता है।

५८. मैं क्षत्राणियों पर बलिहारी हूं जो गर्भों को सच्ची शिक्षा देती हैं। जच्चा के तापने की अग्नि को देखकर नवजात बालिका उसे एकटक देखती है और हर्षित होती है।

वीर बालाऐं जन्म से ही सती होने की उमंग रखती हैं।

: ५६ :

थाळ वजंतां हे सखी !
दीठो नैण फुळाय
वाजां-रै सिर चेतणो
भ्रूणां कवण सिखाय ?

: ६० :

नागण-जाया चीटला,
सिंघण - जाया साव
राणी-जाया नह रुकै,
सो कुळ-वाट सुभाव

---

५९. थाल के। बजते समय। हे सखी ! देखने लगा। आँखों को। फुलाकर, फाड़कर। बाजों के ऊपर, बाजे बजने पर। चेत उठना, सावधान हो जाना। गर्भ के बालकों को। कौन। सिखाता है।

६०. नागिनी के। जने हुअ। बच्चे। सिंहनी के। जने हुए। बच्चे। रानी के, क्षत्राणी के। जने हुअे (बालक)। नहीं। रुकते। वह, यह। कुल का मार्ग, कुल की रीति। स्वभाव। (है)।

---

५९. हे सखी ! जन्म की थाली बजने पर नवजात शिशु आंखें फाड़कर देखने लगा। बाजों को सुनकर सचेत हो जाना (वीर) शिशुओं को गर्भ में ही कौन सिखा देता है ?

युद्ध के बाजे बजने पर सचेत हो जाना वीर बालक जन्म से ही सीख लेता है।

६०. नागिनी के जने हुए बच्चे, सिंहनी के जने हुअे बच्चे, और रानियों के जने हुअे बालक कभी किसी के रोके नहीं रुकते। यह उनकी कुल-परंपरा का मार्ग और स्वभाव है।

६०. दीपक।

: ६१ :

इळा न देणो आप-रो,
रण-खेतां भिड़ जाय
पूत सिखावै पालणै
मरण - वडाई माय

: ६२ :

बाळा ! चाल म वीसरे,
मो थण जहर समाण
रीत मरंतां ढील की,
ऊठ, थियो घमसाण

---

६१. पृथ्वी । नहीं । देनी । अपनी । युद्ध-भूमि में । भिड़ जाना । पुत्र को । सिखाती है । झूले में, शिशु-अवस्था में ही । मरने की महत्ता को । माता ।

६२. हे बालक, हे बेटा । कुल की चाल, रीति । मत । भूलना । मेरा स्तन, मेरे स्तन का दूध । विष के । समान (है) । कुल की रीति के अनुसार । प्राण देने में । देर । क्या । उठ, खड़ा हो । हुआ, आरम्भ हो गया । घमासान, युद्ध ।

६२. उपमा ।

---

६१. अपनी भूमि दूसरे को नहीं देना, उसके लिअे रणक्षेत्र में भिड़ जाना । इस प्रकार माता पुत्र को झूले में ही मरने का महत्त्व सिखा रही है ।

६२. हे वत्स ! कुल की चाल मत भूलना । मेरे स्तनों का दूध जहर के समान (प्राण लेने वाला) है, जो मेरा दूध पीता है वह अवश्य प्राण देता है । उठो, घमासान युद्ध शुरू हो गया है । अब कुल की रीति का पालन करते हुअे मरने में देर किसलिअे कर रहे हो ?

: ६३ :

और जहर मुख आवियां
भेजै झट पर-धाम
अतरो अंतर मूझ पै,
मारै पड़ियां काम

: ६४ :

सुण हाको रण-आंगणै
क्यूं न मरै धण ! ईठ ?
मूझ भरोसो दूध-रो
जहर भजाड़े पीठ

---

६३. दूसरे। विष। मुख में आने पर, पिये जाने पर। भेज देते हैं। तुरन्त। परम धाम, परलोक। इतना। फर्क। मेरे दूध-रूपी विष में (पै—पय:, दूध)। मारता है। पड़ने पर। काम। (तुरन्त नहीं मारता)।

६४. सुनकर। हल्ला। युद्धांगन में, युद्ध-भूमि में। क्यों नहीं। मरे। अरी पति की प्रिया। (तुम्हारा) प्रिय, पति (ईठ=इष्ट)। मुझे। भरोसा (है)। अपने दूध का। विष, विष के समान कड़ुआ। भागकर पीठ (दिखाना)। पीठ<पृष्ठ।

६४. काव्यलिंग।

---

६३. दूसरे जहर मुँह में पड़ने पर तुरन्त परलोक को भेज देते हैं (मार डालते हैं)। मेरे दूध-रूपी जहर में इतना फर्क है कि वह काम पड़ने पर ही मारता है।

६४. अरी धन्या ! युद्ध के आंगन में युद्ध का हल्ला सुनकर तुम्हारा पति क्यों नहीं मरेगा ? मुझे अपने दूध का विश्वास है कि उसका पान कर लेने पर पीठ देकर भागना जहर के समान कड़ुवा लगता है।

: ६५ :

पायो हेली ! पूत-नूँ
सोमल थण लपटाय
अचरज अतरै जीवियो,
क्यूं न मरै अब जाय ?

वीर सास

: ६६ :

सासू आखै, तेड़वी
को मणिहारी काज ?
मूझ भरोसो दूध - रो,
चूड़ां - रो जम-राज

---

६५. पिलाया । हे सखी । पुत्र को । सोमल नामक विष । स्तन के लिपटा कर (लगाकर) । आश्चर्य है । इतने (दिन) । जीता रहा । क्यों नहीं । मरे । अब । जाकर ।

६६. (पुत्र वधू की) सास । कहती है । बुलायी है । क्या, किस । मनिहारिन, चुरिहारिन को । काम । मुझे । भरोसा (है) । (अपने) दूध का । (मेरा पुत्र है) । चूड़ियों के समूहों का । यमराज, तोड़ने वाला; पत्नी को विधवा बनाने वाला, अवश्य प्राण देने वाला ।

---

६५. हे सखी ! मैंने स्तन के जहर लिपटाकर उसे पुत्र को पिलाया था । वह इतने दिन जीवित रहा यही आश्चर्य की बात है । अब जाकर क्यों नहीं मरेगा ?

६६. पुत्र-वधू की सास अपनी पुत्रवधू से कहती है—तुमने मनिहारिन को किस लिअे बुलाया है ? मुझे अपने दूध का भरोसा है । वह मेरा बेटा चूड़ियों का तो यमराज ही है (वह युद्ध में अवश्य प्राण देगा और तुम्हारी चूड़ियां टूटे बिना नहीं रहेंगी) ।

: ६७ :

आज घरे सासू ! कहु,
हरख अचानक काय ?
वहू बळेवा हूलसै,
पूत मरेवा जाय

: ६८ :

सुण मरियो सुत हेकलो
सासू प्रभणै धार
मो जणियो कायर थयो,
बेटी ! बळण निवार

---

६७. आज । घर में । सास, पुत्र-वधू की सास । कहो । हर्ष । अचानक । क्या, किसलिए । पुत्र-वधू । जलने के लिए, सती होने के लिए । उल्लसित हो रही है । पुत्र । (युद्ध-भूमि में) मरने के लिए जा रहा है ।

६८. सुनकर । मरा । पुत्र । अकेला । सास । कहती है । दृढता से; या विचारकर, सोचकर । मेरा । जाया, पुत्र । कायर । हो गया । हे बेटी । जलना, सती होना । रोक दे ।

---

६७. अरी बहू की सास ! कहो तो आज घर में अचानक किसलिए हर्ष हो रहा है ? सास उत्तर देती है कि पुत्रवधू सती होने को उमंगित हो रही है और पुत्र युद्ध में मरने को जा रहा है ।

६८. वीर माता ने जब सुना कि पुत्र अकेला मरा (शत्रुओं को मार कर नहीं मरा) तो उसने सोचकर पुत्रवधू से कहा—बेटी ! मेरा बेटा कायर हो गया, उसके साथ सती होना रोक दे ।

: ६९ :

सुत धारां रज-रज थियो,
वहू बळेवा जाय
लखियां डूंगर लाज-रा
सासू-उर न समाय

वीर पत्नी—१

: ७० :

नह पड़ोस कायर नरां
हेली ! वास सुहाय
बळिहारी जिण देसड़ै,
माथा मोल विकाय

---

६९. पुत्र । तलवारों की धारों से । कण-कण (रज = धूल, धूल का कण)। हो गया (स्थितः, थिअउ) । पुत्र-वधू । जलने को, सती होने को । जा रही है । देखने पर, देखकर । लज्जा के पहाड़, अपार लज्जा । सास के । हृदय में । नहीं । समाते ।

६९. रूपक ।

७०. नहीं । पड़ोस में । कायर । पुरुषों के । हे सखी । बसना । अच्छा लगता है । बलिहारी (हूँ) । उस देश पर । (जहां) । माथे । मोल बिकते हैं, बदले में दिये जाते हैं ।

---

६९. पुत्र तलवारों की धारों से कटकर कण-कण हो गया और पुत्रवधू सती होने को जा रही है—यह देखकर सास के हृदय में लज्जा के पहाड़ उत्पन्न होते हैं जो हृदय में नहीं समाते (यह देखकर कि सती होने का सौभाग्य अभी तक उसे नहीं मिला, सास के हृदय में अपार लज्जा उदित होती है) ।

७०. हे सखी ! कायर पुरुषों के पड़ोस में रहना अच्छा नहीं लगता । मैं उस देश पर बलिहारी हूं जहां सिर मोल बिकते हैं—जहां सिरों का लेनदेन होता है, जहां स्वामी के अन्न का बदला सिर देकर चुकाया जाता है ।

: ७१ :

धण-नूं आळगसी धणी !
सुणियां वागो सार
हालीजै उण देसड़ै,
प्राणां - रो व्योपार

: ७२ :

कायर - नारी सौक-दुख
रोकै वालम गेह
धारां अजको मो धणी
भलां लगाड़ै देह

---

७१. प्रिया को । अच्छा लगेगा । हे पति । सुनकर । लोहा बजा, हथियार भिड़े, युद्ध हुआ । चलिये, चला जाय । उस । देश को । (जहां) । प्राणों का । व्यापार, लेनदेन । (होता है) । बदले में प्राण दिये जाते हैं ।

७२. कायर की । स्त्री । सौत के दुख से । रोक लेती है । वल्लभ को, पति को । घर में । तलवारों की धारों को । प्रचंड वीर । मेरा पति । भले ही । लगावे । शरीर से । (आलिगन करे) ।

---

७१. हे पति ! तुम्हारी प्रिया को तलवार बजी सुनकर बहुत अच्छा लगेगा । अत उस देश को चलो, जहां प्राणों का लेन-देन होता है ।

७२. कायर पत्नी सौत के दुख से डरकर पति को घर में रोक लेती है—युद्ध में नहीं जाने देती । पर मेरा वीर पति तलवारों की धारों को शरीर में भले ही लगावे (उनका आलिगन भले ही करे) ।

सौक—तलवारों की धार; अथवा अप्सरा (वीर मरने पर स्वर्ग जाते हैं जहां अप्सराऐं उन्हें वरण करती हैं) ।

वीर पत्नी—२

: ७३ :

कंत ! लखोजै दोय कुळ,
नांह घिरंती छांह
मुड़ियां मिळसी गींदवो,
मिळै न धण-री बांह

: ७४ :

पूजाणो गज-मोतियां
मींडाणो कर मूझ
वीजाणो घण चामरां
है चूड़ो बळ तूझ

---

७३. हे पति । देखना । दोनों । कुलों को । नहीं, मत । घिरती-फिरती, आती जाती । (बादलों की) छाया के समान जीवन को । मुड़कर, (पीछे हटकर, भाग कर) आने से । मिलेगा । तकिया । मिलेगी । नहीं । प्रिया की । बाँह, भुजा । दोनों कुळ=पितृ-कुल और मातृ-कुल, अथवा पति का कुल और पत्नी का कुल ।

७४. पूजा हुआ । गज-मुक्ताओं से । कसा हुआ, पहना हुआ । हाथ में । मेरे । व्यजित किया हुआ । बहुत । चँवरों से । है । चूड़ियों का समूह । बल पर । तुम्हारे ।

७४. अंत्यानुप्रास ।

---

७३. हे प्रिय ! पितृ-कुल और मातृ-कुल—इन दोनों कुलों को देखना । जीवन तो घिरती-फिरती छाया है, उसे मत देखना । युद्ध से पीठ दिखाकर आने पर तुम्हें सोते समय सिर रखने के लिऐ तकिया ही मिलेगा, अपनी प्रिया की बांह नहीं मिलेगी ।

७४. गजमोतियों से पूजा हुआ, मेरे हाथों में धारण किया हुआ और अनेक चंवरों से व्यजित किया हुआ यह मेरा चूड़ा (इस मेरे चूड़े की प्रतिष्ठा) तुम्हारे बल पर ही है ।

: ७५ :

तन दुरंग, अर जीव्र तन,
कढणो मरणो हेक
जीव्र विणट्ठां जे कढो,
नाम रहीजै नेक

: ७६ ;

बळण अकेलां किम वणै,
जोव्रै संसय जीव्र
व्रै दिन जो कायर वणो,
पीहर भेजो पीव्र !

---

७५. शरीर का । दुर्ग से । और । जीव का । शरीर से । निकलना । (और) मरना । अेक ही है, समान है । प्राण के । विनष्ट होने पर । यदि । बाहर निकलो (शव के रूप में) । (तो) । नाम, यश । रहेगा । अच्छा ।

जीव विणट्ठां इ०—मरने पर शव जलाये जाने के लिअे दुर्ग के बाहर श्मशान पर ले जाया जाता है ।

७६. जलना । अकेले । कैसे । बने, बनेगा । देखता है । संदेह । जी; मेरे जी में संशय होता है । उस दिन, युद्ध में जाने के दिन । यदि । कायर । बनो । (तो) । पीहर । भेज दो । हे पति ।

---

७५. जीते-जी शरीर का दुर्ग से निकलना और जीव का शरीर से निकलना तथा मरना ये एक ही हैं । जीव के नष्ट होने पर (मरने पर) शव के रूप में यदि दुर्ग से निकलो, प्राणों के रहते दुर्ग को छोड़ कर न भागो, तभी पीछे अच्छा नाम रहेगा ।

७६. अकेले जलना कैसे बनेगा (अकेली सती कैसे होऊंगी) ? मेरे जी में कुछ संदेह हो रहा है । यदि उस (युद्ध के) दिन कायर बनो तो मुझे पहले ही पीहर भेज देना ।

अन्यार्थ—मुझे सती होने की लालसा है पर तुम कायर बनकर भाग आओगे तो मैं अकेली कैसे सती होऊंगी इसलिअे यदि तुम्हारे जी में कुछ भी संदेह [illegible]

: ७७ :

नायण ! आज न मांड पग,
काल्ह सुणीजै जंग
धारां लागै जे धणी,
तो दीजे घण रंग

: ७८ :

विण मरियां, विण जीतियां,
जे धव्र आवै धाम
पग-पग चूड़ी पाछटूं,
तो रावत-री जाम

---

७७. हे नाइन। आज। मत। महावर से रँग। पैरों को। कल। सुना जाता है। युद्ध। तलवार की धार में। लग जाय (लगकर काम आ जाय)। यदि। (मेरा) पति। तो। खूब। देना। रंग।

७८. बिना मरे, युद्ध में प्राण दिये बिना। बिना जीते, विजय प्राप्त किये बिना। यदि। पति। आवे। घर। पैर-पैर पर। चूड़ियां। पटक दूँगी। तो, तभी। राजपूत की, वीर की। संतान (जन्म, जम्म)। (हूं)।

---

७७. हे नाइन ! आज पैरों को मत रँग। कल युद्ध सुना जा रहा है। यदि मेरा पति तलवार की धार पर लग जाय (धार से कट कर मर जाय) तो इनको खूब रँगना—सती होने के पूर्व अच्छी तरह मेरा शृंगार करना।

७८. यदि मेरा पति बिना जीते अथवा बिना मरे लौट आवे तो चूड़ियों के टुकड़े करके पग-पग पर बखेर दूं, तभी मैं राजपूत की बेटी हूं (तभी मुझे राजपूत की बेटी कहना)।

: ७६ :

गोठ गया सब गेह्-रा,
वणी अचाणक आय
सिंघण - जायो सिंघणी
लीधी तेग उठाय

: ८० :

भागो कंत लुकाय धण,
ले खग आतां धाड़
पहर धणी-चा पूगरण,
जीती खोल किंवाड़

---

७६. गोष्ठी-भोजन में । चले गये । सब, सारे लोग । घर के । बना, युद्ध का सामा बन गया । अचानक । आकर । सिंहनी की । जन्म दी हुई, जनी हुई । सिंहनी ने । ली । तलवार । उठा ।

८०. भागे हुअे । पति को । छिपाकर । पत्नी । लेकर । तलवार । आते, आने पर । धाड़े के (डाके के) । पहनकर । पति के । वस्त्र । विजयी हुई । खोलकर । (घर के) द्वार ।

---

७६. घर के सारे लोग प्रीति-भोज में चले गये । पीछे से अचानक शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया । यह देख कर सिंहनी की बेटी सिंहनी ने (वीर माता की पुत्री वीर बाला ने) शत्रुओं का सामना करने के लिअे तलवार उठा कर हाथ में ले ली ।

८०. डकैतों के आने पर वीर पत्नी ने भागकर आये हुअे पति को छिपा दिया और पति के वस्त्र पहन कर तथा तलवार लेकर किंवाड़ खोल दिये और डाकुओं का सामना करके विजय प्राप्त की ।

: ८१ :

भाभी ! जांगड़ आपणा,
छिपै न लाखां गान
सूनै घर सिंधू थया,
आपां - रा मिजमान

: ८२ :

घोडां चढणो सीखिया
भाभी ! किसड़ै काम ?
बंब सुणीजै पारको,
लीजै हाथ लगाम

---

८१. हे भाभी (यहां पति की भाभी अर्थात् जिठानी का अभिप्राय है) । ढोली । अपने (हैं) । छिप सकता । नहीं । लाखों में (भी) । गाना । सूने, पुरुषों से रहित । घर में । सिंधू राग; सिंधू राग युद्ध में गाया जाता है । हुअे हैं, गाये जा रहे हैं । अपने । महमान (शत्रु) । (आ पहुंचे हैं) ।

८२. घोड़ों पर । चढ़ना । सीखा । हे भाभी । किस लिअे । बाजा । सुनायी पड़ता है । पराया (शत्रुओं का) । लीजिये । हाथ में । लगाम ।

---

८१. वीर देवरानी अपनी जिठानी से कहती है--

हे भाभी ! ये अपने ही ढोली है। उनका गाना लाखों में भी छिपा नहीं रह सकता। पुरुषों से रहित सूने घर में सिन्धू राग गाये जा रहे हैं। जान पड़ता है कि अपने महमान (शत्रु) आ पहुचे हैं।

८२. हे भाभी ! घोड़ों पर चढ़ना (घुड़सवारी करना) किस लिअे सीखा था ? (इसी समय तो उसका उपयोग है) । शत्रुओं का नगाड़ा सुनायी पड़ रहा है। अब घोड़े की लगाम हाम में लो (घोड़े पर चढ़कर शत्रुओं का सामना करने को बढ़ो) ।

: ८३ :

भाभो ! हूँ डोढ्यां खड़ी
लोधां खेटक - रूक
थे मनवारो पाहुणां
मेड़ी झाल बँदूक

वीर ननद

: ८४ :

पीहर पूछै खोलणी
पेई भूखण केर
हेड़वियां भाभी हँसी
नणद कनै नाळेर

---

८३. हे भाभी। मैं। ड्योढ़ी पर। खड़ी हूँ। लिये हुओ। ढाल और तलवार। आप। मनुहारिये, मनुहार कीजिये। पाहुनों को, शत्रुओं को। मेड़ी, अटारी (पर)। पकड़ कर, हाथ में लेकर। बन्दूक को।

८४. पीहर में (जाने पर)। पूछती है (गहनों के बारे में)। खोलने वाली (भावज)। पेटी, सन्दूक। गहनों की (सं० कृत-करिअ-कइर-केर)। देखने पर, देखकर (मि० हिन्दी हेरना) भावज। हँसी, हँस पड़ी। ननद (के) पास। नारियल (सं० नारिकेल)।

पाठान्तर—पीहर पूंचै (=पीहर पहुँचने पर)।

---

८३. शत्रुओं के अचानक आक्रमण करने पर वीर बाला अपनी जिठानी से कहती है—हे भाभी ! मैं ढाल और तलवार लिये हुओ डेवढ़ी पर खड़ी हूँ। तुम बंदूक लेकर मेड़ी पर से इन महमानों की मनुहार करो (इन्हें जिमाओ)।

८४. वीर बाला पीहर गयी तो उसकी भाभी ने उससे उसके गहनों के बारे में पूछा और उसकी पेटी को खोल कर देखा। पर पेटी को खोलने पर वहां गहना तो कोई दिखायी नहीं पड़ा, दिखायी पड़ा केवल अेक नारियल। ननद के पास केवल नारियल देखकर भाभी हँस पड़ी।

वीर नारियां नारियल सदा अपने पास में रखती थीं कि न जाने कब अचानक सती होना पड़ जाय और उस समय संभव है नारियल न मिले। सती होने के लिये साथ में नारियल होना आवश्यक था। ननद को सती होने के लिये सदा प्रस्तुत देखकर भाभी विनोद करती हुई हँस पड़ी।

: ८५ :

रण खेती रजपूत-री,
वैर न भूलै बाळ
बारह वरसां बाप-रो
लहै वैर लंकाळ

: ८६ :

और मुवा सुण ओहड़े
वरसां पांच विचाळ
घर-में मायड़ घातियो
बटकै पूंचाँ बाळ

---

८५. युद्ध। खेती, व्यवसाय। (है)। राजपूत की, वीर की। वैर को। नहीं। भूलता है। बालक (होने पर भी)। बारह वर्षों (की अवस्था) में (ही)। पिता का। ले लेता है। बैर, बैर का बदला। सिंह (जैसा पराक्रमी)।

८६. दूसरे। मर गये। सुनकर। रोककर। पाँच वर्षों के। बीच में, भीतर; जिसकी अवस्था पाँच वर्षों के भीतर थी। घर के अंदर। माता द्वारा। डाला हुआ, बन्द किया हुआ। पहुंचों पर बटके भरता है, गुस्से में भरा हुआ विवशता में कलाइयों को दांतों से खाता है। बालक।

---

८५. युद्ध वीर की खेती (व्यवसाय) है। बालक होने पर भी वीर अपने बैर को नहीं भूलता। सिंह के समान पराक्रमी वह बालक बारह बरस की छोटी अवस्था में ही पिता के बैर का बदला ले लेता है।

८६. घर के दूसरे लोग (युद्धभूमि में) मारे गये यह सुनकर माता ने बालक को, जिसकी अवस्था पांच वर्षों के बीच थी, रोक कर घर में डाल दिया (घर में बंद कर दिया)—इसलिए कि कम-से-कम वह तो युद्ध में न जाय और बचा रहे। परन्तु माता द्वारा घर में रोका हुआ वह बालक निकलने के लिए हाथों की कलाइयों में बटके भरने लगा।

: ८७ :

कुळ थारो रण-पौढणू,
मो-नूं कहती माय
प्राणां गाहक पेखियां
कजियो वरजै काय ?

: ८८ :

मन सोचे जाणे मती
मो-नूं बाळक माय!
वैर पराया वाहुड़ै,
जठै न घर-रा जाय !

---

८७. वंश, वंश के लोग । तेरा । युद्ध-भूमि में । सोने वाला । (है) । मुझ को । कहती थी, कहा करती थी । हे माता । प्राणों के ग्राहकों को, प्राण लेने वाले शत्रुओं को । देखने पर, देखकर । युद्ध को । बरजती है । क्यों ।

८८. मन में । सोच करना । जानकर । मत । मुझको । बालक । हे माता । वैर । दूसरों के । लिये जाते हैं । जहां = वहाँ । घर के (वैर) । नहीं । खाली जाते हैं, बिना चुकाये रहते हैं ।

---

८७. हे माता ! तू मुझे कहा करती थी कि तेरा कुल युद्ध-भूमि में सोने वाला है । फिर इस समय प्राण लेने वालों को देखकर मुझे लड़ने से क्यों रोक रही है ।

८८. हे माता ! मुझे बालक जानकर मन में चिन्ता मत करना । जहां पराये वैरों का बदला लिया जाता है वहां घर के वैर खाली नहीं जा सकते, उनका बदला लेना ही होगा ।

: ८९ :

बाप गयो ले माहेरो
काको जात कड़ूंब
तोय मचायी डीकरै
वैरी - रै घर बूंब

: ९० :

भोळा जाणे भूलिया
वरसां आठां बाळ
अेथ घराणै सिंघणी,
कंवर जणै सो काळ

---

८९. पिता। गया। लेकर। माहेरा (भात)। चाचा। 'जात' देने को। कुटुम्ब की। तो भी। मचा दी। बालक ने। शत्रु के। घर में। चीख-पुकार, रोना-पीटना।

माहेरा—लड़की या बहन के यहां विवाह आदि के अवसर पर पहरावनी लेकर जाना।

जात—मनौनी पूरी करने के लिअे देवता के स्थान की यात्रा।

९०. भोले (शत्रु)। यह जानकर। भूल गये, धोखे में पड़ गये। आठ बरसों में, आठ वर्ष की अवस्था में। बालक। (है)। इस। घर में, घराने में। सिंहनी के समान वीर बाला है। (वह जो भी) पुत्र जनती है। (वही)। काल (के तुल्य)। (होता है)।

---

८९. पिता माहेरा लेकर गया हुआ था और चाचा कुटुंब की 'जात' के लिअे, तो भी पुत्र ने बैरी के घर में हाहाकार (रोना-पीटना) मचा दिया—शत्रुपक्ष के सभी लोगों को मारकर।

९०. बावले शत्रु यह जानकर धोखे में पड़ गये कि बालक आठ वर्षों की अवस्था का है। उन्हें यह पता नहीं था कि इस घर में सिंहनी रहती है, और वह जो भी पुत्र जनती है वह काल ही होता है।

: ६१ :

सतियां-भड़ पूगा सुरग,
अेकौ रहियो आय ।
बीजा सौ कुळ - बाळ-नूं
भोळो देर भुलाय ।।

: ६२ :

बरस पांच वोळाव्रिया,
जाण छठै नह जेज ।
धण माता, मामै पिता
भोळव्रियो भाणेज ।।

---

६१. सतियां । वीर । पहुँचे । स्वर्ग को । अेक ही, अकेला । रहा । आकर । दूसरे । सब (लोग) । कुल के बच्चे को । भुलावा । देकर । भुलाते हैं, बहलाते हैं । अगला दूहा देखिये ।

६२. वर्ष । पाँच । बिताये । जाने में । छठे के । नहीं । देरी । (है) । (मामा की) पत्नी ने । माता (बनकर) । मामा ने । (पिता बनकर) । भुलाया बहलाये रखा । भानजे को ।

---

६१. पुरुष युद्ध में लड़कर मारे गये और स्त्रियां सती हो गयीं-- इस प्रकार घर के सब लोग स्वर्ग में पहुंच गये । कुल में केवल अेक बालक बच गया । दूसरे सारे (हितैषी) लोग उस बालक को भुलावा देकर बहलाये रखते हैं ।

६२. पांच बरस बीत गये । छठे के बीतने में देर नहीं है । अब तक मामी ने माता और मामा ने पिता बनकर वीर बालक को भुला रखा । —उसे पता नहीं चलने दिया कि उसका पिता शत्रुओं द्वारा मारा गया था और माता सती हो गयी थी । बालक को कहीं पता लग जाय कि उसका पिता शत्रुओं द्वारा मारा गया है तो वह तुरंत बैर का बदला लेने चल पड़े ।

: ९३ :

नानाणै घर जाणतां
छावै ऊ छक छाय
आप वसाया झूंपड़ा
वैर खळां चींताय

: ९४ :

बाप विसाया वैर जे,
लेवै निडर निराट
बेटा सिर - रा गाहकी,
बळिया जोवै वाट

---

९३. ननिहाल को। (अपना) घर। जानते हुए। बालक ने। उस। छाक में, जोश में। छाकर, भरकर। स्वयं। वसाये। (अपने अलग) झोंपड़े। वैर को। शत्रुओं के। याद करके।

९४. पिता ने। मोल लिये (व्यवसाय)। वैर। जो। उनका बदला लेते हैं। निर्भय। अत्यन्त। बेटे। सिर के। ग्राहक, लेने वाले। जले हुए (गाली); निकम्मे। वाट देखते हैं, प्रतीक्षा करते रहते हैं।

---

९३. ननिहाल को अपना घर समझने वाले उस बालक ने शत्रुओं के वैर का स्मरण करके जोश में भरकर स्वयं अपने अलग झोंपड़े बसा लिये। बालक ननिहाल को ही अपना घर समझता था, पर जब उसे असली बात का पता चला कि शत्रुओं ने उसके पिता को मार डाला और माता सती हो गयी तब शत्रुओं के वैर को याद करके वैर लेने को उसने ननिहाल का निवास छोड़ दिया और अपना अलग घर बसा लिया।

९४. पिता ने जो वैर मोल लिये अच्छे पुत्र नितान्त निर्भय होकर उनका बदला लेते हैं। जो निकम्मे हैं वे ही पुत्र, शत्रुओं के सिरों के ग्राहक होकर भी, वैर लेने के लिये प्रतीक्षा किया करते हैं।

२. वीर जेठूत

: ६५ :

दिन-दिन भोळो दीसतो,
सदा गरीबो सूत
काकी कुंजर काटतां
जाणवियो जेठूत

३. वीर भतीजा

: ६६ :

कहै भतीजो कूकतो,
सूना लोग हँसाय
आवो काका ! आज दिन
वंट बरोबर थाय

---

६५. प्रतिदिन । भोलाभाला, सीधासादा । दिखायी देता था । सर्वदा । गरीबी (दीनता) के स्वभाव या ढंग वाला । चाची ने । हाथियों को । काटते हुए, काटते समय । जाना, पहचाना (असलियत जानी) । जेठ के बेटे को ।

६६. कहता है । भतीजा । पुकारता हुआ । सूने, व्यर्थ । लोगों को । हँसाते है । आओ । हे चाचा । आज के दिन । सम्पत्ति का विभाजन । बराबर-बराबर । हो जाय ।

---

६५. जेठ का पुत्र सदा ही भोलाभाला, सदा ही गरीबी भरे स्वभाव का, दिखायी पड़ता था पर जब उसे युद्धभूमि में हाथियों को काटते देखा तो चाची ने उसकी वास्तविकता को जाना ।

६६. भतीजा पुकारता हुआ कहता है—हे चाचा ! व्यर्थ ही लोग हँस रहे हैं । आओ, आज के दिन युद्ध में सम्पत्ति का बराबर-बराबर विभाज हो जाय ।

४. वीर देवर

: ६७ :

रण सूता सब गेह-रा,
वचियो देवर आय
भाभी सुणतां वाहरू
लीधा लोह लुकाय

वीर पति—१

१. वीर दूल्हा

: ६८ :

तोरण जातां वाहरू
सुणियो अजकै वींद
लाखां हण लीधी सखी !
मोटै पड़वै नींद

---

६७. युद्ध में। सो गये, मारे गये। सब लोग। घर के बचा। देवर। आकर, लौटकर। भाभी ने। सुनते ही। 'वाहर' के ढोल (के शब्द) को। लिये। हथियार। छिपा।

६८. (विवाह के लिए) तोरण पर। जाते हुए। 'वाहर' के ढोल के शब्द को। सुना। वीर। दूल्हे ने। (लाखों) शत्रुओं को। मारकर। ली। हे सखी। बड़े रंगमहल में=युद्ध-क्षेत्र में। निद्रा।

---

६७. घर के सब लोग युद्ध-भूमि में सो गये (मारे गये)। केवल अेक देवर बचा। जब 'वाहर' के ढोल का बजना सुना तो भावज ने सारे हथियारों को छिपा कर रख दिया। भावज को डर था कि हथियार हाथ आ गया तो देवर 'वाहर' में जाये बिना नहीं रहेगा और वह चला गया तो मरने से पीछे नहीं हटेगा और फलस्वरूप वंश का नाश हो जायेगा।

वाहर—डाकू आदि गांव के गाय-बैल आदि को लेकर चले जाते हैं तो उनको छुड़ाने के लिअे गांव वाले चढ़कर पीछा करते हैं। इसे वाहर करना कहा जाता है। वाहर के लिअे गांव के लोगों को इकट्ठा करने के लिअे ढोल बजाया जाता है।

६८. हे सखी ! विवाह के समय तोरण की ओर जाते हुअे वीर वर ने 'वाहर' के ढोल का शब्द सुना। सुनते ही वह शत्रुओं पर चढ़कर चल दिया और लाखों को मारकर युद्धभूमि रूपी बड़े शयनागार में निद्रामग्न हो गया (सदा के लिअे सो गया)।

: ९९ :

खागां अंग वखेरियो
रण - रो - भूखो रूठ
वेखे साळो वींद-नूं
पछतावै परपूठ

: १०० :

ढोल सुणंतां मंगळी
मूंछां भूंह चढंत
चंव्नरी - में पीछाणियो
कंव्नरी मरणो कंत

---

९९. तलवारों से (तलवार के प्रहारों से)। शरीर को। (काट-काट कर) बिखेर दिया। युद्ध के। भूखे ने। रूठकर। देखकर (वीक्ष्)। साला। दूल्हे को। पछताता है। पीठ पीछे, छिपकर, मन-ही-मन।

१००. ढोल (का शब्द)। सुनते हुए, सुनने पर, सुनकर। मांगलिक, विवाह-सम्बन्धी। मोंछें। भौंहों पर। चढ़ जाती हैं। विवाह की वेदी में ही। पहचान लिया। कुमारी ने, दुलहिन ने। मरने वाला, युद्ध में प्राण देने वाला। (है)। पति।

---

९९. वर विवाह के लिअे ससुराल पहुंचा। इसी बीच शत्रुओं के साथ युद्ध छिड़ गया। वर भी युद्ध में सम्मिलित होने चला पर साले आदि ससुराल के लोगों ने उसे रोक दिया और उसे वहीं छोड़कर वे युद्ध में चले गये। इस पर वर रूठ गया और उसने तलवार के प्रहारों से अपने शरीर को काटकर बिखेर दिया। वर को इस अवस्था में देखकर साला पीठ-पीछे पछताया कि मैंने उसे जाने से क्यों रोका।

१००. विवाह के मांगलिक ढोल का शब्द सुनकर वर की मोंछें भौंहों पर जा चढ़ती हैं। यह देखकर कन्या ने (वधू ने) विवाह-वेदी पर ही जान लिया कि पति जीवित रहनेवाला नहीं।

: १०१ :

ग्रोव्र नमाड़े देखणो,
करणो सत्रु-सराह
परणंतां धण परखियो,
ओछी ऊमर नाह

: १०२ :

हथलेवै ही मुट्ठि-किण
हाथ विलग्गा माय !
लाखां वातां हेकलो
चूड़ो मो न लजाय

---

१०१. गर्दन। नवाकर। देखने वाला। करने वाला। शत्रुओं की। सराहना, प्रशंसा। विवाह होते समय (ही)। प्रिया ने। परख लिया। ओछी, अल्प। उम्र वाला। पति।

१०२. पाणिग्रहण पर (के समय) ही। मुट्ठी के। घट्ठों से। (मेरे) हाथ लगे। हे अम्मा। लाखों बातों के, निश्चित रूप से। अकेला (होने पर भी)। चूड़ियों को। मेरी। नहीं। लजावेगा।

किण—सूखे हुअे घाव का बाकी रहा निशान अथवा वह उभरा हुआ चिह्न जो तलवार आदि किसी वस्तु की पकड़ से रगड़ लगते-लगते पड़ जाता है।

---

१०१. वधू ने विवाह के समय ही पति की परीक्षा कर ली कि वह गरदन झुकाकर देखनेवाला (संकोच-शील) और शत्रुओं की वीरता की प्रशंसा करने वाला है, अतः निश्चित रूप से थोड़ी आयु वाला है।

१०२. अरी अम्मा ! पाणिग्रहण के समय हथेली के घट्ठों से मेरे हाथ लगे, मेरे हाथों का स्पर्श हुआ। इससे मैं जान गयी कि वह अकेला होने पर भी, चाहे कुछ भी हो, मेरी चूड़ियों को लज्जित नहीं करेगा (युद्ध से बिना जीते नहीं लौटेगा)।

१०३. [illegible] ।

: १०३ :

भोग मिलीजै किम, जठै
नरां-नारियां नास
यो ही मायड ! डायजो,
दीजे सूवस वास

: १०४ :

बंब सुणायो वींद-नूं
पैसंतां घर आय
चंचळ साम्हो चालियो
अंचळ - बंध छुडाय

---

१०३. भोग । मिलें । कैसे । जहाँ । पुरुषों और स्त्रियों का नाश (होता रहता है); पुरुष युद्ध में लड़ कर मर जाते हैं और स्त्रियां सती होकर मर जाती है । यह ही । हे अम्मा । दहेज । (है) । दीजिये । सुख से रहना ।

१०४. नगाड़ा, ढोल । सुनायी पड़ा । दूल्हे को । प्रवेश करते समय । घर में आकर; विवाह के बाद अपने घर में लौट कर आते ही । घोड़े के । सामने, को ओर । चल पड़ा । अंचल का बंध, बँधा हुआ अंचल । छुड़ाकर ।

---

१०३. जहां पुरुषों और स्त्रियों का निरंतर संहार होता रहता है वहां सुख के भोग कैसे मिलेंगे ? हे अम्मा ! मुझे दहेज में भोग की वस्तुअें नहीं चाहिअे, मेरा दहेज तुम्हारी यही कामना हो कि मैं सुख से रह सकूं ।

१०४. विवाह के बाद घर में प्रवेश करते समय वर को युद्ध के बाजे का शब्द सुनायी पड़ा । सुनते ही वह वधू के अंचल के बंधन को छुड़ाकर, चढ़कर युद्ध में जाने के लिअे, घोड़े की ओर चल दिया ।

१०४. यमक ।

: १०५ :

आक-पळासां झूंपड़ो
देवै कीध न हंत !
हियै न तो भी ऊतरै,
कीस लुभावै कंत !

: १०६ :

टोटै सरकां भींतड़ा,
घाते ऊपर घास
वारीजै भड़ - झूंपड़ां
अधिपतियां आवास

---

१०५. आकों और पलासों का । झोंपड़ा । दैव ने, विधाता ने । किया, दिया । नहीं । हाय । हृदय से । तो भी । नहीं । उतरता है, भुलाया जाता है । कैसा । लुभाता है । पति ।

१०६. टोटे के कारण, दरिद्रता के कारण । सरकंडों की भीतें (हैं) । डाल कर । ऊपर । घास । (जो बनाये गये है) । निछावर किये जायँ । वीर के (इन) झोंपड़ों पर । राजाओं के । निवास, महल ।

---

१०५. मेरे पति को विधाता ने आक और पलास के पत्तों का झोंपड़ा तक नहीं दिया फिर भी वह मेरे हृदय से नहीं उतरता। पति मुझे अपने शौर्य से कैसा लुभा लेता है !

१०६. दारिद्र्य के कारण सरकंडों की भींतें हैं और उनके ऊपर घास छाया हुआ है। इस प्रकार बनाये गये वीरों के झोंपड़ों पर राजाओं के महलों को भी न्यौछावर कर देना चाहिये।

: १०७ :

इसड़ै टोटै हूं सखी !
वारी वार अनंत
पोत जणी-में मोतियां,
चूड़ो मैंगळ-दंत

: १०८ :

विण दामां विळसै सदा
दामां दुरलभ नाग
न्याय भड़ां घर नारियां
चूड़ो-पोत सुहाग

---

१०७. ऐसे। टोटे पर, दारिद्र्य पर। मैं। हे सखी। बलिहारी हूं। बार। अनेक। माला, कंठ का गहना। जिसमें। गज-मोतियों की। चूड़ियां। हाथी के दाँतों की। चूड़ा=चूड़ियों का समूह।

१०८. बिना। दामों के। भोगते हैं। सदा। दामों से। दुर्लभ। हाथियों को। उचित ही। वीरों के। घर में। स्त्रियों के। हाथी दांतों की चूड़ियां और गजमोतियों की माला। सौभाग्य-सूचक, सुहाग के चिह्न। (होते हैं)।

---

१०७. हे सखी ! ऐसे दारिद्र्य पर मैं अनेकों बार बलिहारी होती हूं जिसमें कंठमाला गज-मोतियों की और चूड़ा हाथीदांत का प्राप्त हो। पति दरिद्र है पर वीर होने के कारण हाथियों को मार लेता है जिससे घर में गजमोतियों और हाथीदांतों का बाहुल्य है।

१०८. जो हाथी धन देने पर भी दुर्लभ हैं ऐसे हाथियों का वीर लोग धन के बिना ही उपभोग करते हैं। यह उचित ही है कि वीरों के घरों की स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न हाथीदांत का चूड़ा और गजमोतियोंकी कंठमाला हों।

१०८. लाटानुप्रास।

: १०९ :

पहल मिले धण पूछियो,
किण कीधा किण हथ्थ ?
बीजड़ साहे बोलियो,
इण डाकण भू अथ्थ !

: ११० :

पेटी-मौड़ छिपाविया
जाणूं घाव न जीव
हेली ! दिवसां पाहुणो,
पड़वे दीठो पीव

---

१०९. प्रथम बार । मिलने पर । प्रेयसी ने । पूछा । किण, घट्टे । किये । किसने । (तुम्हारे) हाथ में । तलवार । उठा कर (साधकर) । बोला । इस । डाकिनी ने । भूमि के निमित्त ।

१०९. यमक । रूपकअतिशयोक्ति (इण डाकण) । प्रश्नोत्तर ।

११० कमरबन्द और सेहरे से छिपाये गये । जानती हूं, मैंने समझा । घाव । नहीं । जी में । हे सखी । (थोड़े) दिनों का । महमान (है) । रंगमहल में । देखा । प्रिय को ।

---

१०९. प्रथम मिलन पर पत्नी ने पूछा—हाथों में किण किसने किये ? तब पति तलवार को पकड़कर बोला—इस डाकिनी ने भूमि (की रक्षा) के निमित्त ।

११०. हे सखी ! कमरबंद और मौर से छिपे हुअे होने के कारण मैंने जी में समझा था कि पति के शरीर में घाव नहीं है । पर रंगमहल में आने पर जब उसने कमरबंद और सेहरा उतार कर रख दिये तब मैंने उसके घाव देखे और वहीं देख लिया कि मेरा पति (थोड़े) दिनों का ही पाहुना है, शीघ्र ही युद्ध में मारा जायगा ।

: १११ :

गोरण दिन सूती सखी !,
वागा ढोल विणास
बांह्-उसीसो खींचियो,
जागी पटक निसांस

: ११२ :

काय कलाळी ! छळ कियो
सेज गुमावण रंग
फूल दुबारै छाकियो
चींतै चौगुण जंग

---

१११. विवाह के दूसरे दिन । सोयी थी । हे सखी । बज उठे । ढोल । विनाशकारी । बांह का तकिया । खींचा । जाग उठी । डालकर । निःश्वास ।

१११. रूपक ।

११२. क्या । हे कलालिन । छल, धोखा । किया । शय्या के आनन्द को गँवा देने वाला । फूल नामक मदिरा । दो-आतशी । छका हुआ । ध्यान करता है । चौगुना । युद्ध का ।

---

१११. विवाह के दूसरे दिन पति के साथ सोयी थी कि विनाशकारी युद्ध के बाजे बज उठे। सुनते ही पति ने अपनी बांह को, जिसे मैं तकिया बनाकर सोयी हुई थी, खींच लिया (युद्ध में जाने के लिअे उठ गया) और मैं निःश्वास छोड़कर जाग उठी।

११२. शय्या में अधिक आनंद मिले इसलिए पत्नी ने वीर को फूल नामक बढ़िया मदिरा पिलायी। पर शय्या में अधिक आन्द मिलने के स्थान पर सारा रंग नष्ट हो गया क्योंकि मदिरा का रंग चढ़ने पर वीर पहले से भी अधिक युद्ध की बात सोचने लगा। पत्नी मदिरा बनाने वाली कलालिन को उपालंभ देती हुई कहती है—हे कलालिन ! तूने मेरे साथ यह क्या छल किया, यह कैसी मदिरा बना लायी, कि शय्या का सारा आनंद ही नष्ट हो गया। इस फूल मदिरा से छका हुआ मेरा पति पहले की अपेक्षा चौगुना युद्ध का ध्यान करने लगा।

: ११३ :

मद लेतां भाखै मती
भोळी ! चाबुक भांत
छकियो लाखाँ छाँगसी
खाती डाहळ खांत

बीर पति—४

: ११४ :

किण दिन देखूं वाटड़ी
आतां पड़वै तूझ ?
घाव भरंतां आव गी,
वीतो जोवण मूझ

---

११३. मद्य, मदिरा। लेते हुए, लेते समय। बोलना। मत। हे भोली। चाबुक के समान (कठोर वचन)। (मदिरा में) छका हुआ। लाखों (शत्रुओं) को। काटेगा। बढ़ई। डाली को। जैसे।

११३. उपमा।

११४. किस दिन। देखूँ। बाट। आते हुअे। रंगमहल में। तेरी। घाव। भरते हुए। जीवन। बीत गया। यौवन। बीत गया। मेरा।

---

११३. हे भोली नायिका ! नायक के मदिरा पान करते समय चाबुक जैसे फटकार के कठोर वचन मत बोलना। मदिरा में छका हुआ वह वीर युद्ध में लाखों शत्रुओं को काटेगा जैसे बढ़ई अेक के बाद अेक पेड़ की डाली को काटता जाता है।

११४. हे प्रिय ! शयनागार में आते हुअे तुम्हारी प्रतीक्षा किस दिन करूं ? घाव भरते-भरते ही तुम्हारी उम्र बीत गयी और मेरा यौवन बीत गया।

: ११५ :

हेली ! पीअर देखियो
अेकण रात सुहाग
घर आयां धण जाणियो
दूणादूण दुहाग

: ११६ :

दिन - में देखूं जूझतो,
निस घाआं वरड़ाय
घड़ी न सूती नींद भर
हेली ! इण घर आय

---

११५. हे सखी। पीहर में। देखा। एक। रात। सुहाग, पति-मिलन। घर (ससुराल)। आने पर। प्रेयसी ने। जाना। दुगना-दुगना। दुहाग, सुहाग का उलटा; पति-मिलन का अभाव।

११६. दिन में। देखती हूँ। युद्ध करता हुआ। रात में। घावों (की पीड़ा) के कारण। बर्राता है। घड़ी भर भी। नहीं। सोयी। भर नींद। हे सखी। इस घर में, पति के घर में। आकर।

---

११५. हे सखी ! केवल पीहर में अेक रात को (सुहाग-रात को) मैंने सुहाग का सुख देखा। (पति के) घर आने पर तो प्रिया ने प्रतिदिन दुगना दुहाग ही देखा।

११६. अपने पति को दिन में तो युद्ध करता देखती हूं और रात में वह घावों के कारण बर्राता रहता है। हे सखी ! इस घर में आकर अेक घड़ी भी भर नींद नहीं सो पायी हूं।

: ११७ :

पहर चवत्थै पौढियो
गिणतो फौज गरीब
अेक घड़ी जक जीभ-नूं
वैरी आण नकीब !

: ११८ :

भाभी ! देवर नींद-वस,
बोलीजै न उताळ
वगतां घावां चैंकसी,
जे सुणसी बंबाळ

---

११७. पहर। चौथे। सोया। समझता हुआ। शत्रु-सेना को। दीन। अेक घड़ी, थोड़ी देर। आराम। जीभ को। हे बैरी। ला, दे। नकीब, चोबदार।

११८. हे भाभी। (तुम्हारा) देवर। निद्रा के अधीन, नींद में सोया हुआ। (है)। बोलिये। नहीं। उत्ताल, ऊंचे स्वर से, जोर से। बहते हुए। घावों के। चौंक उठेगा, कच्ची नींद में जाग पड़ेगा। यदि। सुन लेगा। युद्ध के बाजे (की आवाज) को।

---

११७. वीर की पत्नी नकीब से कहती है—मेरा पति शत्रु-सेना को निर्बल हुई समझकर कहीं रात के चौथे पहर में आकर सोया है। हे बैरी नकीब ! अपनी जीभ को घड़ी भर तो आराम दे, बोल कर उसे कच्ची नींद में मत जगा दे।

११८. हे भाभी ! तुम्हारा देवर नींद में सोया है। जोरों से न बोलो। कहीं नगारे की आवाज सुन लेगा तो चौंक कर बहते घावों में ही उठ पड़ेगा और युद्ध में चल देगा।

: ११९ :

धीरपियां सूतो धणी,
कुरळै चकवी ! काय ?
देखीजै मुख दीह - रै
सुख दो जाम सवाय

बीर पति—५

: १२० :

वैरी - वाड़ै वासडो
सदा खणंकै खाग
हेली ! कै दिन पाहुणो
ऊढा भाग सुहाग ?

---

११९. आश्वस्त हुआ हुआ । सोया है । पति । बोलती है । हे चकवी । क्यों । देखना । दिन के आरंभ में, दिन ऊगने पर । सुख । दो पहर । अधिक, अतिरिक्त ।

दो जाम सिवाय—कल मेरा पति युद्ध करेगा तो सूर्य उस अद्‌भुत युद्ध को देखने के लिजे अपना रथ ठहरा देगा और दो पहर तक ठहरा रहेगा, जिससे दिन दो पहर बढ़ जायगा । फलस्वरूप तू अपने चकवे के साथ दो पहर अधिक रह सकेगी ।

१२०. बैरियों के मुहल्ले में । निवास । (है) । सदा । खनखनाती है । तलवारें । हे सखी । कितने दिन । महमान, ठहरने वाला । विवाहिता का, पत्नी का । भाग्य । (और) । पति का सुख (सौभाग्य) ।

---

११९. हे चकवी ! क्यों शोर कर रही है ? मेरा पति थोड़ा आश्वस्त होकर सोया है । उसे क्यों जगाती है ? सवेरा होने पर, कल का दिन आने पर, दो पहर अधिक सुख देख लेना; अपने प्रिय के साथ दो पहर अधिक रह लेना ।

१२०. हे सखी ! बैरियों की बस्ती में निवास है, जहां सदा तलवारें बजती रहती हैं । इस अवस्था में विवाहिता का सौभाग्य और सुहाग कितने दिनों का महमान रह सकता है (कितने दिन ठहर सकता है, बना रह सकता है) ?

: १२१ :

मतवाळो जोबन सदा
तूझ जंवाई माय !
पड़ियां थण पहली पड़ै,
बूढी धण न सुहाय

: १२२ :

घर-घर वैर विसाविया,
दिन-दिन लूंबै धाड़
हेली ! मो धव टेकलो
जड़ै न धाम किंवाड़

---

१२१. मतवाला । यौवन का । सदा । तुम्हारा । जंवाई । हे अम्मा । पड़ने के । स्तनों के । पहले (ही) । युद्धभूमि में पड़ता है । वृद्धा । पत्नी । नहीं अच्छी लगती ।

१२२. घर-घर से, प्रत्येक घर से । बैर । मोल ले रखे हैं । दिन-दिन, प्रत्येक दिन । धाड़वी लूटने को आते हैं । हे सखी । मेरा । पति । टेक वाला । बंद करता है । नहीं । घर के किवाड़ ।

---

१२१. हे अम्मा ! तुम्हारा जंवाई (मेरा पति) सदा यौवन का मतवाला है । उसे बूढ़ी पत्नी अच्छी नहीं लगती इसलिअे वह पत्नी के स्तनों के शिथिल होने के पूर्व ही (पत्नी के बूढ़ी होने के पहले ही) युद्धभूमि में प्राण दे देगा ।

१२२. घर-घर से बैर मोल ले रखे हैं और दिन-प्रति-दिन धाड़वी डाका डालने को आते हैं । फिर भी मेरा टेकवाला पति घर के किवाड़ बंद नहीं करता, वे सदा खुले रहते हैं । अैसा निर्भीक है वह !

: १२३ :

मतवाळा माल्है सुहड़,
घोड़ा सांकळ - तोड़
हेली ! इण घर पाहुणो
आसी चूड़ विछोड़

: १२४ :

कंत मचाड़ै नह कधी
काचां - रे घर कूक
मुड़े विरोळै मांझियां
रोळै सोणित रूक

---

१२३. मतवाले । शान से चलते हैं । सुभट, योधा । घोड़े । जंजीरों को तोड़ देने वाले । (हैं) । हे सखी । इस । घर पर । महमान, शत्रु । (आक्रमण करने को) आवेगा । (अपनी पत्नी की) चूड़ियों को । छोड़कर, उतार कर, तोड़कर ।

१२४. पति । मचाता है । नहीं । कभी । बच्चों के, छोटी अवस्था वाले शत्रुओं के; या, निर्बल शत्रुओं के । घरों में । रोना-पीटना । (उनको नहीं मारता है) । मुड़कर, उन्मुख होकर, सामने जाकर । मथता है, विध्वस्त करता है । बड़े या प्रमुख वीरों को । सानता है, भिगोता है । लोहू में । तलवार को ।

---

१२३. जहां मतवाले वीर शान के साथ फिरते हैं और जहां के घोड़े जंजीरों को तोड़ देने वाले हैं, ऐसे इस घर पर हे सखी ! जो महमान होकर (शत्रु बनकर) आवेगा वह अपनी स्त्री के चूड़े को उतार कर ही (अपनी मृत्यु को निश्चित समझ कर ही) आवेगा। उसका मरना निश्चित है।

१२४. मेरा पति निर्बलों के घर रोना-पीटना नहीं मचाता (निर्बलों को नहीं मारता)। वह तो मुड़कर प्रबल वीरों को विध्वस्त करता है और उनके रक्त में तलवार को सानता है।

: १२५ :

मरतां सब खेती मिटै
जीवंतां जय-लाह
वरसां सोळह वैरियां
नथी विणासै नाह

युद्ध की तय्यारी

१. शत्रुओं का आक्रमण

: १२६ :

विण नूंतै घण पाव्रणा
हेली ! ढळिया आय
जाणै पीव्र परूसणो,
भूखो हेक न जाय

---

१२५. मरते ही, मरने पर। सारा। व्यवसाय। नष्ट हो जाता है। जीते हुअे, जीवित रहने पर। विजय की। प्राप्ति (लाभ)। सोलह वरसों (वाले); सोलह वर्ष के भीतर के शत्रुओं को। नहीं (नास्ति, णत्थि)। नष्ट करता है, मारता है। (मेरा) पति।

१२६. बिना। न्यौते के (निमंत्रण)। घने, बहुत-सारे (घन)। पाहुने, महमान (प्राघूर्णक); पाहुनों से अभिप्राय शत्रुओं का है। हे सखी। ढले। आकर। (आ पहुँचे हैं)। जानता है। पति। परोसना, महमानों को भोजन कराना। भूखा (बुभुक्षित), अतृप्त। अेक अेक, भी। नहीं। जावेगा, लौटेगा।

---

१२५. मेरा पति सोलह बरस के (छोटी उम्र के) शत्रुओं को नहीं मारता। क्योंकि उनके मर जाने से युद्ध का सारा व्यवसाय ही चौपट हो जाता है, पर जीवित रहने से विजय का लाभ प्राप्त होता है।

१२६. हे सखी ! **बिना बुलाये महमानों के समान बहुत-सारे शत्रु युद्ध करने के लिअे आ पहुँचे हैं। परन्तु जैसे मेजबान जानता है कि महमानों को भोजन कैसे कराया जाता है और वह उन्हें खूब अच्छी तरह भोजन कराता है जिससे अेक भी महमान भूखा रहकर नहीं लौटता, वैसे ही मेरा पति भी यह बात अच्छी तरह जानता है कि शत्रुओं को युद्ध करके कैसे तृप्त किया जाता है। उससे युद्ध करके किसी की युद्ध करने की हौंस बाकी नहीं रह जायगी; वे शत्रु फिर कभी किसी से युद्ध करने की इच्छा नहीं करेंगे।**

: १२७ :

सखी ! भरोसो नाह-रो,
सूनो सदन म जाण
फूल सुगंधी फौज-में
आसी भँवर - उडाण

२. पत्नी का पति को जगाना

: १२८ :

धण आखै, जागो धणी !
हूं कळ-कळळ हजार
विण नूंता-रा पावणा
मिलण बुलावै बार

---

१२७. हे सखी । विश्वास है । पति का (नाथ) । सूना, जनशून्य । घर । मत (मा) । जान । फूल पर । सुगंध से, सुगंध पाकर । सेना में । आवेगा (आइस्सइ) । भ्रमर की-सी उड़ान से, भ्रमर की तरह उड़कर ।

१२७. लुप्तोपमा ।

१२८. प्रिया । कहती है (आ+ख्या) । जागो । हे पति । हल्ला, शोर, कोलाहल । हजार प्रकार का । बिना न्यौते के महमान, बिना बुलाये आये हुए महमान (प्राघूर्णक), शत्रु । मिलने को । बुला रहे हैं । बाहर, घर के बाहर ।

---

१२७. हे सखी ! मेरा पति घर में नहीं है इसलिअे तू इस घर को सूना—रक्षकरहित—मत समझ । मुझे मेरे पति का विश्वास है कि शत्रुओं के आ पहुँचने की खबर पा कर वह उनकी सेना पर इस प्रकार टूटकर पड़ेगा जैसे फूल की सुगंधि पाकर भौंरा उड़कर फूल पर आ हुँचता है ।

१२८. पत्नी कहती है कि हे पति ! जागो, हजारों प्रकार का युद्ध का शब्द हो रहा है । बिना निमंत्रण के महमान (=शत्रु) बाहर भेंट करने के लिअे बुला रहे हैं ।

: १२९ :

पंथ निहारै पाहुणा,
गीध विहारै गैण
अमल कचोळां ऊझळै,
नींद विछोडो नैण

: १३० :

झूठ हाकै हुलसता
पीव ! वधाईदार
जागो, सिव सांचो कियो,
घूमै मैंगळ बार

---

१२९. मार्ग देख रहे हैं, प्रतीक्षा कर रहे हैं। महमान। गीध। विहार कर रहे हैं। उड़ रहे हैं। गगन में, आकाश में। अफीम। कटोरों में। उछल रहा है। नींद को। दूर करो। नेत्रों से।

१३०. झूठे। हल्ले पर। उल्लसित हो उठते थे। हे प्रिय। तुम्हारे बधाई-दार=तुम्हें युद्ध की वधाई देने वाले। जागो। भगवान शिव ने। सच्चा। कर दिया। घूम रहे हैं, मस्ती में झूम रहे हैं। हाथी (मदकल)। द्वार पर।

बधाईदार—किसी अच्छे काम की बधाई लेकर आने वाले दूत आदि।

---

१२९. महमान (=शत्रु) प्रतीक्षा कर रहे हैं। गीध आकाश में (भक्ष्य के लिए मांस-प्राप्ति की आशा से) उड़ रहे हैं। कटोरों में अफीम उछल रहा है (वीर अफीम-पान करने को प्रस्तुत हो रहे हैं)। हे पति ! नेत्रों से निद्रा को दूर करो—जागो और युद्ध में जाओ।

१३०. हे प्रिय ! युद्ध का झूठा हल्ला सुनकर ही बधाई देनेवाले तुम्हें युद्ध की बधाई देने के लिअे उल्लसित हो उठते थे। अब जागो, शिव ने उसे सच्चा कर दिया (युद्ध का सच्चा हल्ला हो रहा है)। मतवाले हाथी द्वार पर झूम रहे हैं।

: १३१ :

सुणतां हाको सहज-ही
कीधी जेज कदी न
नींदाळू ! अब छोडणा
भीड़ाणा कुच पीन

: १३२ :

औरां की फळ जागियां,
लड़णो जाग लँकाळ !
गुड़ै धणी-त्रा गाजणा
तो माथै त्रंबाळ

---

१३१. सुनते ही, सुनने पर। हल्ला। स्वाभाविक रूप से। की (किद्ध)। देर। कभी। नहीं। हे निद्रालु। अव। छोड़ना चाहिए, छोड़ो। भिड़े हुअे। स्तन। मोटे, पुष्ट।

१३२. दूसरों के (अपर, अवर)। क्या। फल, लाभ। जागने से। लड़ने वाले। जागो। हे सिंह। बजते हैं। स्वामी के। गरजने वाले। तेरे। सिर, बल पर। नगाड़े, बाजे।

१३२. रूपकातिशयोक्ति।

---

१३१. स्वाभाविक रीति से होने वाले हल्ले को सुनकर भी कभी उठने में देर नहीं की। हे नींद में सोये हुअे पति ! बाहर युद्ध का हल्ला हो रहा है, अंग से दृढ़ता से भिड़े हुअे मेरे स्तनों को अब छोड़ो--शय्या से उठो और युद्ध में जाओ।

१३२. दूसरों के जागने से क्या लाभ ! हे लड़नेवाले सिंह ! तू जाग। स्वामी के गर्जने वाले युद्ध के बाजे तुम्हारे ही सिर पर (तुम्हारे ही बल पर) बज रहे हैं।

: १३३ :

मतवाळा ! दळ आविया,
छोडीजै गळ-बांह
आभ त्रि-भागां ढंकियो
छोणी पाखर छाह

: १३४ :

कांकड़ त्रंबक त्रहकिया,
ऊठो, खुलियो कोट
सुणतां नाहर आळसी
सूतो बदळ करोट

---

१३३. हे मतवाले । शत्रु के कटक । आ पहुँचे । छोड़िये, छोड़ो । गलबांह को, अंकवार को । आकाश (अभ्र) । भालों से । ढक गया, छा गया । पृथ्वी (क्षोणी) को । पाखरों ने; पाखर-युक्त घोड़ों ने=घुड़सवारों ने । छा लिया ।

१३४. सीमा पर । बाजे । बज उठे । उठो । खुल गया । किला, किले का द्वार । सुनते ही, सुनकर । सिंह (जैसा वीर) । आलसी, आलस्य-भरा । (फिर) सो गया । बदलकर । करवट ।

१३४. रूपकातिशयोक्ति ।

---

१३३. हे मतवाले ! सेनाऐं आ पहुंची हैं। अब गल-बांह को (आलिंगन को) छोड़ो। आकाश भालों से ढक गया है और पृथ्वी को पाखरों से युक्त घोड़ों ने छा लिया है।

१३४. गांव की सीमा पर शत्रुओं के नगाड़े बज उठे और गढ़ का द्वार खुल गया। अब तो उठो। यह वचन सुनकर वह आलसी सिंह (=वीर) करवट बदल कर सो गया (उसे अपने पराक्रम का इतना विश्वास है कि जब चाहेगा तभी उठकर शत्रुओं को मार भगावेगा, अभी तो शत्रु दूर हैं)।

: १३५ :

देराणी ! द्रिग गीध-रा,
जेठ-स्रव्रण सैंजोड़
कोसां - चा सुण ढोलड़ा
ऊठै नींद विछोड़

: १३६ :

३. युद्ध की तय्यारी

आज सवेळो जागणो,
कसियो चर तोखार
प्यारा मिलिया पाहुणा,
मिजमानी - री वार

---

१३५. हे देवरानी । नेत्र । गीध के । (तुम्हारे) जेठ के । कान । समजोड़, एक जैसे, समान । कोसों (दूर) के । सुनकर । ढोल, ढोलों का शब्द । उठ पड़ता है । नींद को । छोड़कर ।

१३५. उपमा ।

१३६. आज । सबेरे, जल्दी । जागना । कसा । सेवक ने । घोड़े को । प्यारे । मिले । महमान=शत्रु । महमानी (मेजबानी) की । वेला, समय । (हो गयी है) ।

---

१३५. वीर पति की पत्नी अपनी देवरानी से कहती है—हे देवरानी ! गीध के नेत्र और तुम्हारे जेठ के कान अेक समान (तेज) हैं। वे कोसों दूर बजते हुअे ढोलों को सुनकर नींद को छोड़कर उठ खड़े होते हैं। गीध की आंखें बहुत दूर के पदार्थ को देख लेती हैं, तुम्हारे जेठ के कान बहुत दूर की युद्ध-वाद्यों की आवाज को सुन लेते हैं।

१३६. आज सबेरे जल्दी ही जाग उठे, सेवक ने घोड़ा भी कसकर त-यार कर रखा है। जान पड़ता है कि प्यारे महमान अर्थात् शत्रु आ पहुंचे है और महमानदारी का समय हो गया है।

: १३७ :

पेला कांकड़, पीव घर,
वीच बुहारै खेत
पण पग पाछा देण-रो,
हुसै अच्छर हेत

: १३८ :

दमँगळ विण दुमनो रहै,
जड़ै न कंगळ-जंत
सखी ! वधाज्रो त्यां भड़ां
जेथ जुड़ीजै कंत

---

१३७. शत्रु । सीमा पर । (मेरा) पति । घर में । बीच में । रणक्षेत्र को । बुहारते हैं, सफाई करते हैं । शपथ । पैर पीछे देने की, युद्ध से मुड़ने की । उल्लसित होता है । अप्सरा (के वरण) के लिए ।

१३७. अनुप्रास ।

१३८. युद्ध के । बिना । उदास (दुर्मनस्क) । रहता है । बांधता है । नहीं । कवच की कड़ियाँ । हे सखी । अभिनंदन करो, स्वागत करो । उन । योधाओं का । जहां, जिनके साथ । भिड़े, युद्ध करे । पति । (पति को युद्ध करने को मिले) ।

---

१३७. शत्रु सीमा पर हैं और पति घर पर है। बीच में युद्धक्षेत्र की सफाई कर रहे हैं। मेरे पति को युद्ध में पैर पीछे देने की शपथ है। वह अप्सरा (के वरण) के लिअे उल्लसित हो रहा है।

१३८. मेरा पति युद्ध के बिना उदास रहता है, वह कवच की कड़ियां भी बंद नहीं करता। हे सखी ! उन वीरों का स्वागत करो जिनके साथ पति युद्ध में भिड़ेगा और उसकी उदासी दूर हो जायगी।

: १३६ :

सुणतां हाको धन्न सखी !
मूंछ भुँहारां छूय
अेकण लाखां आंगमे
मेटे कर - कडूय

: १४० :

४. कवच-धारण

हूं हेली ! अचरज कहूँ,
घर - में बाथ समाय
हाको सुणतां हूलसै,
मरणो कौच न माय

---

१३६. सुनते ही । हल्ला । (मेरा) पति । हे सखी । मोंछें । भौंहों के बालों को । छूने लगती हैं । एक ही, अकेला । लाखों (शत्रुओं) को । अंगीकार करके, सामना करके । मिटाता है । हाथ की खुजली । (भाव यह कि खूब तलवार चलावे गा) ।

१४०. मैं । हे सखी । आश्चर्य (की बात) । कहती हूँ । घर में । दोनों बांहों में, अंकवार में । समा जाता है । (युद्ध का)हल्ला । सुनते समय, सुनकर । उल्लसित होता है, फूलता है । मरने वाला । (मेरा पति) । कवच में । नहीं समाता ।

---

१३६. हे सखी ! युद्ध का हल्ला सुनते ही मेरे पति की मोंछें भौंहों को छूने लगती हैं । वह अकेले ही लाखों वीरों का सामना करके अपने हाथ की खुजली मिटाता है ।

१४०. हे सखी ! मैं तुझे एक अचरज की बात कहती हूं कि मेरा पति घर में तो बाहुपाश में समा जाता है पर युद्ध का हल्ला सुनकर मरण-प्रिय वह अैसा फूलता है कि वह कवच में नहीं समाता ।

: १४१ :

सुण हेली ! ढोलै सहज
लेणो पड़व्रै लोच
कंत सजंतां सौ गुणो
कड़ो वजंतां कोच

: १४२ :

आळस आणै अैस-में
वपु ढीलै विकसंत
सींधू सुणियां सौ गुणो,
कव्रच न माव्रै कंत

---

१४१. सुन । हे सखी । ढीला हो जाता है, बढ़ता है । स्वभाव से, स्वाभाविक रूप से, सहज ही । लेने वाला । रंगमहल में । लोच । (मेरा) पति । (युद्ध के लिए) तय्यार होते समय । सौ गुना (फूल उठता है) । कड़ी के । बजते समय । कवच की ।

१४२. आलस्य । अनुभव करता है । विलास में, विलास के समय । शरीर । बढ़ता है । फूलते समय । सिंधु राग (यह युद्ध का राग होता है) । सुने, सुनने पर । सौ गुना । (बढ़ जाता है) । कवच में । नहीं । समाता । पति ।

१४२ अंत्यानुप्रास ।

---

१४१. हे सखी ! सुन, शयनागार में लोच लेने वाले (विकसित होनेवाले) शरीर का ढीला होना (बढ़ना) सहज है। पर मेरा पति कवच की कड़ियां बजते समय, युद्ध के लिअे सजते समय, सौगुना बढ़ जाता है।

१४२. रंगमहल में विलास के समय मेरा पति आलस्य का अनुभव करता है और उसका शरीर विकसित होकर बढ़ता है पर सिंधू राग सुनते ही वह सौ गुना बढ़ जाता है—इतना कि कवच में नहीं समाता, कवच छोटा पड़ जाता है।

: १४३ :

उरसां ढालां ऊघड़ी,
खड़ी अचानक आय
कड़ी लियंतां कंत-री
बड़ी-बड़ी विगसाय

: १४४ :

जिम-जिम कायर थरहरै
तिम-तिम फैलै नूर
जिम-जिम बगतर ऊबड़ै,
तिम-तिम फूलै सूर

---

१४३. आकाश में। ढालें। प्रकट हुई (उद्‌घटित)। खड़ी हुई अचानक। आकर। कवच की कड़ी लेते समय, कवच पहनते समय। बोटी-बोटी। फूल रही है।

१४४. ज्यों-ज्यों। कायर। कंपित होता है। त्यों-त्यों। फैलता है, प्रसारित होता है। तेज। ज्यों,ज्यों। बख्तर, कवच। सिकुड़ता है, छोटा (तंग) होता है। त्यों-त्यों। फूलता है। वीर। (वीरोत्साह के कारण उसका शरीर बढ़ता है)।

---

१४३. आकाश में ढालें दिखायी पड़ीं, और शत्रु-सेना अचानक आकर खड़ी हो गयी। कवच की कड़ियों को बंद करते हुओ—युद्ध के लिओ सजते हुओ—मेरे पति की बोटी-बोटी उमंग से फूल रही है।

१४४. ज्यों-ज्यों कायर कांपता है, त्यों-त्यों वीर का तेज फैलता है। ज्यों-ज्यों कवच तंग होता है, त्यों-त्यों शूरवीर (जोश से) फूलता है।

: १४५ :

लोहारी ! तो पीव-रा
वळे न पूजूं हथ्थ
फूलंतां रण कंत-रै
कड़ी समाणी मथ्थ

: १४६ :

कीधी घर-घर जोगणी,
दीधी नर-नर दाह
जोबन गो, आयी जरा,
की अब नाह ! सनाह ?

---

१४५. हे लुहारिन । तेरे । पति के । फिर । नहीं । पूजूंगी । हाथ । फूलते हुए, फूलते समय । युद्ध में । पति के । (कवच की) कड़ी । समा गयी, घुस गयी । माथे में (मस्तक) ।

पूजूं हत्थ—लुहार जब नया कवच बनाकर लाता था तब उसके हाथों की पूजा की जाती थी ।

१४६. कीं, बनायीं । घर-घर में । जोगिनें । दिया । नर-नर को । दाह, दाह-संस्कार । यौवन । चला गया । आ गयी । वृद्धावस्था । क्या । अब । हे पति । कवच पहनने से, युद्ध की तय्यारी करने से ।

दाह—दूसरा अर्थ=संताप ।

---

१४५. हे लुहारिन ! तेरे पति के हाथों को फिर कभी नहीं पूजूंगी । उसने कवच अैसा छोटा बनाया कि युद्धोत्साह से फूलते हुअे मेरे पति के माथे में कवच की (=टोप की) कड़ी घुस गयी ।

१४६. तुमने घर-घर में स्त्रियों को जोगनियां बना दीं और पुरुषों को चिता पर चढ़ा दिया । यौवन बीत गया, बुढ़ापा आ पहुँचा । हे पति ! अब कवच से क्या मतलब ? अब कवच पहनकर क्या करोगे ? बहुत युद्ध कर लिया, बहुत हत्या कर ली, अब युद्ध की तय्यारी करके क्या लाभ होगा ?

५. युद्ध-भूमि को प्रस्थान

: १४७ :

झंडा ओछाड़ै गयण,
वसुधा पाड़ै वाह
तो भी तोरण-बींद तिम
धीरो-धीरो नाह

: १४८ :

वाज कुमैत विसासतो
धीमै वेग ध्रपाय
भाभी ! तोरण वींद जिम
जोवौ, देवर जाय

---

१४७. झंडे। छा लेते हैं। आकाश को। पृथ्वी को। रौंदते हैं। घोड़े। तो भी। तोरण की ओर जाते हुए दूल्हे की भांति। धीरे-धीरे, धैर्य के साथ, बिना किसी घबराहट के। (जा रहा है)। पति।

१४७. उपमा।

१४८. कुमैत रंग के घोड़े को (वाजि)। विश्वास देता हुआ, आश्वस्त करता हुआ। धीमे। वेग से। तृप्त करके, संतुष्ट करके। हे भाभी। तोरण पर। दूल्हा। वैसे। देखो। (तुम्हारा) देवर। जा रहा है।

१४८. उपमा।

---

१४७. सेनाओं के झंडों से आकाश छा गया है; सेनाओं के घोड़े पृथ्वी को रौंद रहे हैं, वे वेग से इधर-उधर दौड़ रहे हैं; तो भी, मेरा पति, विवाहार्थ तोरण की ओर बढ़ने वाले वर के समान, धीरे-धीरे (निर्भीकता के साथ, बिना किसी घबराहट के) आगे बढ़ रहा है।

१४८. देवरानी अपनी जिठानी से कहती है—हे भाभी ! देखो, कुमैत घोड़े को धीमी चाल से सन्तुष्ट करके उसे आश्वस्त करता हुआ तुम्हारा देवर, तोरण की ओर जाते हुऐ दूल्हे की भांति, युद्धभूमि की ओर जा रहा है।

: १४९ :

देव़र भाभो ! देखणो
ढाहृण गज - नीसाण
सोकरड़ां-रा सिन्धु-में
पूगो पवन प्रमाण

: १५० :

कै दीठो हृय आंव़तो,
कै दीठो पर-फौज
हेली ! कव़ण सिखाव़ियो
उडणो-उडणो ओज ?

---

१४९. देवर । हे भाभी । देखिये । गिराने वाला । हाथियों पर से । झंडों को । (शत्रुओं के) घोड़ों के समुद्र में, समुद्र के समान अपार समूह में । पहुँचा, जा पहुँचा । वायु (के) । समान ।

१४९. रूपक, उपमा ।

१५०. या तो । देखा । घोड़े पर । आते हुए । या । देखा । शत्रुओं की सेना पर । हे सखी । किसने । सिखाया । उड़ने वाला, उड़ने वाला । शौर्य ।

---

१४९. हे भाभी ! अपने देवर को देखो जो हाथियों पर स्थित झंड नीचे गिरा देता है । वह पवन की भाँति (पवन की गति से) शत्रुओं के घोड़ों के समुद्र में जा पहुँचा । पवन समुद्र के जल को अस्त-व्यस्त कर देता है वैसे ही वह शत्रु-सेना को अस्तव्यस्त कर रहा है ।

सोकरड़ा—इसका अर्थ बाण भी किया गया है ।

१५०. या तो उसे घोड़े पर आता हुआ ही देखा या देखा शत्रुओं की सेना पर टूटता हुआ ही । इतना शीघ्र शत्रु-सेना पर टूटा कि मानो उड़कर आ पहुँचा हो । हे सखी ! यह उड़ने वाला, उड़ने वाला, शौर्य मेरे पति को किसने सिखाया ?

६. वीर का आतंक

: १५१ :

कढतो कै दीठो सखी !
मिळतो बाण समाण
कुबणैतां कर कंपिया
वळे न छूटा बाण

: १५२ :

पड़ै डहोळा छातियां
नजर पड़ंतां नाह
'आवै, आवै' ऊचरे
ओडो हेर सिपाह

---

१५१. अपनी सेना से निकलता हुआ। या तो। दिखायी पड़ा (दृष्ट)। हे सहेली। (या)। मिलता हुआ, भिड़ता हुआ, भीतर जाता हुआ। बाण के। समान। कायर योधाओं के हाथ। कांप उठे। फिर। नहीं। छूटे। बाण।

कुबणैत=कु+बानैत (कुत्सित या कायर योधा), अथवा=कमणैत (कमान धारण करने वाले, धनुर्धर योधा)।

१५२. पड़ते हैं। खड्डे। छातियों में। दृष्टि में। पड़ते ही। पति के। आ रहा है, आ रहा है। बोलकर। ओट, शरण। ताकता है। सैनिकों का समूह।

---

१५१. हे सखी ! मेरा पति बाण के समान या तो अपनी सेना में से निकलता हुआ ही दिखायी पड़ा या फिर शत्रु-सेना से भिड़ता हुआ हीं। उसे देखकर कायर योधाओं के हाथ कांप उठे, फिर उनके हाथों से बाण नहीं छूटे।

१५२. मेरे पति के दिखायी पड़ते ही सिपाहियों की छातियों में खड्डे पड़ने लगते हैं, और वे 'आ गया, आ गया' इस प्रकार कहते हुअे छिपने के लिअे ओट का स्थान ताकने लगते हैं।

: १५३ :

'आघा ! आघा !' ऊचरै
रावत तेथ हरोळ
पग खरड़ै, हळबळ पड़ै
बोलै गळबळ बोळ

७. युद्ध भूमि पर पहुंचना

: १५४ :

घण तोपां घर धूजियो,
कंत सहेली ! केथ ?
अेथ न भोली ! ईखणो,
झुकिया मैंगळ जेथ

---

१५३. दूर रहो, दूर रहो। बोलते हैं। योधा। वहां। हरावल में, सेना के अग्रभाग में। पैर। उलटे-सीधे पड़ते हैं। खलबली। पड़ जाती है। बोलते हैं। गलबल, अस्पष्ट। वचन।

१५४. घनी। तोपों से। घर। काँप उठा है। पति। हे सखी। कहाँ है। यहां। नहीं। हे भोली। देखना। झुके हैं, उमड़े हैं। हाथी (मदकल)। जहाँ=वहां (जहां युद्ध हो रहा है वहाँ)।

---

१५३. वहां, जहां मेरा पति युद्ध करने जा पहुँचा है, सेना के अग्रभाग के योधा 'दूर रहो, दूर रहो' पुकार रहे हैं, उनके पैर उलटे-सीधे पड़ते हैं, उनमें खलबली मच रही है और उनके मुंह से वचन अस्पष्ट निकलते हैं।

१५४. अनेक तोपों (के शब्द) से घर हिल उठा है। हे सखी ! पति कहाँ है ? (जो युद्ध में जाने को तय्यार हो जाय)। हे भोली ! उसे यहां मत देखो, वहां देखो जहां युद्ध के हाथी घिर रहे हैं (वह तो कब का युद्धभूमि में जा पहुंचा है)।

: १५५ :

काली ! नाहक की डरैं,
खेती - लाभ म खोय
धरती-रा जेथी धणी,
हूँकळ तेथी होय

: १५६ :

अजको, गहली-रो कळस,
वळती-रो नाळेर
अेकल पूगो टेकलो,
आस किसूं धव्र केर?

---

१५५. हे बावली ! नाहक, व्यर्थ । क्यों । डरती है । युद्ध-रूपी खेती अर्थात् व्यवसाय के लाभ को । मत । गँवा । पृथ्वी के । जहाँ । स्वामी । (होते हैं) । कोलाहल । वहाँ । होता है ।

१५६. चपल, वीर । बावली का गगरा और जलने वाली सती का नारियल, अर्थात् जिसका मरना निश्चित है । अकेला (ही) । पहुंच गया, जा पहुँचा । टेक वाला । आशा । क्या, कैसी । पति की (पति के जीवित रहने की) ।

१५६. रूपक ।

---

१५५. हे बावली ! व्यर्थ क्यों डरती है ? युद्ध रूपी खेती से होनेवाले लाभ को मत गँवा । जहां पृथ्वी के स्वामी होते हैं वहीं युद्ध का हल्ला होता है । अपने पति को युद्ध में जाते देखकर क्यों घबराती है ?

१५६. मेरा टेकवाला, वीर पति, जो पगली का घड़ा और सती का नारियल है, अकेला ही युद्ध में जा पहुंचा है । अैसे पति (के जीवित रहने) की क्या आशा ?

पगली का घड़ा—जो कभी भी गिरकर फूट सकता है । जिसका फूटना निश्चित है ।

सती का नारियल—जिसका जल जाना निश्चित है ।

: १५७ :

सीस कलंगी - सेहरो,
केसर - वोळ दुकूळ
कीजं मूझ चलावणो,
मरियो नावै मूळ

युद्ध

१. प्रतिपक्षियों का मिलन—अफीम-पान

: १५८ :

मिलतां ऊतरिया मरद,
साकुर बांधा सेल
मिजमानां जिम मंडिया
खोबांबाजी खेल

---

१५७. सिर पर (शीर्ष)। कलंगी और सेहरा। केशरिया रंग के। वस्त्र। कीजिये। मेरा। बिदा करना, बिदाई। मरा, मर चुका है। नहीं आवेगा, नहीं लौटेगा। मूल में, निश्चय ही।

१५८. मिलते ही, मिलने पर। (घोड़ों से) उतरे। मर्द, वीर। घोड़े। बांधे; बाँध दिये। भाले से, भाला जमीन में गाड़कर उससे। मेजबानों के समान। तत्पर हुअे। अंजली से अफीम पिलाने के खेल में।

खोबो—दोनों हाथों की अंजली। खोबाबाजी=गलाया हुआ अफीम अपनी अंजली में भरकर महमान को पिलाना और उसकी अंजली से स्वयं पीना।

---

१५७. मेरा पति दूल्हे की भांति सिर पर कलगी और सेहरा धारण करके तथा शरीर में केशर के रंग के वस्त्र पहन कर, मरने का निश्चय करके ही, युद्ध में गया है। अब तक वह अवश्य ही मर चुका है। वह लौटकर नहीं आवेगा यह निश्चित है। इसलिअे अब मेरी भी बिदाई करो—मुझे भी उसके साथ भेजने की व्यवस्था करो—मेरे सती होने की तय्यारी करो।

१५८. प्रतिपक्षी वीर मिलते ही घोड़ों से उतर पड़े। उन्होंने भाले जमीन में गाड़कर अपने घोड़े उनसे बांध दिये और मेजबानों के समान परस्पर अंजली से अफीम पिलाने का खेल आरंभ कर दिया।

: १५९ :

ऊगै जिम दूणा अमल,
लीजै आज अठेल
मर जाणी-रा खेल-में
घर जाणी-रा खेल

: १६० :

धीरा धीरा ठाकरां !,
इती उतावळ काय ?
लीजै खोबां गाळमा,
जमी कठै घुस जाय ?

---

१५९. उगे, नशा हो । ज्यों । दुगना । अफीम । लीजिये, पीजिये । मर जाने के खेल में । घर के जाने का, घर की बर्बादी का । खेल । (हो) ।

१६०. धीरे रहिये, धीरे रहिये; धीरज रखिये, धीरज रखिये । हे ठाकुरों, हे सरदारों (ठक्कुर) । इतनी (इयती) । उतावली, शीघ्रता (उत्+त्वरा) । क्या, किस लिअे, क्यों । लीजिये; पी लीजिये । अंजलियों से । गलाया हुआ अफीम । जमीन (जिसे जीतने जा रहे हैं) । कहां घुस जायगी; भागकर कहां छिप जायगी; वह यहीं रहेगी ।

---

१५९. आज बेरोकटोक अफीम लो जिससे दुगना नशा हो, युद्ध में मर जाने के खेल के साथ यह घर के जाने का (घर के नाश का) खेल भी हो जाय ।

१६०. हे सरदारों ! धीरज रखिये, धीरज रखिये, यों भागे क्यों जा रहे हैं ? इतनी जल्दी क्या है (किसलिअे है) ? अंजलियों से गलाया हुआ अफीम तो ले लीजिये । जमीन कहां घुसी जा रही है ? वह यहीं पड़ी रहेगी । बाद में भी जीत सकते हैं ।

: १६१ :

धीरा-धीरा ठाकुरां!,
जमी न भागी जाय
धणियां पग लूंबी धरा,
अबखी ही घर आय

: १६२ :

रंग अ-चाही जोगियां,
राउत वीरां रंग
इम खोबां ले ले अमल
जीतण पूगा जंग

---

१६१. धीरे-धीरे। हे सरदारों। जमीन। भागी नहीं जाती है। स्वामियों के पैरों से। लिपटी हुई, जुड़ी हुई। जमीन। कठिनता से ही। घर आवेगी, उस पर अधिकार होगा।

१६२. रंग है, धन्य है। चाह-रहित, इच्छाओं से रहित, निःस्पृह। योगियों को। राजपुत्र, क्षत्रिय। वीरों को। रंग है। इस प्रकार (अप० एम्व)। अंजलियों से। ले-लेकर, पी-पीकर। अफीम। जीतने के लिऐ (अप० जित्तण)। पहुँचे। युद्ध को।

---

१६१. हे सरदारों! जरा धीमे-धीमे। जमीन कहीं भागी नहीं जा रही है। वह अपने स्वामियों के पैरों से लिपटी हुई है कठिनता से ही तुम्हारे घर आवेगी।

१६२. निःस्पृह योगियों को धन्य है, और धन्य है क्षत्रिय वीरों को। इस प्रकार कहते हुऐ, अंजलियों से अफीम पी-पीकर, वे वीर युद्ध जीतने को (युद्ध में विजय प्राप्त करने को) युद्धभूमि में जा पहुँचे।

२. युद्ध का आरभ

: १६३ :

संपेखे वाल्हा सगा
मिल गळ-बथ्थां मार
पहली वाहण पाहुणां
मंडीजै मनुहार

: १६४ :

तोपां धर दरजां पड़ै,
झड़ै गिरां सिर झाट
जाणं सागर खीर-रै
मंदर-रो अरड़ाट

---

१६३. देखकर (सं+प्र+ईक्ष्=संपेख+अे)। प्यारे (वल्लभ)। समधी [स्वक(क)], शत्रु जो अपने कुल से भिन्न कुल के हैं। मिलकर, भेंटकर। गलबांही। मारकर, भरकर। पहले शस्त्र चलाने के लिअे, पहले वार करने के लिअे। पाहुनों से, महमानों से; प्रतिपक्षियों से। की जाती है। मनुहार, साग्रह प्रार्थना।

१६४. तोपों से, तोपों के शब्द से। धरा में, पृथ्वी में। दरारें। पड़ती हैं। झड़ते हैं, गिरते हैं। पहाड़ों के शिखर। आघात से। मानो। समुद्र में। क्षीर के। मंदराचल का। अरड़-अरड़ इस प्रकार का जोर का शब्द, भयंकर मथन-रव।

१६४. अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा।

---

१६३. प्यारे समधियों को (शत्रुओं को) देखकर गलबांहीं भरकर मिले और फिर अेक-दूसरे से, पहले शस्त्र का वार करने के लिअे, आग्रह करने लगे।

१६४. तोपों के चलने से जो शब्द हो रहा है उस से पृथ्वी में दरारें पड़ रही हैं और आघात से पहाड़ों की चोटियां टूटकर गिर रही हैं। यह शब्द अैसा हो रहा है मानो मंथन के समय क्षीरसागर में मंदराचल के आघात से घोर घड़घड़ाहट हो रही हो।

शेषनाग

: १६५ :

नाग ! द्रमंका को पड़े ?,
नागण ! धर मचकाय
इण-रा भोगणहार जे,
आज भिड़ाणा आय

कंकणी

: १६६ :

काय उताळी कंकणी !
जे मद पीव्रण जेज
कंत समप्पै हेकलो
कटकां ढाहि कळेज

---

१६५. हे नाग (=शेष नाग)। धमाके, धमंके। क्या। पड़ते हैं। हे नागिनी। पृथ्वी। लचकती है। इसके=इस पृथ्वी के। भोगने वाले हैं। जो। आज। भिड़े हैं, युद्ध कर रहे हैं। आकर।

१६५. प्रश्नोत्तर।

१६६. क्या=क्यों। उतावली। (है)। हे कंकनी। जो, बस। मद्य, मदिरा। पीने की (ही)। देरी। (है)। (मेरा) पति। (तुमको) समर्पण करेगा, देगा। अकेला (ही)। दलों को, सेना-समूहों को। (युद्ध-भूमि में) गिराकर। (सैनिकों के) कलेजे।

कंकनी=कंकिनी, कंक जाति की पक्षिणी, सफेद चील (मानक हिन्दी कोष); इसका पर्याय ढींच भी है, इसके पंख वाणों में लगाये जाते थे। कंकनी युद्धभूमि में मृतकों के कलेजे खाने को आती है।

---

१६५. शेषनाग की पत्नी घबरा कर शेषनाग से पूछती है—हे नाग ! ये धमाके क्या हो रहे हैं ? शेष नाग उत्तर देता है—हे नागिन ! यह पृथ्वी लचक रही है क्योंकि जो लोग इस पृथ्वी के भोगनेवाले है वे आज आकर युद्ध में भिड़ गये हैं जिसके फलस्वरूप ये धमाके हो रहे हैं।

१६६. वीर की पत्नी कंकनी को संबोधन करके कहती है—हे कंकनी ! क्यों उतावली हो रही है ? थोड़ी ठहर जा। मेरा पति मद्य पी रहा है, बस मद्य पीने भर की ही देर है फिर तो वह युद्ध करने लगेगा और अकेला ही सैनिकों के दलों को युद्धभूमि में गिराकर सैनिकों के कलेजे तुझे दे देगा, तू पेट भरकर खाना।

योगिनी

: १६७ :

जोगण ! पहली खाय पळ
करै उतावळ काय ?
भर खप्पर वाल्है रुधिर
देसी कंत धपाय

: १६८ :

कालो ! फील-कड़ाह ले,
की खप्पर तो हथ्थ ?
हेकै साथ धपाड़ही
मोवे दळ गज-मथ्थ

---

१६७. हे योगिनी। पहले (ही) । खाकर । मांस को । करती है । उतावली, शीघ्रता । क्या=क्यों । भरकर । खप्पर को । प्यारे (वल्लभ) । लोहू से । देगा (मेरा) पति । अघा, तृप्त कर।

जोगण—माना जाता था कि योगिनियां युद्ध भूमि में आकर खप्पर भर-भर रुधिर-पान करती हैं।

१६८. हे बावली; हाथी के शरीर जैसा बड़ा कड़ाह । ले । क्या। खप्पर । तेरे । हाथ में । अेक ही साथ । तृप्त करेगा । काटकर सेना के । हाथियों के माथों को ।

प्राठान्तर—काळी=हे कालिका, कालिका भी खप्पर में रुधिर भर-भरकर पान करती है।

---

१६७. वीर की पत्नी योगिनी को संबोधन करके कहती है—हे योगिनी ! तू पहले ही मांस खाकर क्यों जल्दी करती है ? थोड़ी ठहर जा। मेरा पति तेरे प्रिय रुधिर से तेरे खप्पर को भर-भरकर तुझे तृप्त कर देगा।

१६८. वीर की पत्नी योगिनी से कहती है—हे बावली। तूने हाथ में यह छोटा-सा खप्पर क्या ले रखा है ? हाथी के शरीर जैसा बड़ा कड़ाह हाथ में ले। मेरा पति सेना के हाथियों के माथों को काट-काट कर तुझे अेक ही साथ—अेक ही बार में—रुधिर से तृप्त कर देगा।

महादेव

: १६६ :

ईस ! घणा जे आखता,
तो लीजै सिर तोड़
धड़ अेकण धण-रो धणी
पड़सी वैर वहोड़

३. युद्ध-वर्णन

: १७० :

देख सखी ! होळी रमै
फौजां-में धव्र अेक
सागर मंदर सारखो
डोहै अनड़ अनेक

---

१६६. हे महादेव । घने, बहुत । यदि । बहुत उतावले, अत्यंत आतुर । तो । लीजिये । (मेरे पति के) सिर को । तोड़ । धड़ से (ही) । अेक-मात्र । (इस) प्रिया का । पति । गिरेगा । वैर को लेकर, वैर का बदला लेकर । वहोड़णो=लौटाना, बदला लेना ।

टिप्पणी—माना जाता था कि महादेव युद्धभूमि में आते हैं और बड़े वीरों के कटे हुअे सिरों को लेकर उन्हें अपनी मुंडमाला में पिरो लेते हैं । वीरों के सिरों को अपनी मुंडमाला में स्थान देने के लिअे वे बड़े आतुर रहते हैं ।

१७०. देख । हे सखी । होली । खेलता है । सेनाओं में । (मेरा) पति । अकेला । समुद्र को । मंदराचल । सरीखा, जैसा । मथ रहा है । न झुकने वाले । अनेक वीरों को ।

१७०. उपमा ।

---

१६६. वीर की पत्नी महादेव से कहती है—हे महादेव ! आप अपनी मुंडमाल के लिअे मेरे वीर पति के सिर को लेने के लिअे अत्यन्त आतुर हों तो फिर उसके सिर को तोड़कर ले ही लीजिये; मेरा पति बिना सिर के केवल धड़ से लड़कर ही शत्रुओं से अपने बैर का बदला चुका लेगा—धड़ से लड़ता हुआ ही शत्रुओं को मार गिरायेगा ।

१७०. हे सखी ! देखो, मेरा पति अकेला ही सेनाओं में होली-सी खेल रहा है । जैसे मंदराचल पर्वत ने समुद्र को मथ दिया था वैसे ही वह अनेकों न झुकने वाले वीरों को मथ रहा है (विध्वस्त कर रहा है) ।

: १७१ :

देख सहेली ! मो धणी
अजको वाग उठाय
मद-प्यालां जिम अेकलो
फौजां पीवत जाय

: १७२ :

पग-पग थटिया पाहुणा,
खागां सहणी खांत
पीव्र परूसै पांत - में,
भूलै केन दुभांत ?

---

१७१. देख । हे सखी । मेरा । पति । चपल, वीर । लगाम । उठाकर । मद्य के प्यालों की तरह । अकेला ही, सेनाओं को । पीता जा रहा है; विध्वस्त करता, समाप्त करता, जा रहा है (जैसे कोई शराबी मदिरा के प्यालों को एक-पर-एक करके पीता जा रहा हो—एक-एक करके खाली करता जा रहा हो) ।

१७१. उपमा ।

१७२. पैर-पैर पर । स्थित हैं, खड़े हैं, डटे हैं । महमान, शत्रु । तलवारों को । सहने वाली । इच्छा से । पति । परोस रहा है । पंक्ति में । भूल सकता है । कैसे । दुभांत करके, पक्षपात करके ।

दुभांत करना—एक पंक्ति में बैठे हुअे जीमने वालों को एक-सा भोजन नहीं देना, अथवा बीच में किसी को छोड़ देना ।

---

१७१. हे सखी ! देखो, मेरा वीर पति घोड़े की लगाम को उठाकर (घोड़े को चलाकर) सेनाओं को, मदिरा के प्यालों के समान, अकेला ही पीता जा रहा है (विध्वस्त कर रहा है) ।

१७२. पैर-पैर पर शत्रु तलवार के वार सहने की इच्छा किये हुअे खड़े हैं। मेरा पति पंक्ति बनाकर उनको परोस रहा है, वह दुभाँत करके किसी को कैसे भूलेगा ? वह पक्षपात करके किसी को नहीं छोड़ेगा, सब की इच्छा पूरी करेगा।

: १७३ :

सेजां-में घर-घर सखी !
आणै खजर अजाण
धारा-में राखै खजर,
सो कुण कंत समाण ?

: १७४ :

मूझ अचंभो हे सखी !
कंत बखाणूं कीस ?
बिण माथै वाढै दळां,
आंख हिये कै सीस ?

---

१७३. शय्याओं में। प्रत्येक घर में। हे सहेली। लाते हैं, दिखाते हैं। शान। मूर्ख। (तलवार की) धारों में। लावे, लाता है। शान। वह। कौन। (मेरे) पति के। समान। (है)।

१७४ मुझे। अचंभा (है)। हे सखी। पति का बखान करूं। कैसे (कीदृश)। बिना माथे के, सिर कट जाने पर भी। काटता है। सेनाओं को। आंख। हृदय में। (है)। या। सिर में।

१७४. विभावना।

---

१७३. हे सखी ! रंग-महल की सेजों में, विहार के समय, शान बघारनेवाले मूर्ख लोग घर-घर में हैं। पर जो तलवार की धारों में जाकर शान को रखे ऐसा व्यक्ति मेरे पति के समान दूसरा कौन है ?

१७४. हे सखी ! मुझे बड़ा अचंभा हो रहा है। प्रिय का वर्णन किस प्रकार करूं ? वह माथे के बिना ही (सिर कट जाने पर भी) सेनाओं को काट रहा है ? पर वह देखता कैसे है ? आंखें उसके सिर में हैं या हृदय में ?

: १७५ :

को हेली ! अचरज कहूँ,
कंत धणी-रे काज ?
मंच अधूरै मावतो,
आंख न मावै आज

: १७६ :

करड़रों कुच-नूं भाखता
पड़ता हंदी चोळ
अब फूलां जिम आंगमे
सेलां-री घमरोळ

---

१७५. क्या । हे सखी । आश्चर्य (की बात) । कहूं । पति । मालिक के लिए (कार्य, कज्ज) । शय्या पर । आधी । समाता था, आता था । आंखों में, । नहीं । समाता । आज ।

आंख न मावै—आज वह सारे युद्ध-क्षेत्र में छाया हुआ है, कभी यहां दिखायी पड़ता है तो कभी वहाँ; उसके समस्त कार्य-क्षेत्र को दृष्टिगोचर करना आँखों के लिअे असंभव हो गया है ।

१७५. अधिक ।

१७६. कड़ा, कठोर । कुच को । कहते थे । रंगमहल । की । आनन्द-क्रीड़ा में, विहार में । अब (युद्ध में) । फूलों के समान । लेते हैं, सहते हैं । भालों का । आघात, प्रहार ।

१७५. हे सखी ! आश्चर्य की बात को क्या कहूँ ? मेरा पति, जो आधे पलंग में आ जाता था, आज अपने स्वामी के लिए युद्ध करता हुआ आंखों में भी, दृष्टि के समस्त क्षेत्र में भी, नहीं समाता ।

१७६. हे सखी ! मेरे पति रंगमहल की आनंद-क्रीड़ा में मेरे कुचों को कठोर बताया करते थे। पर अब युद्ध करते समय छाती पर भालों के आघातों को फूलों के समान, ले रहे हैं।

: १७७ :

और चढ़ै गढ ऊपरां
नीसरणी-बळ नीठ
अजको धव्र पूगो उठै
मांकड़ मेल्हे पीठ

४. शस्त्र-प्रहार—बाण-प्रहार

: १७८ :

आ कमणैती कंत-री,
और न पूगै ओज
चिमठी खाली ह्वै जितै,
निमठी चाली फोज

---

१७७. दूसरे, दूसरे लोग (अपर)। चढ़ते हैं। दुर्ग (के) ऊपर। सीढ़ी (निःश्रेणिका) के सहारे से। कठिनता से (अनिष्टं, निट्ठ)। (मेरा) चपल पति। पहुँचा। वहां। बंदर को (मर्कट, मंकड)। रखकर। पीठ (पृष्ठ, पिट्ठ)। पीठ मेल्हे=पीछे रखकर, मात करके।

१७७. व्यतिरेक की ध्वनि।

१७८. यह। धनुर्विद्या, बाण चलाने का कौशल। पति की। दूसरा नहीं पहुँचता है, बराबरी करता है। तेजी में। चुटकी। खाली। होती है। जितने में, जितनी देर में (उतनी देर में)। समाप्त हो चली। (शत्रु-) सेना।

१७८. चपलातिशयोक्ति।

---

१७७. दूसरे लोग कठिनता से सीढ़ी के बल पर दुर्ग पर चढ़ पाते हैं। पर मेरा चपल पति बंदर को भी मात करके वहां जा पहुंचा (मेरा पति इतनी सरलता से दुर्ग पर जा चढ़ा जितनी सरलता से बंदर भी नहीं चढ़ सकता)।

१७८. हे सखी ! मेरे पति की इस बाण-विद्या के कौशल को कोई दूसरा नहीं पा सकता। जितनी देर में उसकी चुटकी बाणों से खाली होती है, बाण उसके हाथ से छूटते हैं, उतनी देर में शत्रुओं की सेना समाप्त हो जाती है।

: १७९ :

पैला सुणिया पांच सैं,
घर - में तीर हजार
आधा किण सिर ओलसी
जे खिजसी जोधार

: १८० :

हेली ! की अचरज कहूं,
कंत परां बळिहार
घर - में देखूं दोय कर,
रण - में होय हजार

---

१७९. सामने वाले, शत्रु । सुने हैं, सुने गये हैं । पाँच सौ । घर में । बाण। हजार । आधे । किनके । ऊपर । बरसावेगा, चलावेगा । यदि । क्रुद्ध होगा । योधा (युद्धकार) ।

१८०. हे सखी । क्या । आश्चर्य की बात । कहूं । पति । पर । बलिहारी हूं । घर में । देखती हूं । दो । हाथ । युद्ध में । हो जाते हैं । हजार ।

---

१७९. हे सखी ! सुना है कि शत्रु पांच सौ ही हैं, इधर घर में अेक हजार बाण हैं। यदि वह योद्धा क्रुद्ध होगा तो शेष आधे (बाकी बचे पांच सौ) बाण किन पर चलावेगा ? पांच सौ शत्रुओं को मार गिराने के लिअे पाँच सौ से अधिक बाणों की आवश्यकता नहीं होगी ।

१८०. हे सखी ! आश्चर्य की बात क्या कहूँ ?. घर में तो मैं अपने पति के दो ही हाथ देखती हूं पर युद्ध में जाकर वे हजार बन जाते हैं। बलिहारी हूं मैं अपने पति पर !

: १८१ :

असि-धावण ! तो पीव पर
वारी वार अनेक ।
रण झटकंतां कंत-रै
लगै न झाटक अेक

: १८२ :

भड़-घोड़ा मुँहगा थिया,
अेकण झाट उडंत
भड़-घोड़ां-रा भामणा,
जेथ जुड़ीजै कंत

---

१८१. हे सिकलीगरनी, (तलवार की धार लगाने वाली जाति की स्त्री) । तुम्हारे । पति पर । बलिहारी हूं । बार । अनेक । युद्ध में । वार करते समय । पति के । लगता है । नहीं । झटका । एक (भी) ।

१८२. सैनिक और घोड़े । महंगे, दुर्लभ । हो गये । एक ही । झटके से, तीव्र वार से । उड़ जाते हैं । सैनिकों और घोड़ों की । बलैयां (ली जाती हैं) । जहाँ । भिड़ता है । (मेरा) पति ।

---

१८१. हे सिकलीगरनी ! मैं तुम्हारे पति पर अनेक बार बलिहारी हूं। उसने तलवार की धार अैसी तेज बनायी कि युद्ध में प्रहार करते समय मेरे पति को जरा भी झटका नहीं लगता।

१८२. वीर और घोड़े मेरे पति के अेक ही झटके में (वार में) उड़ जाते हैं। इसलिये ये दोनों ही महंगे हो गये हैं। जहां मेरा पति भिड़ जाता है (युद्ध करता है) वहां वीरों और घोड़ों की लोग बलैयां लेते हैं, उनकी दीर्घायु की कामना करते हैं।

: १८३ :

तेग वखाणो कंत-रो,
आडै वाजि अछंट
वेखीजे जिम बाप-रै,
बेटां दो घर वंट

बरछे का प्रहार

: १८४ :

औरां-रा कर औरठै,
पड़िया पाड़ै बांग
जीव्र पखै ऊभा जठै
सखी ! धणी-री सांग

---

१८३. तलवार। बखानो, सराहो। पति की। आड़ी होकर चल जाती है। घोड़ों को। एकदम साफ, बिना लोहू का एक छींटा गिराये। देखा जाता है। जैसे। पिता के पुत्रों के। दो घरों में। बँटवारा।

१८३. उपमा।

१८४. दूसरे (वीरों) के। हाथ। वार करते हैं। (वहां)। गिरे हुअे। बांग मारते हैं (बुरी तरह चिल्लाते हैं)। प्राणों के। बिना, रहित (जैसे-के-तैसे) खड़े हैं। जहां। हे सहेली। (मेरे) पति का। बरछा=बरछे का प्रहार।

---

१८३. हे सखी ! मेरे पति की तलवार की प्रशंसा करो। वह तिरछी होकर घोड़ों के शरीरों में से एकदम साफ निकल जाती और घोड़े को बराबर दो हिस्सों में काट डालती है। ऐसा दिखायी पड़ता है जैसे बेटों के दो घरों में बाप के धन के दो बराबर भाग कर दिये गये हों।

१८४. दूसरे वीरों के हाथों से घायल होकर शत्रु रणभूमि पर पड़े हुअे पीड़ा से चिल्लाते रहते हैं। हे सखी ! शत्रु जहां प्राणरहित होकर भी ज्यों-के-त्यों खड़े हैं, समझ लो कि वहां मेरे पति के भाले का वार हुआ है।

: १८५ :

निरदय दीठा आन भड़,
कूकाव्रै पर-सेन
वाहै कंत दयाल ह्वै,
अरियां हाय सुणै न

५. वीर जेठ का युद्ध

: १८६ :

साम्है भालै फूटतो
पूग उपाड़ै दंत
हूं बळिहारी जेठ-री,
हाथी हाथ करंत

---

१८५. निर्दयी, दया-रहित। देखे। दूसरे (अन्य)। वीर। चिल्लाने को विवश करते हैं, जोर से रुलाते हैं। शत्रु-सेना को। (शस्त्र) चलाता है। (मेरा) पति। दयालु। होकर। शत्रुओं का। हाय-हाय शब्द। सुनता है। नहीं।

१८६. सामने आते हुए। भाले से। फूटता हुआ, बिंधता हुआ। (पास) पहुंच कर। उखाड़ लेते है। (हाथियों के) दाँतों को। मैं। बलिहारी हूं। जेठ की। हाथियों से। हाथ करते हैं, लड़ते हैं।

---

१८५. दूसरे वीरों को मैंने दयारहित देखा। उनके वारों से शत्रु-सेना के वीर घा. खाकर चिल्लाते रहते हैं। परन्तु मेरा पति दयालु होकर वार करता है; वह शत्रुओं क. चिल्लाना नहीं सुनता (शत्रुओं को अेक ही वार में निष्प्राण कर देता है)।

१८६. देवरानी जिठानी से कहती है—मेरे जेठ सामने से आते हुअे भाले के प्रहार से बिंधते हुअे भी हाथी के पास पहुंच कर उसके दांतों को उखाड़ डालते है। मैं जेठ पर बलिहारी हूं जो हाथियों से हाथ करते हैं (लड़ते हैं)।

: १८७ :

पहली झेलै पार-री,
बाहै अंस-उतार
जोओ भाभी !, जेठ - री
बळिहारी सो वार

: १८८ :

ओपै वाड़ी अमल-री
बैरी रंग-विरंग
अेको रंग-उतारणो
जेठ न दीठो जंग

---

१८७. पहले । झेलते हैं, अपने ऊपर लेते हैं। परायी, शत्रु की। (तलवार को=तलवार के वार को) । चलाते हैं, तलवार से वार करते हैं। कंधे को उतार देने वाला; ऐसा वार जिससे सिर कंधे से अलग हो जाय। देखो। हे भाभी। जेठ की। बलिहारी हूं। सौ बार, अनेक बार, बारबार।

१८८. शोभित होती है। बाड़ी, वाटिका। अफीम की। शत्रु। रंग-विरंगे। अेक। रंग को उतार देने वाला। जेठ। नहीं। देखा। युद्ध में।

---

१८७. हे भाभी! मैं जेठ पर सौ बार बलिहारी जाती हूं। देखो, वे पहले शत्रुओं के वार को झेलते हैं और फिर अैसा वार करते हैं कि शत्रुओं के सिर उनके कंधों से अलग हो जाते हैं।

१८८. रंग-बिरंगे वस्त्रों के शोभित शत्रुओं का समूह अैसा दिखायी पड़ता मानो रंगबिरंगे फूलों से युक्त अफीम की बाड़ी हो। परन्तु जेठ युद्ध में नहीं नहीं दिखायी पड़ता जो अकेला ही इन सब के रंग को उतार दे।

.. वीर देवर का युद्ध

: १८६ :

कंत घणो ह्। सांकड़ो
घेरो घर-रै दोळ
भाभो देखण हूलसै
सेलां-री घमरोळ

: १६० :

भाभी ! देव्रर हेकलो,
सोचीजै न लगार
मूझ भरोसो नाह-रो,
फौजां ढाहणहार

---

१८६. (मेरे) पति को। खूब ही। संकट में, नजदीक से। घेर लिया।
र के। चारों ओर। भाभी, भावज। देखने को: उल्लसित होती है।
ालों की। भिड़ंत।

१६०. हे भाभी, हे जिठानी। तुम्हारा देवर (=मेरा पति)। अकेला
है)। सोचिये, चिन्ता कीजिये। नहीं, मत। जरा भी। मुझे। भरोसा,
श्वास। (है)। नाथ का, पति का। (वह) सेनाओं को। गिराने वाला। (है)।

---

१८६. **वीर देवर की पत्नी कहती है—शत्रुओं ने घर के चारों ओर मेरे पति
ो खूब निकट से घेर लिया है। भाभी भालों की भिड़ंत को देखने के लिए
ल्लसित हो रही है।**

अन्वार्थ—हे पति ! घर के चारों ओर शत्रुओं का बहुत नजदीक से
गाया हुआ गहरा घेरा है। तुम शत्रुओं का सामना करो।

१६०. **वीर पति की पत्नी अपनी जिठानी से कहती है—हे भाभी ! तुम्हारा
वर अकेला है यह चिन्ता तनिक भी, बिलकुल ही, मत करो। मुझे अपने पति का
रोसा है कि वह सेनाओं को गिरा देनेवाला है।**

: १६१ :

देखीजै निज गोख-थी,
देव्रर-री हथ-वाह
भाभी ! थे गिणता खरच,
सो सीलै मो नाह

: १६२ :

जेठाणी ! भूलो हम
खरच दिखाणी रीस
देखो, देव्रर आछटै
हाथळ हाथ्यां सीस

---

१६१. देखी जाय, आप देखिये। अपने। गवाक्ष से, झरोखे से। (अपने) देवर की। हाथ चलाना (प्रहार करना); हाथ चलाने की रीति, प्रहार करने का ढंग। हे भाभी। आप। गिनती थीं। खर्च को। उसे चुकाता है, उसका बदला चुकाता है। मेरा। नाथ, पति।

१६२. हे जिठानी। भूल जाओ। अब। खर्च को देखकर होने वाली। रोष। देखो। (तुम्हारा) देवर। पटकता है, प्रहार करता है। हथेली। हाथियों के। सिरों पर।

---

१६१. देवरानी की उक्ति—हे भाभी ! अपने झरोखे से अपने देवर का हाथ चलाना देखो। तुम उन पर होनेवाले जिस खर्च को व्यर्थ का खर्च समझती थीं मेरा पति उसका बदला चुका रहा है।

१६२. हे जिठानी ! मेरे पति पर होनेवाले खर्च पर रोष करना अब भुला दो। देखो ! तुम्हारा देवर हाथियों के सिर पर हथेली से प्रहार कर रहा है।

: १९३ :

भाभी ! दिन-दिन बोळ में
कहता, वढणो कंत !
हमै निहारो, हाथियां
देवर पाड़ै दंत

: १९४ :

जाणो भाभी ! जेण गज
लटकंतो नीसाण
तेथी और न संचरै
देवर-रो आपाण

---

१९३. हे भाभी। प्रतिदिन। व्यंग में। आप कहती थीं। कटने वाला। (तुम्हारा) पति। अब। देखो। हाथियों के। (तुम्हारा) देवर। उखाड़ता है। दाँतों को।

१९४. जानो, समझो। हे भाभी। जिस। हाथी पर। लटकता हुआ। झंडा। वहां। दूसरा कोई। नहीं। जा सकता है। (तुम्हारे) देवर का। पराक्रम।

---

१९३. वीर पति की पत्नी अपनी जिठानी से कहती है—हे भाभी ! तुम प्रतिदिन व्यंग में कहती थीं कि तुम्हारा पति युद्ध में जाकर कटने वाला है ! अब देखो, तुम्हारा देवर हाथियों के दांत उखाड़ रहा है।

१९४. हे भाभी ! जिस हाथी पर झंडा लकटता हुआ दिखायी पड़े समझ लो कि यह तुम्हारे देवर का पराक्रम है; वहां और किसी की पहुंच नहीं हो सकती यह काम दूसरे से संभव नहीं।

८. वीर द्वारा शत्रुओं का विनाश

: १९५ :

होवै घर-घर हाय रे !,
रोवै बर - बर नार
भाभी ! देवर-नूँ कहो,
अब तो रोस उतार

: १९६ :

भाभी ! हेकण वर - में
वोळविया दस-वीस
अब तो देवर ओहड़ो,
संचै भार न सीस

---

१९५. होती है, हो रही है। प्रत्येक घर में, हाय-हाय, हाहाकार। अरे। रोती हैं, रो रही हैं। बर-बर करती हुई, बरबराती हुई। स्त्रियाँ। हे भाभी। (अपने) देवर को। कहो। (इतनी हत्या करने के पश्चात) अब तो। क्रोध को। उतारो, दूर करो।

१९६. हे भाभी। एक (ही)। बैर (को लेने) में; एक ही बैर का बदला चुकाने में। ले लिये। दस-बीस, बहुत सारे; बहुत सारे बैरों का बदला चुका लिया। अब तो। (अपने) देवर को। बरजो, रोको। संचित करे। (हत्या के पापों का) बोझ। नहीं। सिर पर।

---

१९५. अरे ! घर-घर में हाहाकार हो रहा है, नारियां बरबराती हुई रो रही हैं। हे भाभी ! अपने देवर को कहो कि अब तो क्रोध को छोड़े।

१९६. हे भाभी ! अेक बैर का बदला लेने में दस-बीस बैरों के बदले ले लिये। अब तो अपने देवर को रोको जिससे वह सिर पर हत्याओं का बोझा न बढ़ावे।

: १९७ :

आंटो सासू ? आप-रो,
सो लेबो कुळ-सार
जायो वरजो, जगत-रा
आंटा लियण उधार

: १९८ :

ईखो, घर-घर ऊतरै
चूड़ा भूखण चीर
दया न मानै दोयणां
बाई ! थां-रो वीर

१९७· बैर। हे सास। अपना। वह। लेना। कुल का मुख्य धर्म। (है)। (अपने) बेटे को। रोको। दुनिया भर के। बैरों को। उधार लेने वाले; जो अपने वैर ही नहीं, दूसरों के वैर भी लेने को तत्पर रहता है।

१९८. देखो। प्रत्येक घर में। उतर रहे हैं। चूड़ियों के समूह। गहने। वस्त्र। (शत्रु मर रहे हैं और उनकी स्त्रियाँ विधवाएं होकर शृंगारों को उतार रही हैं)। दया। नहीं। मानता है,करता है। दुर्जनों पर,शत्रुओं पर। हे बाईजी, हे ननद। आपका। भाई।

---

१९७. वीर की पत्नी अपनी सास से कहती है—हे सास ! अपने बैर का बदला लेना यह तो कुल का धर्म है। पर आपका बेटा दुनिया भर के बैरों को उधार ले रहा है (और उनका बदला ले रहा है)। उसे बरज दीजिये।

१९८. वीर की पत्नी अपनी ननद से कहती है—देखो, घर-घर में स्त्रियों के चूड़े, गहने और वस्त्र (सौभाग्य के चिह्न) उतर रहे हैं। हे ननद ! आपका भाई शत्रुओं पर दया नहीं दिखाता।

: १९९ :

और तमासा कायरां,
देखे नह, धन्न-बाण
घाव हबक्कै, भड़ बकै,
जिके तमासो जाण

: २०० :

रूंस सहर-री गामड़ै
आजे वणियो ओट
हाथाळै हण हाथियां
कीधा पंजर-कोट

---

१९९ दूसरे। तमाशे। कायरों के लिए। (हैं)। देखता है। नहीं। (मेरे) पति की। (यह) बान। (है)। घाव। हबकते हैं, रुधिर से छलछला कर चमकते हैं। योधा बड़बड़ाते हैं। जो, वह। (मेरे-पति को रुचिकर) तमाशा। जानो।

२००. होड़, समानता। नगर की। छोटे-से गांव का। आज। बना है। ओट। सबल हाथों वाले (वीर) ने। मारकर। हाथियों को। किये, बना दिये हैं। उनके अस्थि-पंजरों के। कोट (चहारदीवारी)।

---

१९९. दूसरे खेल-तमाशे तो कायरों के लिये हैं। मेरा पति उनको नहीं देखता। यह मेरे पति का स्वभाव है। उसके लिये तो रुचिकर तमाशा यह समझो कि घाव रक्त से छलक रहे हों और वीर प्रलाप कर रहे हों।

२००. आज गांव के चारों ओर शहर की भाँति ही ओट बन गयी है। सिंह जैसे सबल हाथोंवाले मेरे वीर पति ने हाथियों को मारकर उनके अस्थि-पंजरों की चहारदीवारी-सी बना दी है।

९. शत्रुओं की पराजय

: २०१ :

पेख सहेली ! पार-रा
झंडा खिण न रहाय
अेकण बाण उतारिया,
जाण सिखंडी जाय

: २०२ :

दीधा दिस-दिस लूंबिया
ऊठे कंत भजाय
कुंभकरण-रा झाड़िया
जाणै बंदर जाय

---

२०१. देख। हे सखी। उस ओर के, शत्रुओं के। झंडे। क्षण भर भी नहीं। रहते हैं, ठहरते हैं। एक ही। बाण से। उतार दिये। मानो। मोर। उड़े जा रहे हैं।

२०१ उत्प्रेक्षा।

२०२. दिये (=भगा दिये) दिशा-दिशा में, प्रत्येक दिशा में, चारों ओर। उमड़े हुअे, झुके हुअे। (शत्रुओं को)। उठकर। पति ने। भगा। कुंभकर्ण के। झाड़े हुअे,झटकारे हुअे। मानो। बंदर। जाते हों, भागे जा रहे हों।

२०२ अनुप्रास, उत्प्रेक्षा।

---

२०१. हे सखी ! देख, शत्रुओं के झंडे क्षण भर भी नहीं ठहरते। मेरे पति ने उन्हें अेक ही बाण से उतार फेंके। वे अैसे उड़े जा रहे हैं जैसे मोर उड़ कर भाग रहे हों।

२०२. चारों ओर आक्रमण के लिअे उमड़े हुअे (ऊपर आये हुअे) शत्रुओं को मेरे पति ने उठकर भगा दिया (मेरे पति ज्योंही उठे त्योंही आक्रमणोद्यत शत्रु भाग चले)। भागते हुअे वे शत्रु अैसे जान पड़ते हैं मानो लंका के युद्ध में कुंभ-कर्ण से लिपटे हुअे बंदर उसके झटकारते ही चारों ओर भाग चले हों।

: २०३ :

फूटै पुड़ नौबत पड़ी,
टूटै डंड निसाण
पेख सहेली ! पीव-रै
पूंचै वधियो पाण

: २०४ :

देख सखी ! धव्र-री दया,
पैलां उर दळ चाढ
आडै भालै ओहड़े
आवै कांकड़ काढ

---

२०३. फुटे हुए पुट (चर्मावरण) वाली । नौबत, नगाड़ों का समूह । (पड़ी हुई है) । टूटे हुए । डंडे वाले । झंडे । (पड़े हैं) । देख । हे सखी । (मेरे) पति के । हाथों के । बढ़े हुए । बल को, शक्ति को (प्राण) ।

२०४. देख । हे सहेली । (मेरे) पति की । दया को । शत्रुओं की । छाती पर । सेना को । चढ़ाकर । (उन को) आड़े, उलटे । भाले से । रोक कर, (आक्रमण करने से) रोकता हुआ । आता है, लौट आता है । (अपनी) सीमा के परे । निकाल कर ।

---

२०३. हे सखी ! मेरे पति की कलाई की बढ़ी हुई शक्ति को देखो । शत्रुओं के नगाड़े और झंडे पृथ्वी पर पड़े हैं—नगाड़ों के पुट (चमड़े) फूट गये हैं, और झंडों के डंडे टूट गये हैं ।

२०४. हे सखी ! मेरे पति की दया को देखो । वह शत्रुओं की छाती पर सेना को चढ़ाकर, आड़े भाले से ही उन्हें रोकता हुआ, उन्हें अपनी सीमा के बाहर निकाल आता है ।

अन्यार्थ— वह अपने को शत्रु-सेना की छाती पर चढ़ा देता है और उसे आड़े भाले से रोकता हुआ सीमा के बाहर निकाल आता है ।

: २०५ :

नाह न छोडै वीच ही,
दड़ियां जिम दोटाय
घर घाते रण-हूँसियां
आसी अरर जुड़ाय

: २०६ :

लख हेली! धण-रो धणी
करै न जुड़ियो कोप
पैंतीसां पग घींसतो
आवै डूंगर - ओप

---

२०५. पति । नहीं । छोड़ता है । बीच में ही । गेंदों की । भाँति । डंडों से पीट कर । (शत्रुओं के) घरों के भीतर । डालकर । युद्ध की हौंसवालों को । आवेगा, लौटेगा । किवाड़ । बन्द करवा कर ।

दौटाना—डंडा मार कर गेंद को फेंकना । **किवाड़ बंद करवाकर**—शत्रु भागते हुअे अपने घरों में घुस जायँगे और द्वार बन्द कर लेंगे तभी वह लौटेगा ।

२०५. उपमा ।

२०६. देख । हे सखी । (इस) प्रिया का । पति । करता है । नहीं । भिड़ा हुआ, भिड़ने पर । क्रोध । पैंतीसों क्षत्रिय-कुलों के, पैंतीसों कुलों के योधाओं के । पैरों को । घसीटता हुआ । आता है । पहाड़ की शोभा के साथ, पहाड़ जैसा ।

टि०—क्षत्रियों (राजपूतों के) छत्तीस वंश प्रसिद्ध हैं । उनमें अेक वंश वीर का अपना है, शेष पैंतीस वंशों के शत्रु हैं ।

२०६. उपमा ।

---

२०५. मेरा पति शत्रुओं को बीच मार्ग में नहीं छोड़ेगा । जैसे खिलाड़ी गेंद को डंडे से मार-मार कर आगे बढ़ाता है वैसे ही युद्ध की हौंसवाले उन शत्रुओं को वह शस्त्रों से मारता हुआ उनके घरों में पहुँचा देगा और जब वे घरों के दरवाजे बंद कर लेंगे तभी लौटेगा ।

२०६. हे सखी ! देख, इस प्रिया का पति युद्ध में भिड़कर भी क्रोध नहीं करता (शांति से लड़ता है) । पैंतीसों क्षत्रिय-कुलों को पैरों से घसीटता हुआ पहाड़ की भाँति आता है ।

: २०७ :

पाव्रस आयां जक पड़ै,
पैलां दहल अपार
भाजड़-री घर-घर भणै
हुव्रा लोह - अभिसार

: २०८ :

भागीजै तज भींतड़ा
ओडे जिम-तिम अंत
किण दिन दीठा ठाकुराँ!
काळा दरड़ करंत

---

२०७. वर्षा ऋतु (प्रावृष्)। आने पर। चन, शान्ति। पड़ता है। शत्रुओं को। दहल जाना, घबराहट। अत्यन्त अधिक। भगदड़ की। प्रत्येक घर में। बात करते हैं। होने पर। शस्त्रों का। प्रयाण, चढ़ाई।

२०८. भागिये, भाग चलो। छोड़कर। भीतों को, घरों को। ओट लेकर। जैसे-तैसे। अन्यत्र। किस दिन। देखे गये। हे सरदारों। काले, साँप। बिल। बनाते हुये।

---

२०७. वर्षा ऋतु में युद्ध बंद रहता है इसलिअे वर्षा ऋतु आने पर ही वीर पति के शत्रुओं को कुछ चैन मिलता है। अन्यथा सदा उन शत्रुओं में अपार भय छाया रहता है। शस्त्रों का अभिसार होने पर, आक्रमण आरंभ होने पर, उनके घर-घर में भागने की बातें होने लगती हैं।

२०८. जैसे हो वैसे ओट देकर इन घरों को छोड़कर अन्यत्र भाग जाओ। वीर इन को अपना घर बनावेगा। वीर अपने घर स्वयं बनाने का कष्ट नहीं उठाते। वे तो दूसरों के बने-बनाये घरों पर अधिकार करते हैं। हे सरदारों! काले नागों को भूमि में बिल बनाते हुए किस दिन देखा है? अर्थात् कभी नहीं। वे तो सदा दूसरों के बनाये हुअे बिलों पर अधिकार करके उनमें रहते हैं।

: २०९ :

मूँछ न तोड़ो कोट-में,
कढियां छोडै काळ
काळा-घर चेजो करै
मूसा पण मूंछाळ

: २१० :

कह पंथी ! जिण गाम धण,
फाटक घर न जुड़ाय
अब तो चूड़ो ऊबरै,
सूर धणी समझाय

---

२०९. मूंछों को। मत। (मरोड़-मरोड़ कर) तोड़ो। किले में। बाहर निकल जाने पर ही। छोड़ेगा। काल (के समान भयंकर)। (यह वीर)। काले सांप के। घर में, बिल में। चुग्गा (खाना-पीना) करते हैं, मौज मनाते हैं। चूहे। भी। बड़ी-बड़ी मूँछों वाले जवांमर्द (होकर); मोंछों पर ताव देते हुए।

२१०. कहो। हे पथिक। उस गाँव में जाकर। वीर की पत्नी को। (जहां) फाटक। घर के। नहीं बन्द किये जाते। अब तो। हमारी चूड़ियां, हमारा सुहाग। (तभी) बच सकता है। शूरवीर। पति को समझाओ।.

---

२०९. किले के भीतर बैठे-बैठे मोंछों के बालों को मत तोड़ो—मोंछों को मत मरोड़ो, मोंछों पर ताव मत दो, गर्व मत करो। काल के समान यह वीर किले से बाहर निकल जाने पर ही तुम्हें छोड़ेगा। देखो, आश्चर्य है कि मूषक भी सांपों के घर में बड़ी-बड़ी मोंछों वाले जवांमर्द बनकर चुग्गा करते हैं।

२१०. हे पथिक ! जिस गांव में जिस घर के फाटक बंद नहीं किये जाते उस गांव के उस घर की मालकिन से मेरा संदेसा कहना कि अब तो तू अपने वीर पति को समझा दे कि वह मेरे पति का पीछा छोड़ दे; तभी मेरा सुहाग बच सकता है।

: २११ :

जोड़ी हंदा घोर जम,
रोड़ी हंदा राव्र !
हूँ पच हारी हूलसी,
वारी, वालम ! आव्र

१०. विजयी पति का आगमन

: २१२ :

ढोल वरज, सब भेज घर,
धर नाळेर सु-धाम
घाव्रां कंत पधारिया,
पांव्रां हंत प्रणाम

---

२११. हे जोड़ी के घोर यमराज, पति को युद्ध में मारकर पति पत्नी की जोड़ी को खंडित कर देने वाले। हे रोड़ी के राजा। मैं। पचकर। हार गयी। उल्लसित हुई। बलिहारी (हूँ)। हे प्रिय। आओ।

२१२. ढोल को। रोक दे, बजना बन्द करवा दे। सबको। भेज दे। घर। रख दे। नारियल को। घर में। घावों से, घावों के सा । पधारे हैं, आये है। पांवों में, चरणों में। प्रणाम। (है)।

---

२११. अर्थ अस्पष्ट है।

२१२. वीर की पत्नी ने सती होने की सारी तैयारी कर रखी थी। इतने में पति विजय प्राप्त करके लौट आया। तब वह वीर-पत्नी सखी से कहती है— सती होने के ढोल को बन्द कर दे, अेकत्र हुअे सब लोगों को बिदा कर दे, नारियल को घर में रख दे; प्रियतम घावों के साथ लौटे हैं, उनके पैरों में मेरा प्रणाम है।

आक्रमणकारी शत्रु और डाकू

१. शत्रु-पत्नी की चेतावनी

: २१३ :

अमल कचोळां ऊभळै,
होदां केसर-रंग
पीव ! जिके घर जावतां
सीस न लीजे संग

: २१४ :

भीड़ै पळटाणा भिड़ज,
नीड़ै धण नाळेर
नाह ! इसा घर नूंतणा
आप घरां जळ दे'र

---

२१३. अफीम । कटोरों में । उछलता है । हौजों में । केसरिया रंग उछल रहा है (ऊपर तक भरा है) । हे प्रिय । उस । घर को । जाते हुए; उस पर आक्रमण करने को जाते समय । सिर को । मत । लेना । साथ । (अन्यथा वह अवश्य ही कट जायेगा) ।

२१४. कसते हैं । बदले हुए, नित-नये । घोड़े । निकट करती है । पत्नी । नारियल को । हे पति । ऐसे । घरों को । न्योता देना, ललकारना । अपने । घरों को । जलांजलि देकर ।

---

२१३. आक्रमण-कारी की पत्नी अपने पति को चेतावनी देती हुई कहती है—जिस घर में कटोरां में गलाया हुआ अफीम उछल रहा हो, हौजों में केशर का रंग उछल रहा हो, हे प्रिय ! उस घर को जाते समय (उस घर पर आक्रमण करते समय) सिर को साथ मत लेना—अैसे घर के वीर स्वामी पर आक्रमण करने से मृत्यु निश्चित है यह ध्यान में रखना।

२१४. जहां पर बारी-बारी से बदले हुअे घोड़े कसे जाते हैं और जहां की स्त्रियां सती होने के लिअे नारियलों को सदा निकट रखती हैं (सदा सती होने को तय्यार रहती हैं) अैसे घरों को न्यौता देना हो (युद्ध के लिए ललकारना हो) तो पहले अपने घर को जलांजलि दे कर अैसा करना।

२. वीर की पत्नी की चेतावनी

: २१५ :

माजन–मांगा लूंटियां
करता कवण सराह ?
ईं घर आया रावतां !
ईं रजपूती वाह !

: २१६ :

लोह-चिणां-रै चाबणै
दांत-विहूणा थाय
इण घर भोळां ! आवणो
जम-री कूट कढाय

---

२१५. महाजन, साहूकार। मांगने वाले। लूटने से। करते। कौन। सराहना, प्रशंसा। इस। घर पर। आये। हे राजपूतों, हे वीरों। इस। राजपूती को, वीरता को। धन्य है।

२१६. लोहे के चनों के। चबाने से। दांतों से रहित (विहीन)। होना पड़ता है। इस। घर पर। हे भोले लोगों। आना। यमराज की विडम्बना करके, यमराज को चिढ़ाकर, यमराज को क्रुद्ध करके।

२१५. वीर के घर पर चढ़ कर आने वाले सरदारों के प्रति कथन—महाजनों (व्यापारियों) और मांग खानेवालों को लूटने पर कौन आपकी सराहना करते? हे सरदारों! आप इस घर पर चढ़कर आये हैं। आपकी इस वीरता को धन्य है।

२१६. लोहे के चनों को चबाने से मनुष्य बिना दांत के हो जाते हैं। यही दशा तुम्हारी होगी। हे भोले सरदारों! इस घर पर आक्रमण करने को आना हो तो यमराज को चिढ़ाकर आना; यमराज को चिढ़ानेवाले की मृत्यु निश्चित है वैसे ही इस घर पर आक्रमण करनेवाले की मृत्यु भी निश्चित है।

: २१७ :

जम-री मूंछां ताणबो
अंग लगाबो आग
अेक न भोळां ! ऊबरो,
जे खीजाणो जाग

: २१८ :

कंत न छेड़ो ठाकुरां !
काळो जाण करंड
इण भोगी - रा जहर-थी
दूजो की जम-डंड ?

---

२१७. यमराज की। मोंछों को। खींचना। शरीर में। लगाना। आग। अेक भी। नहीं। हे भोले लोगों। बचोगे। यदि। खिज गया, क्रुद्ध हो गया। जाग कर।

२१८. (मेरे) पति को। मत। छेड़ो। हे सरदारों। काला सर्प। जानकर। करंड में, छबड़ी में, पिटारे में। इस। सांप के। जहर से (बढ़कर)। दूसरा। क्या। यम का दंड। (होगा)।

---

२१७. हे भोले लोगों ! इस वीर को ललकारना अैसा है जैसा यमराज की मोंछों को खींचना अथवा अपने शरीर में स्वयं आग लगा लेना। हे भोले लोगों ! यदि वह जागकर क्रुद्ध हो उठा तो तुम अेक भी नहीं बचोगे।

२१८. हे सरदारों ! मेरे पति को मत छेड़ो। उसे पिटारे में बैठा काला सर्प ही समझ लो। इस सांप के जहर से बढ़कर यम का दंड दूसरा क्या हो सकता है ?

: २१९ :

नींदाणो गिण टेकलो,
पुळो, न छेड़ो पीव़
जाय पुजाव़ो पाव़ई,
चूड़ो धण चिर जीव़

: २२० :

जीव़ीजै ऊमर जितै
सोय घरे धण संग
भोळाँ ! किण भरमाव़िया
इण घर लूंट उमंग

---

२१९. नींद में सोया हुआ। समझकर। टेक वाले। चल दो। मत। छेड़ो। (मेरे) पति को। जाकर। पुजाओ। पार्वती को, गौरी को। चूड़ा। पत्नी का। चिरंजीवी हो।

२२०. जीवित रहिये। उम्र। जब तक। सोकर। घर में। पत्नी के। साथ। हे भोले लोगों। किनके। भरमाये हुए, बहकाये हुए। इस घर को लूटने के लिए उत्साहित हो रहे हो।

---

२१९. हे सरदारों! मेरे टेकवाले पति को सोया हुआ समझकर मत छेड़ो। यहां से चल दो। घर लौट कर पार्वती की पूजा कराओ, जिससे तुम्हारी प्रियाओं का चूड़ा चिरंजीवी हो (तुम्हारी पत्नियों का सौभाग्य अखंड हो)।

टि०—सुहाग के लिए गौरी की पूजा की जाती है।

२२०. जब तक जीवन है तब तक घर में पत्नी के साथ सो कर जीवित रहो। हे भोले लोगों! किन के बहकाये हुये इस घर पर लूट की उमंग में चढ़ आये हो?

: २२१ :

पैलां-रै बहकाव़ियां
पड़ै सयाणा डूल
डाकण-रै घर डाव़ड़ा
भेजै जिकण म भूल

: २२२ :

भोळा की हठ ठाकुरां !
रोळा हेक न राह
गेह रहीजै रोव़णो,
देह सहीजै दाह

---

२२१. शत्रुओं के । बहकाने से । पड़ते हैं । समझदार (सज्ञान) । (भी) । भ्रांति में (डोलना, मन का चल-विचल हो जाना, किंकर्त्तव्य-मूढ़ता) । (और) । डाकिनी के । घर । बेटों को लड़कों को । भेजते हैं । जिसमें, इस बात में । नहीं । भूल, गलती ।

२२२. हे भोले ठाकुरों । क्या हठ (धारण कर रखा है) । शोर, उत्पात । एक भी । नहीं । उचित । घर में रहेगा । रोना-पीटना । शरीर में । सहना होगा । संताप; या अग्निदाह ।

---

२२१. शत्रुओं के बहकाने से समझदार भी भ्रम में पड़ जाते हैं और अपने बच्चों को डाकिनी के घर भेज देते हैं। इसमें कोई भूल नहीं।

जान पड़ता है दूसरों के बहकावे में आकर तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। तभी तो तुम यहां चढ़कर आये हो। तुम्हारी यहां निश्चित मृत्यु है, इसमें संदेह नहीं।

२२२. हे भोले सरदारों ! तुमने क्या हठ पकड़ा है ? तुम्हारा एक भी हल्ला उचित नहीं। इसका फल यह होगा कि तुम्हारे घर में रोना ही शेष रहेगा और तुम्हारे शरीरों को अग्निदाह सहन करना होगा (तुम मारे जाओगे और चिता पर चढोगे और तुम्हारे घर के लोग रोवेंगे) ।

: २२३ :

भूल न दीजै ठाकुरां !
पावक माथै पांव
राख रहीजै दाझियां,
तेथ धरीजै चाव

: २२४ :

सुण-सुण वीरा धाड़वी !
आलय देखो और
घर-री खूणै झूरसी
चख मग आतां चोर

---

२२ . भूल कर (भी)। नहीं। दीजिये, देना। हे सरदारों। आग के। ऊपर (मस्तक)। पैर। राख। (शेष) रहती है। जलने पर। वहां, उसमें। (यदि) रखा जाता है। चाव, अभिलाषा या अनुराग (चाह)।

२२४. सुन, सुन। हे भाई। डाका डालने वाले। घर। देखो। दूसरा। घरवाली। कोने में (बैठकर) छिपकर। रोवेगी। आँखों के मार्ग में आने पर, दिखायी पड़ने पर। चोर के, लुटेरे के, लुटेरे के रूप में तुम्हारे।

---

२२३. हे सरदारों ! भूलकर भी आग के ऊपर पैर मत देना। उसमें जलने पर राख ही बाकी बचती है, जब उसकी इच्छा की जाती है तो जलना पड़ता है और पीछे केवल राख ही रहती है।

२२४. हे भाई डाकू ! सुनो, सुनो, कोई दूसरा घर देखो। कहीं लुटेरे तुम मेरे पति की आंखों के मार्ग में आ गये (उसको दिखायी पड़ गये) तो फिर तुम्हारी घरवाली कोने में बैठकर रोवेगी।

मिलाओ – चोर की मां घड़े में मुंह डालकर रोती है। (कहावत)

: २२५ :

जात पिछाणै जात-री
औरां पीड़ न अैस
रे भोळा ! घण रोवसी
सो दुख मूझ विसेस

: २२६ :

नहँ वीरा ? त्रण-झूंपड़ै
धाड़ो अेथ खटाय
थावै दादुर-थाप-री
काळा-रै फण काय ?

---

२२५. जाति (ही)। पहचानती है। जाति (की पीड़ा) को। दूसरों को। पीड़ा। नहीं (होती)। अैसी। अरे भोले। (तुम्हारी) प्रिया। रोवेगी। वह। दुःख। मुझे। अधिक। (है)।

२२६. नहीं। हे भाई। तिनकों के झोपड़े में। लूट, डाका। यहां। निभेगा, पार पड़ेगा। होगा। मेंढ़क की। थाप का (प्रभाव)। सांप के। फन पर। क्या। (किसी धनी के यहां जाकर डाका डालो)।

---

२२५. सजातीय ही सजातीय की पीड़ा को जानता है, दूसरों को अैसी पीड़ा नहीं होती। अरे भोले लुटेरे ! (तुम्हारे मारे जाने पर) तुम्हारी घरवाली रोवेगी, इसी का मुझे विशेष दुःख है। तुम्हारे मारे जाने पर तुम्हारी स्त्री को कैसा भारी दुःख होगा यह मैं ही जान सकती हूं, क्योंकि मैं भी स्त्री हूं। अपनी स्त्री को अैसा कठिन दुःख मत देना।

२२६. हे भाई डाकू ! यहां तिनकों से बने हुअे इस झोंपड़े पर तुम्हारा डाला हुआ डाका पार नहीं पड़ेगा। काले नाग के फन पर मेंढ़क थाप की मारे (चपेट मारे) तो उससे नाग के फन का क्या बिगड़ेगा ?

: २२७ :

महलां लूटण धाड़वीं
झूंपड़ियां न सुहाय
झूंपड़ियां-री लूट-में
जीव सौलणै जाय

: २२८ :

लूंट पुळीजै झूंपड़ो
वीरा ! धार विवेक
वालम आयां वेचसी
अड़बां-रो त्रण हेक

---

२२७. महलों को लूटने वाले । लुटेरे को । झोंपड़ियां (झोंपड़ियों का लूटना) । नहीं सुखदायक होतीं । झोंपडियों को लूटने में । जीव, प्राण । बदले में, मोल चुकाने में । जाते हैं ।

२२८. लूट कर । चले जाओ । झोंपड़े को । हे भाई । धारण करके । विवेक, समझ । (मेरा) पति, वल्लभ । आने पर । बेचेंगा । अरबों (रुपयों) का । तिनका । एक ।

---

२२७. महलों को लूटने वाले डाकुओं को झोंपड़ियां सुखदायक नहीं होतीं । झोंपड़ियों को लूटने में प्राणों का मोल चुकाना होता है ।

२२८. हे भाई लुटेरे ! इस झोंपड़े को लूट कर समझदारी पकड़ कर घर की ओर चल देना । मेरा पति आ गया तो वह इस झोंपड़े के अेक तिनके को अरबों रुपयों में (बहुत महंगा) बेचेगा; इस झोंपड़े को लूटना तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा, बदले में प्राण देने पड़ेंगे ।

: २२६ :

धन ले वीरा धाड़वी !
अब कीजै न अवेर
अंथ धणी जे आवसी
सो-रो विकसी सेर

: २३० :

धाड़ब्रियाँ ! अजको धणी
भागो भड़ न भिड़ाव
जे कर कंडू ऊतरै,
पौढै अंग भिड़ाय

---

२२९. धन। ले लो। हे भाई लुटेरे। अब। कसे। मत। देर। यहां का। मालिक। यदि। आवेगा, आ पहुँचेगा। सौ (रुपयों) का बिकेगा। सेर भर।

२३०. हे डाकुओं।(मेरा) वीर पति। भागे हुए। वीर से। नहीं भिड़ता। तब। हाथ की खुजली। उतरती है, मिटती है। सोवे। (शरीर से) शरीर। मिलाकर।

---

२२९. हे भाई लुटेरे ! ले, यह धन ले ले और अब चला जा, देर न कर। यहां का मालिक कहीं आ पहुंचा तो सौ का सेर बिकेगा (यह सौदा बहुत महंगा पड़ेगा)।

सोरो हु० अन्यार्थ—शोरा रुपये का सेर बिकेगा; बहुत महंगा हो जायगा। शोरा घायलों की चिकित्सा में काम आता है। मेरा पति इतने डाकुओं को मार डालेगा कि शोरे की मांग बहुत बढ़ जायगी और वह बहुत महंगा हो जायगा।

२३०. हे धाड़ा (डाका) डालने वालों ! मेरा वीर पति भागे हुवे योधा से नहीं भिड़ता—युद्ध नहीं करता। उसकी हाथ की खुजली तब मिटती है जब वह शत्रु के अंग से अंग मिलाकर रणभूमि में सोता है, शत्रु को मार कर मरता है

३ बाहर

: २३१ :

फजरां चांपा घेरिया,
धूळी अंबर धूंद
कै धण माट विलोव्रसी,
कै घट जासी खूंद

: २३२ :

बीजा गांव्रां वाहरू,
नींदाणो घर नाह
ढोलणिय धण तेड़व्रै
गाण मँडाड़ै गाह

---

३३१. सवेरे के समय। गो-धन को, गायों के समूहों को। (शत्रुओं ने) घेर लिया। धूल की। आकाश में। धुन्ध (छा गयी)। या तो। प्रिया। मटके (में दूध) को। मथेगी। या। (गायें) जावेंगी। (वीर के) शरीर को। रौंद-कर।

३३२. दूसरे गांवों में। 'बाहर' का ढोल। (वज रहा है)। नींद में सोया है। घर में। पति। ढोलिनों को, ढोली जाति की स्त्रियों को, ढोल बजाकर गाने वालियों को। प्रिया। बुलाती है। गान। आरम्भ करवाती है। घर-में (?)।

---

२३१. सबेरा होते ही शत्रुओं ने गो-धन को घेर लिया। गोधन और शत्रुओं के पैरों से उठी हुई धूल से आकाश धुँधला हो गया। पत्नी का वीर पति उसे छुड़ाने को गया है। अब या तो वह उसे छुड़ा लावेगा और पत्नी मटके में दूध को मथेगी, अथवा वह प्राण दे देगा और गायें उसके शरीर को रौंदती हुई जायँगी।

२३२. पति घर में सोया था। इतने में किसी दूसरे गांव में 'बाहर' का ढोल बज उठा। उसे सुनकर वीर पत्नी पति को जगाने के लिअे ढोलिनियों को बुलाकर घर में गाना आरंभ करवाती है।

: २३३ :

पूगो नीठ पिछाणियो,
किसूं बुलायो काळ
कै पग मंडो ठाकरां !,
कै छंडो करवाळ

: २३४ :

भल वाहो, वाहो भड़ां !
आय खड़ो हूं हेक
आव्रध म्हा-रो ओडियां
वणै न वार विवेक

---

२३३. जा पहुँचा । कठिनता से । पहचाना । क्या, मानो । बुला लिया । काल को । या तो । पैरों को जमाओ. जमकर युद्ध करो, भागो मत । या । छोड़ दो । तलवार ।

२३४. खूब । प्रहार करो । प्रहार करो । हे वीरों (भट) । आकर । खड़ा हूँ । मैं । अेक, अकेला । आयुध, शस्त्र । मेरा । झेल लेने पर । बनेगा, रहेगा । नहीं । समय । होश का, ज्ञान का, सोचने-समझने का ।

---

२३३. पीछा करता हुआ वीर शत्रुओं के पास जा पहुंचा । शत्रुओं ने उसे कठिनता से पहचाना—क्या काल को ही बुला लिया ! फिर वीर ने ललकारते हुए कहा—हे सरदारों ! या तो पैर स्थिर करो (डट कर मुकाबला करने को तय्यार हो जाओ) या तलवार को फेंक दो ।

२३४. हे वीरों ! अच्छी तरह तलवार चलाओ । मैं अकेला ही आकर खड़ा हो गया हूं । मेरे शस्त्र का प्रहार झेलते समय विवेक (सोचने-समझने) के लिए समय नहीं मिलेगा ।

: २३५ :

गोलाँ ! किम मांडो गजर,
होताँ फजर हगाम
नीठ हियाँ आया नजर
जाणो धजर दु-जाम

: २३६ :

अरियां जे त्रण आपणा
मुख-मुख लीधा माय !
जाण न धव दीधा जिके,
लीधा फेर पड़ाय

---

२३५. हे गोलों, हे दासों। क्या। मांड़ते हो, करते हो। हो-हल्ला। होते ही। प्रातःकाल। युद्ध। बड़ी कठिनता से (अनिष्टं)। यहां। नजर आये, दिखायी पड़े। समझो। शाम। (केवल) दो ही पहर, थोड़ी ही देर।

२३६. शत्रुओं ने। जो। तिनके। अपने। मुँह-मुँह में, अलग-अलग मुँहों में। लिये थे। हे अम्मा। जाने। नहीं। दिये। पति ने। वे (भी)। वापिस ले लिये। गिरवा कर।

टि०—दीन होकर अधीनता स्वीकार करने के लिए मुँह में तिनके लिये जाते थे मानो यह कहते थे—हम तुम्हारी गाय हैं।

---

२३५. हे दासों ! सबेरे-सबेरे युद्ध आरंभ होते ही क्या हो-हल्ला मचा रहे हो ? बड़ी कठिनता से यहां दिखायी पड़े हो। यह शान दो ही पहर की समझो।

२३६. हे अम्मा ! शत्रुओं ने हार मान कर जो तृण अपने मुखों में लिये थे मेरे पति ने उन तृणों को भी नहीं जाने दिया। उनको भी फिर मुंह से निकलवा लिया।

: २३७ :

देराणी ! भाभी कहै,
हाथी-ढाहण हेठ
पांव्रां देव्रर पौढियो,
जिण-रै हौद जेठ

: २३८ :

उर-तळ वैरी आहणे
विरचे वयण-निव्राह
हौदां ऊपर हंस गो,
वारी वालम ! वाह !

---

२३७. हे देवरानी। भाभी (जिठानी)। कहती है। हाथी को गिराने वाला। नीचे। पैरों पर। देवर। सोया है (लड़ाई में मरा है)। जिस (हाथी) के हौदे पर। जेठ (सोया है)।

२३८. छाती के तले से। शत्रुओं को। मारकर। करके। वचन का निर्वाह। हौदों के ऊपर। प्राण। गया। बलिहारी हूं। हे पति (वल्लभ)। वाहवाह।

---

२३७. जेठानी देवरानी से कहती है कि हे देवरानी ! जिस हाथी के हौदे पर जेठ सोया है, नीचे उसी के पैरों के पास हाथियों को गिराने वाला देवर सोया है।

अर्थान्तर—देवरानी कहती है कि हे भाभी ! इ०।

२३८. छाती के तल से दबाकर शत्रु को मार डाला और प्रतिज्ञा पालन करके हाथी के हौदे पर ही प्राण दे दिये। हे प्रिय ! धन्य है तुमको, बलिहारी हूं मैं तुम पर।

: २३९ :

पग-पग है-व्रर पाड़िया
गे-व्रर माता गांज
रण-सेजां धव्र पोढियो
भड़ां गरूरी भांज

: २४० :

किण विध पाऊं आणियो
बोलंता जळ लाव्र
वांट्यो सांस बळोवळो
भालां हंदा घाव्र

---

२३९. पैर-पैर पर । घोड़े(हयवर) । गिराये । हाथी, गजवर । मतवाले । मार कर । युद्ध की शय्या पर । पति । सोया है । वीरों के । गर्व को । तोड़कर ।

२४०. किस प्रकार । पिलाऊँ । लाया हुआ । बोलने पर । पानी । ला । बाँट लिया । सांस को । बलपूर्वक । भालों के । घावों ने ।

---

२३९. घोड़ों को पग-पग गिराकर, मतवाले हाथियों को मारकर और वीरों के गर्व को तोड़कर मेरा पति रण-शय्या में सोया है।

२४०. 'पानी ला' कहते ही लाये हुए पानी को मैं पति को किस प्रकार पिलाऊं? भालों के घावों ने बलपूर्वक (या, चारों ओर से) उसके सांस को बांट लिया है। (?)

पाठान्तर—सास (मेरी सास ने जल को भालों के घावों के अनुसार सब घायलों को बांट दिया)।

पाठान्तर—वळोवळी=फिर-फिर कर, चारों ओर।

: २४१ :

समळी ! और निसंक भख,
अंबक-राह म जाह
पण धण-रो किम पेखसो
नैण विणट्ठां नाह ?

: २४२ :

गीध कळेजो, चोल्ह उर,
कंकां अन्त विलाय
तो भी सो धक कंत-री
मूंछा भ्रूंह मिलाय

---

२४१ हे श्यामला, हे चील । दूसरे (अंग) । निर्भय (होकर) । खा । आंखों के मार्ग पर, आंखों की ओर । मत । जा । प्रण-पालन । प्रिया का । कैसे । देखेगा । नेत्रों के । नष्ट होने पर (विनष्ट) । पति ।

२४२ गीध । कलेजे को । चोल्ह । हृदय को । कंक पक्षी । आंतों को । विलीन कर रहे हैं, खा रहे हैं । तोभी । वह । धाक । पति की । मोंछें । भौंहों से । मिल रही हैं, छू रही हैं ।

---

२४१. हे चील ! तू रणभूमि में सोये हुअे मेरे पति के दूसरे अंगों को भले ही खा पर नेत्रों की ओर मत जा। नेत्रों के नष्ट हो जाने पर मेरा पति अपनी प्रिया के प्रण-पालन को कैसे देख सकेगा? मैंने सती होने की प्रतिज्ञा की थी, वह मेरे सती होने को कैसे देखेगा?

२४२. गीधों ने कलेजे को, चीलों ने छाती को और कंक पक्षियों ने आंतों को विलीन कर दिया फिर भी मेरे पति का रोब वैसा ही है, उनकी मोंछें अब भी भौंहों को छू रही हैं।

: २४३ :

कंकाणी चंपै चरण,
गीधाणी सिर गाह
मो विण सूतो सेज-री
रीत न छंडै नाह

: २४४ :

पूगे होदै पौढियौ
ओडे घाव अथाह
कुच-भोळै गज-कुम्भ-नूं
नाहर भीड़ै नाह

---

२४३. कंकनी। चाँपती है, दबाती है। पैर। गिद्धनी। सिर। दबाती है। मेरे बिना। सोया हुआ। शय्या की। रीति को। नहीं। छोड़ता है। पति।

२४४. पहुंच कर। हौदे पर। सो गया। प्राप्त कर, खाकर। घाव। अनेक। स्तनों के। धोखे में। हाथियों के कुम्भ-स्थलों को। सिंह (जैसा)। दबाता है, आलिंगन करता है। पति।

---

२४३. कंकनी उसके चरणों को दबा रही है और गीधनी सिर को दबा रही है। मेरा पति मेरे बिना (रण-)शय्या में सोया है पर अपनी सोने की रीति को नहीं छोड़ता। सदा की भांति इस समय भी सिर और पैरों को दबवा रहा है।

२४४. सिंह जैसा मेरा वीर पति गहरे घावों को खाकर शत्रु के हाथी के हौदे पर पहुँचकर वहीं सो गया। वहां सोया हुआ वह घावों के नशे में पत्नी के कुचों के धोखे में हाथी के कुंभस्थलों को जोर से आलिंगन कर रहा है।

: २४५ :

पूगां-रा धड़ ऊपरा,
पेखे, सूतो पीव
छकियो घाव्रां हे सखी !
जाणे धण ही जीव्र

: २४६ :

रुख - रुख तीरां - रूकड़ां,
मुख-मुख वीरां मोळ
पूंचाळा हेकण पखै
दळ-में प्रबळ दरोळ

---

२४५. (स्वर्ग) पहुंचे हुओं के । धड़ों के । ऊपर । देख । सोया है । प्रिय । घावों से छका हुआ, घावों के नशे में । हे सखी । जानता है, समझता है । प्रिया को ही । जी में ।

२४६. प्रत्येक रुख में, प्रत्येक ओर, प्रत्येक दिशा में । बाणों से और तलवारों से । प्रत्येक मुख । वीरों का । मलिन । (है) । पहुँचे वाले, सशक्त पहुँचे वाले के । अेक ही । बिना । सेना में । जबर्दस्त । अस्त-व्यस्तता, दरार, भगदड़ ।

---

२४५. हे सखी ! देखो मेरा पति स्वर्ग को पहुंचे हुए शत्रुओं के धड़ों पर सोया है । घावों से छका हुआ (घावों के नशे में) वह जी में उन को पत्नी ही समझ रहा है—यह समझ रहा है मानो पत्नी ही अंक-शायिनी है ।

२४६. बाणों और तलवारों के प्रहारों से योधा दिशा-दिशा में भाग रहे हैं । उनमें से प्रत्येक योधा का मुख मलिन हो रहा है । उस अेक पहुंचे वाले (सशक्त कलाई वाले) के बिना सेना में जबर्दस्त अस्त-व्यस्तता फैल गयी है ।

: २४७ :

आसा-वासा याद कर
जीव़ निसांसा जाय
विण अेकण वानैत-रै
मुख-मुख फौज मुड़ाय

सती

: २४८ :

जे खळ भग्गा, तो सखी !
मोताहळ सज थाळ
निज भग्गा, तो नाह-रो
साथ न सूनो टाळ

२४७. अपने पास-पड़ोस के स्थानों को, अपने घरों को। याद करके जीव, प्राण। सांस-रहित होकर। चला जाता है। बिना। अेक। बानाधारी के वीर के। दिशा-दिशा में, ज़िधर-तिधर। सेना। मुड़ रही है, भाग रही है।

२४८. यदि। शत्रु। भागे हैं। तो। हे सखी। मोतियों से। सजा। थाल को। अपने (योधा) भागे हैं। तो। पति का। साथ। मत। सूना करके, उसे अकेले जाने देकर।। छोड़।

२४७. अपने घरों को और पास-पड़ोस के स्थानों को याद करके निःश्वासों के साथ सेना के प्राण निकल रहे हैं। उस अेक वीर के बिना सेना जिधर-तिधर भागी जा रही है।

२४८. हे सखी ! यदि शत्रु भागे हैं तो प्रियतम की आरती के लिअे मोतियों से थाल को सजा। और यदि अपने लोग भागे हैं तो प्रिय का साथ मत बिछुड़ने दे–मेरा पति निश्चय ही मारा गया है यह समझ कर सती होने की तय्यारी कर।

: २४६ :

ऊभी गोख अवेखियो,
पैलां-रो दळ सेर
पड़ियो धव्र सुणियो नहीं,
लीधो धण नाळेर

: २५० :

हूँ पाछै, आगै हुवे,
आणी नाह घरेह
जे वाल्ही धण जीव-हूं,
आगै मूझ करेह

---

२४६. खड़ी हुई। गवाक्ष में, झरोखे में। देखा (सं० अवेक्ष्)। सामने वालों का, शत्रुओं का। कटक। शेर, सबल, प्रबल। (भूमि पर) गिरा हुआ। पति को। सुना। नहीं। प्रिया ने। ले लिया। नारियल को (सती होने की तय्यारी कर ली)।

२५०. मैं। पीछे। आगे। होकर। (स्वयं)। लाये। पति। घर। यदि। प्यारी (वल्लभ)। (है)। पत्नी। जीव से। (तो अब)। आगे। मुझे। करेंगे।

---

२४६. झरोखे में खड़ी हुई वीर पत्नी ने शत्रुओं के दल को प्रबल होते हुवे देखा। पति का गिरना उसने नहीं सुना फिर भी (पति के धराशायी होने का संवाद मिला भी नहीं कि) उसने सती होने के लिये नारियल हाथ में ले लिया।

टि०—उसे विश्वास है कि जब तक पति जीवित है तब तक शत्रु-सेना प्रबल नहीं हो सकती। शत्रु-सेना को प्रबल देखकर उसने अनुमान कर लिया कि पति मारा गया और सती होने को तय्यार हो गयी।

२५०. मैं पीछे और स्वयं आगे इस प्रकार होकर पति मुझे अपने घर लाया था। यदि मैं उसकी प्राणों से भी प्यारी प्रिया हूं तो वह अब मुझे आगे करेगा (सती होने को जाते समय पत्नी आगे चलती है और पति का शव पीछे)।

: २५१ :

सूतो देव्रर सेज रण,
प्रसव्र अठी मो पूत
थे घर भाभी ! बांट थण
पाव्रो उभै प्रसूत

: २५२ :

भाभी ! कुळ-खेती विचै
भय न हुव्रै धव्र - भंग
चित-में खटकै मास चव्र
कुळटा सोक कुसंग

---

२५१. सो गया। (तुम्हारा) देवर। रण-शय्या पर। प्रसव हुआ। इधर। मेरे। पुत्र। आप। घर को। हे भाभी। बाँट कर। स्तनों को। दूध पिलाओ। दोनों। संतानों को।

२५२. हे भाभी। कुल के व्यवसाय में। भय। नहीं। होता। पति के नाश का। चित्त में। खटकता है, अखरता है। महीने। चार। कुलटा. गणिका, अप्सरा। सौत का साथ।

---

२५१. वीर पत्नी अपनी जिठानी से कहती है—हे भाभी ! तुम्हारा देवर रणशय्या पर सो गया है। इधर मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। अब तुम, घर की संपत्ति के समान ही, अपने दोनों स्तनों को बांट कर दोनों (अपनी और मेरी) सन्तानों को दूध पिलाओ (और इस प्रकार उन्हें पालो)।

रिर पत्नी के कहने का आशय यह है कि मैं तो अब सती हो रही हूं, इस नवजात शिशु का पालन तुम्हें ही करना होगा।

२५२. देवरानी गर्भवती है इसलिअे चार महीने तक सती नहीं हो सकेगी। वह जिठानी से कसती है। हे भाभी ! युद्ध तो कुल का व्यवसाय है। उस में पति के मारे जाने का डर मुझे नहीं। मेरे चित्त में तो यह बात खटकती है कि चार महीने तक पति को कुलटा अप्सरा के साथ रहना होगा।

: २५३ :

कुसुम - मोड़, केसर - वसण,
नेह न देह लसाय
भाभो ! कंत सकैक तो
ल्होड़ी सोक वसाय

: २५४ :

देराणी ! कुळ ऊपजी,
दो-ही पख विण दाग
की मुख ल्होड़ी सोक-रो,
थारो लियण सुहाग

---

२५३. फूलों का। मौर, सेहरा (मुकुट)। केशरिया। वस्त्र। प्रेम, मोह। नहीं। शरीर का। शोभा देता है। हे जिठानी। (मेरा) पति। संभव है, कदाचित्। छोटी सौत को बसा ले; अप्सरा को वरण कर ले।

२५४. हे देवरानी। कुल में। पैदा हुई (उत्पन्न)। दोनों ही पक्ष, (पिता का और माता का)। निष्कलंक। क्या मुँह है, क्या योग्यता है। छोटी सौत का, अप्सरा का। तेरा। लेने को। सुहाग।

---

२५३. हे जेठानी ! मेरा पति फूलों का मौर (सेहरा) और केशरिया रंग के वस्त्र पहने है (वर का सा वेश धारण किये हुअे है)। उसे शरीर का मोह भी नहीं है। इसलिअे बहुत संभावना है कि मेरा पति छोटी सौत को बसा ले—युद्ध में प्राण देकर स्वर्ग में पहुँच जाय और अप्सरा का वरण कर ले।

२५४. हे देवरानी ! तू अैसे कुल में उत्पन्न हुई है जो दोनों पक्षों में निष्कलंक है। क्या मुंह है छोटी सौत का—अप्सरा का—जो तेरी सौत बनकर तेरे सुहाग को छीन सके ?

कुल इ० —अन्यार्थ—तू ऊँचे कुल में उत्पन्न हुई है, तेरे दोनों पक्ष—पीहर और ससुराल—निष्कलंक हैं।

: २५५ :

कालो ! चूड़ो को तजै
मंगळ - वेळा रोय ?
राव़त - जायी डीकरी
सदा सुहागण होय

: २५६ :

साथण ! ढोल सुहाव़णो,
देणो मो सह - दाह
उरसां खेती, बीज धर,
रज - वट उळटी राह

---

२५५ हे बावली । चूड़ियों को । क्या । छोड़ती है, उतारती है । मंगल की बेला में । रोकर । वीर की जायी हुई । बालिका, पुत्री । सदा ही । सुहागिन । होती है । (पति के साथ जल जाती है अत: विधवा नहीं होती) ।

२५६. हे साथिन । ढोल । सुहावना । देने वाला । मुझे । सह-दाह, पति के साथ अग्नि-दाह । आकाश में । खेती (का फल) । बीज । पृथ्वी में (बोया जाता है) । वीरता के मार्ग की, क्षात्र-धर्म की । उलटी । रीति ।

---

२५५. हे बावली ! यह तो मंगल का अवसर है। इसको पाकर रोकर चूड़े को क्यों उतार रही है ? राजपूत की बेटी तो सदा ही सुहागिनी रहती है, वह सुहाग के चिह्नों को धारण किये हुए ही सती होती है।

२५६. हे साथिन ! पति के साथ अग्निदाह देनेवाला यह ढोल का शब्द बड़ा सुहावना लग रहा है। क्षत्रियों के (वीरों के) धर्म की रीति उलटी होती है—उनकी खेती का बीज पृथ्वी पर बोया जाता है पर फल आकाश में लगता है; वीर-कार्य पृथ्वी पर किये जाते हैं— युद्धभूमि में और चितापर—परन्तु उनके फल स्वर्ग में मिलते हैं।

: २५७ :

काळी करं वधावणो,
सतियां आयो साथ
हथळेवै जुड़ियो जिको,
हमै न छूटै हाथ

: २५८ :

बळती आखै वीर ध्रण,
पाय जरा लग जीत
वारी ध्रण, गळ-बांह-में
भीड़ो नाह ! नचींत

---

२५७. कालिका । करती है । बधावा । सतियों का । आया । साथ, समूह । पाणिग्रहण में । जुड़ा था । जो । अब । नहीं । छूट सकता । हाथ ।

२५८. जलती हुई, सती होती हुई । कहती है (आ+ख्या) । वीर पत्नी । पाकर । वृद्धावस्था पर्यन्त । विजय । बलिहारी है । प्रिया । गलबांह देकर । (उसे) भेंटो, गाढ़ आलिंगन करो । हे नाथ । निश्चिंत होकर ।

---

२५७. सतियों का साथ (समूह) आया । उसे देखकर कालिका उनका अभिनंदन करती है । पाणिग्रहण के समय जो हाथ जुड़ा था वह हाथ अब अलग नहीं हो सकता—पति-पत्नी का साथ अब नहीं छूट सकता ।

२५८. सती होती हुई वीर पत्नी कहती है—हे स्वामी ! तुम्हारी प्रिया तुम पर बलिहारी है, वृद्ध होने तक सदा विजय प्राप्त करते रहे, अब निश्चित होकर मुझे अंकवार में कस लो ।

: २५९ :

सखी ? नथी धव जीवतां
अरियां पायो चैन
बळतां लीधो गोद - में,
तो भी मूंछ मुड़ै न

: २६० :

कंत ! कहंता, सह - गमण
कीधां रहबो साथ
छोडो अच्छर - छेहड़ो,
सो धण झालै हाथ

---

२५९. हे सखी । नहीं (नास्ति) । पति के । जीते-जी, जीवित रहते । शत्रुओं ने । पाया । चैन, शान्ति ! जलते समय, सती होते समय । लिया । गोद में । तब भी । मोंछ । मुड़ती है । नहीं ।

२६०. हे पति । कहते थे । सह-गमन करने से, पति के साथ सती होने से । रहना हो सकेगा । साथ, एक साथ । छोड़ो । अप्सरा का । छोर, अंचल । ताकि । प्रिया । पकड़े । (तुम्हारे) हाथ को ।

---

२५९. हे सखी ! मेरे पति के जीते समय शत्रुओं ने कभी चैन नहीं पाया; और अब चिता में जलते समय (सती होते समय) भी, जब मैंने उसे गोद में ले रखा है, उसकी मोंछ नहीं मुड़ रही है (वह ज्यों-की-त्यों खड़ी है); उसकी धाक अब भी वैसी ही है ।

२६०. हे पति ! तुम कहते थे कि सह-गमन करने से (सती होने से) हम स्वर्ग में भी साथ रहेंगे। पर मेरे आते-आते तुमको अप्सरा ने अपना लिया। अब इस अप्सरा का अंचल छोड़ो जिससे तुम्हारी प्रिया तुम्हारे हाथ को पकड़े ।

: २६१ :

कालो अच्छर ! छक न कर
सूना धव्र अपणाय
सूर किसो पाखै सती
वौळो ! सुरग वसाय ?

कायर
१. चेतावनी

: २६२ :

रखे पधारो राव्रतां !
नमक धणी-रो नाख
जम-रो पड़सी पास जद,
ऊघड़सी तद आँख

---

२६१. बावली । अप्सरा । गर्व । मत । कर । सूने, अकेले, पत्नीहीन । पतियों को । अपना कर, वरण करके । शूर । कौन-सा । बिना । सती के । हे बावली । स्वर्ग को । बसाता है (स्वर्ग में बसने आता है) ।

२६२. मत । जाओ, भागो । हे वीरों (राजपुत्र—राजउत्त, राउत्त) । नमक । स्वामी का । फेंककर, अवज्ञा करके । नमक इ०—स्वामी की नमक-हरामी करके । यम की । (गले में) पड़ेगी । फांसी, फंदा । जब । खुलेगी (उद्घाटन) । तब । आँख । (मरने पर नरक-यातना भोगोगे तब पता चलेगा)।

---

२६१. हे बावली अप्सरा ! सूने (पत्नियों से रहित) पतियों को अपना कर गर्व मत कर। हे बावली ! अैसा शूरवीर कौन-सा है जो अपनी सती के बिना स्वर्ग को बसाता है ? शूर स्वर्ग में अकेला नहीं आता, उसकी पत्नी भी सती होकर अवश्य ही उसके साथ आती है। शूर सदा पत्नी के साथ स्वर्ग आता है, अतः शूर को अपनाना अप्सरा के लिअे संभव नहीं।

२६२. हे क्षत्रियों ! स्वामी के नमक का तिरस्कार करके भागो मत। मृत्यु के उपरान्त जब यम-यातना भोगोगे तब पता चलेगा कि तुमने कितना बुरा काम किया था।

रखे—अन्यार्थ—कहीं, अैसा न हो कि (तुम यद्ध में जा तो रहे हो पर कहीं अैसा न हो कि स्वामी के नमक की अवज्ञा करके भाग आओ)।

२. कायर की भर्त्सना—कवि द्वारा भर्त्सना

: २६३ :

केथ पधारो ठाकुरां !
मरदां नैण मिलाय ?
फरती-रा लोधा फिरै
धरती-रा धन खाय

: २६४ :

भोळा ! की डर भागियो,
अंत न पहुड़ै अैण ?
बीजी दोठां कुळ-वहू
नीचा करसो नैण

---

२६३. कहां । जाते हो (पद धारण) । हे सरदारों । मर्दों से आँखें मिलाकर; वीरों के सामने आकर, वीरों का मुकाबला करके । फिरती हुई के, इत्वरा के, कुलटा स्त्री के । लिये हुअे, प्राप्त किये हुअे, जने हुअे । फरती-रा लोधा—कुलटा के पुत्र, वर्णसंकर । फिरते हैं, मटरगश्ती करते हैं । पृथ्वी भर के । धनों को । खाकर ।

२६४. अरे भोले । किस । डर से । भाग चला । जीवन का अन्त, मृत्यु, काल । नहीं । पहुँचता है क्या । इस प्रकार (अथवा, अयन=घर में) । दूसरी स्त्रियों के । दिखायी देने पर (दृष्ट, दिट्ठ) । कुलधू, ऊंचे कुल की बहू ; तुम्हारी पत्नी । नीचे । करेगी । नेत्रों को । (उसे लज्जित होकर आँखें नीची करनी पड़ेंगी ।)

---

२६३. हे सरदारों ! वीरों से आँखें मिलाकर, उनके सामने आकर, उनका सामना करके, अब कहाँ जा रहे हो (अब कहाँ भाग रहे हो) ? वे कुलटा के पुत्र होते हैं जो पृथ्वी भर के धन को खाकर उसका बदला चुकाये बिना इस प्रकार मटरगश्ती करते हैं ।

अन्यार्थ—खाये हुअे धन का बदला चुकाये बिना युद्धभूमि से मुड़ चलते हैं । (फिरै=लौटते हैं, मुड़ते हैं, पीठ दिखाते हैं) ।

२६४. अरे भोले ! किस डर के मारे युद्धभूमि से भाग चले ? क्या मौत के डर से ? इस प्रकार भागने से क्या वह नहीं आ पहुँचेगी ? यों भागकर क्या मौत से बच जाओगे ? तुम तो मौत से नहीं बच सकोगे पर ऊंचे कुल की वधू तुम्हारी पत्नी, जब वह दूसरी स्त्रियों को देखेगी जिनके पति युद्ध से नहीं भागे हैं तब, शर्म के मारे मर ही जायगी ।

माता द्वारा भर्त्सना

: २६५ :

पूत ! महा दुख पाळियो
वप-खोवण थण पाय
अेम न जाणी, आवसी
जामण - दूध लजाय

पत्नी द्वारा भर्त्सना

: २६६ :

कंत ! घरै किम आविया
तेगां - री घण त्रास ?
लहँगै मूझ लुकीजियै,
वैरी - रो न विसास

---

२६५. हे पुत्र। बड़े। कष्ट से, कष्ट सहन करके। (तुम्हें) पाला। शरीर को नाश करने वाला, शरीर को क्षीण करने वाला। स्तन, स्तनों का दूध। पिलाकर। ऐसा। नहीं। समझा था। आवेगा। जन्मदात्री (माता) के दूध को। लज्जित करके।

पाठान्तर—वय-खोवण=जीवन को घटाने वाला, आयु को क्षीण करने वाला।

२६६. हे पति। घर। कैसे। आ गये, लौट आये। तलवारों के। घने, बड़े। डर से। लहँगे में। मेरे। छिपिये, छिप जाइये। शत्रु का। नहीं। विश्वास, भरोसा (कहीं वह यहां घर में भी न आ पहुँचे)।

---

२६५. वीर माता का कायर पुत्र के प्रति कथन—हे पुत्र ! मैंने तुझे शरीर का नाश करने वाला स्तन-पान कराकर बड़े कष्ट के साथ पाला था। पालते समय मुझे यह मालूम न था कि तू जन्मदात्री माता के दूध को लज्जित करके युद्धभूमि से भाग आवेगा।

२६६. वीर पत्नी अपने भागे हुअे कायर पति को फटकारती हुई कहती है—हे पति ! युद्धभूमि से घर कैसे लौट आये ? क्या तलवारों के घने भय से ? तो मेरे लहँगे में घुसकर छिप जाइये। शत्रु का कोई भरोसा नहीं, कहीं यहाँ घर में भी न आ पहुँचे।

: २६७ :

कंत ! भलां घर आविया,
पहरीजै मो वेस
अब धण लाजी चूड़ियाँ,
भव्र दूजै भेंटेस

: २६८ :

ओ गहणो, ओ वेस अब
कीजै धारण कंत !
हूँ जोगण किण काम-री,
चूड़ा - खरच मिटंत

---

२६७. हे पति। खूब, अच्छे। घर। आये, लौट आये। पहरिये, पहन लीजिये। मेरा वेश. मेरा परिधान, मेरे वस्त्र। अब। प्रेयसी की, तुम्हारी पत्नी की। लज्जित हो गयीं। चूड़ियां, सौभाग्य, सुहाग। जन्म में। दूसरे। भेंट करूंगी, मिलूंगी।

२६८. यह। गहना। यह। वेश। अब। कीजिये। धारण। हे पति। मैं। जोगिन। (तुम्हारे) किस काम की। चूड़ियों का। खर्च। मिटता है, मिट रहा है, मिट जायगा।

---

२६७. युद्ध से भागकर आये हुअे कायर पति को फटकारती हुई वीर पत्नी कहती है—हे पति ! तुम खूब घर लौट आये—अच्छा हुआ जो तुम जीवित घर आ गये। अब यह मेरा वेश पहन लो। अब तुम्हारी प्रेयसी का सुहाग लज्जित हो गया। अब तो तुमसे दूसरे जन्म में ही मिलूंगी—इस जन्म में अब तुमसे मेरा कोई संबंध नहीं।

२६८. हे पति ! अब यह मेरा गहना और मेरा वेश आप पहन लीजिये। मैं तो जोगिन बन रही हूं। अब तुम्हारे किसी काम की नहीं रही। अच्छा हुआ, तुम्हारा चूड़ियों का खर्च मिट जायगा—अब मेरे लिअे चूड़ियां लाने की जरूरत नहीं रहेगी।

: २६६ :

धव्र ! जीव्रे भव्र खोव्रियो,
मो मन मरियो आज
मो-नूं ओछे कंचुव्रै
हाथ दिखातां लाज

: २७० :

कंत ! सपेती देखतां
अब की जीव्रण-आस ?
मो थण रहणै हाथ-हूँ
घाते मुंहड़ै घास

---

२६९. हे पति। जीकर, जीवित रहकर। जन्म। खो दिया, व्यर्थ कर दिया। मेरा। मन। मर गया। आज। मुझ को। छोटे, आधी बांहों के। कंचुक में, कंचुकी में, चोली में। (अपने) हाथ। (दूसरों को) दिखाते हुअे। लज्जा (होती है)।

२७०. हे पति। सिर के बालों की सफेदी; वृद्धावस्था। देखते हुअे। अब। क्या (है)। जीने की आशा। (जो)। मेरे। स्तनों पर। रहने वाले। हाथ से। डाला, लिया। मुँह में। घास, तृण।

---

२६९. वीर पत्नी कायर पति से कहती है—हे पति ! युद्धभूमि से भागकर और इस प्रकार जीवन को बचाकर तुमने अपने जन्म को व्यर्थ कर दिया। तुम्हारा यह रूप देखकर आज मेरा मन तो मर ही गया—मेरे जीवन में कोई उल्लास नहीं रह गया। अब आधी बांहों की चोली में अपने हाथ दिखाते हुअे—सब के सामने सधवा का वेश पहनते हुअ—मुझे बड़ी लज्जा होती है।

२७०. हे पति ! सिर के केश सफेद हो गये, वृद्धावस्था आ गयी, उसको देखते हुअे अब अधिक जीने की कौन-सी आशा है जो (जिसके कारण) तुमने मेरे स्तन पर रहने वाले हाथ से घास लेकर मुंह में डाला—शत्रु के सामने दीन होकर प्राणों की रक्षा की; मौत सिर पर आ पहुँची है फिर भी प्राणों का इतना मोह है कि शत्रु के सामने दीनता दिखाते हो ! धिक्कार है तुम्हें !

: २७१ :

पोतां-रै बेटा थिया,
घर - में वधियो जाळ
अब तो छोडो भागणो,
कंत ! लुभायो काळ

: २७२ :

मणिहारी जा री ! परी,
अब न हवेली आव
पीव मुवा घर आविया,
विधवा कवण वणाव ?

---

२७१. पोतों के (पौत्र) । पुत्र । हो गये । घर में । बढ़ गया । (संतान का) जाल । अब तो, जब मौत निकट आ गयी है । छोड़ो । भागने को, युद्ध से भागने के स्वभाव को । हे पति । लुभा गया है, ललचा रहा है । काल, मृत्यु ।

२७२. हे मनिहारिन । अरी ! चली जा (परी जा या जा परी 'चली जा' अर्थ का बोधक मुहावरा है, परी शब्द का अर्थ है परे, दूर) अब । नहीं । हवेली में, मेरे महल में । आ, आना । (मेरे) पति । मरे हुअे । घर । आये हैं । विधवा के लिअे । कौन-सा, क्या । शृंगार ।

---

२७१. हे पति ! तुम्हारे पौत्रों के पुत्र हो गये और घर में संतान का जाल खूब बढ़ गया है। देखो काल तुम पर लुभा चुका है—वह तुम्हारा लोभ करके तुम्हें लेने को आने ही वाला है, मौत निकट आ गयी है। अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो।

२७२. हे मनिहारिन ! तू चली जा। (शृंगार की सामग्री लेकर) फिर मेरे महल में मत आना। मेरे पति मरे हुअे घर लौटे हैं, वे युद्ध से भाग आये हैं अतः वे मर चुके हैं, और मैं विधवा हो गयी हूँ। विधवा के लिअे भला क्या शृंगार —विधवा भला क्या शृंगार करेगी ?

: २७३ :

दरजण ! लांबी आंगिया
आणीजै अब मूझ
तव्र तोटै मो-नूं दया,
दूण सिव्राई तूझ

: २७४ :

झूरै इम रँगरेजणी,
कूड़ा ठाकुर ! काय
व्रसण सती धण रंगती,
दीधी आस छुडाय

---

२७३. हे दर्जिन (दर्जी की पत्नी)। लंबी, पूरी बांहों की। आंगी, चोली, कंचुकी। लाना। अब। मेरे लिअे। तेरे। घाटे से। मुझको। दया। (आती है)। दुगनी। सिलाई, सीने की मजदूरी। तुझे। (दूंगी)।

२७४. रंगरेजिन की फटकार। रोती है। यों, इस प्रकार कहती हुई। रंगरेजिन, रंगारिन। झूठे, केवल नाम के। हे सरदार। क्या; यह्र तुमने क्या किया। वस्त्र, कपड़े। सती के, (तुम्हारी) पत्नी के लिअे। रँगती। दी। आशा। छुड़ा।

---

२७३. हे दर्जिन ! मेरे पति युद्ध से भाग आये अतः मेरे लिअे वे मर चुके। मैं विधवा हो गयी हूं अतः विधवा के वस्त्र पहनूंगी। इसलिअे तू मेरे लिअे छोटी बांहों की कंचुकी के स्थान पर लंबी बांहों की कंचुकी बनाकर लाना। विधवा के कपड़े सीने से तुझे उतनी मजदूरी नहीं मिलेगी और तुझे हानि सहन करनी पड़ेगी—यह देखकर मुझे तुझ पर दया आती है अतः भविष्य में मैं तुझे दुगनी मजदूरी दिया करूंगी।

२७४. रंगरेजिन इस प्रकार कहकर विलाप करती है—अरे झूठे ठाकुर ! तूने यह क्या किया। मेरी बड़ी इच्छा थी कि तुम्हारी पत्नी के लिअे सती होने के समय पहनने के वस्त्र रँग कर लाती पर तुमने युद्ध-क्षेत्र से भागकर मेरी सारी आशा मिट्टी में मिला दी।

: २७५ :

गंधण कूकी रे ! गजब,
भूंडा ! आगम भौण
बळण कढायो अतर धण
मुंहघो लेसी कोण ?

: २७६ :

सोनारी झूरै, कहै
रे ठाकुर कुळ-खोय !
मूझ घड़ाई - खोवणा !
तूझ मड़ाई होय

---

२७५. गांधिन, गांधी की स्त्री (गांधी=इत्र आदि सुगंध-द्रव्यों को बेचने वाला)। चिल्लायी, रोयी। अरे। गजब कर दिया। हे निकम्मे। आगमन करके। घर (भवन)। (घर लौट करके)। जलने के लिअे, सती होने के लिअे। निकलवाया था। इत्र। तुम्हारी। पत्नी ने। (उस इतने) महँगे। (इत्र को)। अब लेगा। (दूसरा) कौन।

२७६. सुनारिन। रोती है। (और)। कहती है। अरे सरदार। कुल (के नाम) को नष्ट करने वाले। मेरी। गहनों की गढ़ाई, गहने बनाने की मजदूरी। खोने वाले। तेरी। मौत (मड़ा=मृतक)। हो। (तू मर जाय)।

---

२७५. गांधिन यह कहती हुई जोर से रोयी—अरे निकम्मे ! घर आकर तूने गजब कर दिया। सती होने के लिअे तुम्हारी पत्नी ने इत्र कढ़वाया था। उस महंगे इत्र को अब कौन खरीदेगा ?

२७६. सुनारिन रोती है और कहती है—अरे कुल के नाम को नष्ट करने वाले ठाकुर ! अरे मेरी गहने बनाने की मजदूरी खोने वाले ! तेरी मौत हो।

टि०—सुनारिन ठाकुर की पत्नी के गहने बनाती थी और मजदूरी पाती थी। पर विधवा गहने नहीं पहनती। ठकुरानी अब अपने को विधवा समझ कर गहने पहनना बंद कर देगी।

२७६. यमक।

३. निर्लज्ज पति

: २७७ :

की घर आज़ें थे कियो ?
हणियां बळती हाय !
धण ! थारै घण नेहड़
लीधो वेग बुलाय

: २७८ :

धण पूछै, की जीवियां ?,
धणी ! न लग्गा धार
थांरा सोगन, थां विना
सूनो मन संसार

---

२७७. क्या । घर आकर=युद्ध से भाग कर । आपने । किया । (तुम्हारे) मारे जाने पर । (मैं) । जलती, सती होती । हाय । हे प्रिये । तेरे । गहरे । प्रेम ने । लिया । जल्दी । बुला ।

२७८. पत्नी । पूछती है । क्या (लाभ) । जीने से । हे पति । नहीं लगे । तलवार की धार से । (तलवार से कट नहीं गये) । आप के । सौगन्द (हैं) । (तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ) । आप । बिना; विरह में । सूना । मन और संसार (या, मेरे मन के लिये यह संसार) ।

---

२७७. हे पति ! तुमने युद्ध से भाग कर यह क्या किया ? तुम युद्ध में प्राण देते तो मैं अभी सती होती ! निर्लज्ज पति उत्तर देता है—हे प्रिये ! तुम्हारे गहरे प्रेम ने मुझे युद्धभूमि से जल्दी बुला लिया ।

२७८. पत्नी पूछती है कि हे पति ! तुमने तलवार से कटकर युद्धभूमि में प्राण नहीं दिये और जीवन को कलंकित करके भी जीवित रहे, इस जीने से क्या लाभ हुआ ? पति निर्लज्जता से उत्तर देता है—तुम्हारी सौगंद है, तुम्हारे बिना मेरे मन को यह सारा संसार ही सूना जान पड़ता है; अतः तुम्हारे पास लौटकर आये बिना नहीं रहा गया ।

अन्यार्थ—तुम्हारे बिना मन और संसार सभी कुछ सूना है अतः मुझे लौट कर आना ही पड़ा ।

: २७६ :

मैं तो विण सब हांसिया,
उण भड़ अेक महेस
काय दियै धण मेहणूं,
हूं भड़ - हूंत विसेस

४. कायर-पत्नी

: २८० :

कायर-री धण यूं कहै
छानै कंत छिपाय
सीस विकै जिण देसड़ै,
सांई ! सो न दिखाय

---

२७६. मैंने । तेरे बिना, तुझे छोड़कर । सब को । हँसा दिया । उस । वीर ने (भट) । अेक केवल । महादेव को (ही हँसाया) । क्यों । देती है । हे प्रिये । ताना । मैं । वीर से, वीर की अपेक्षा । विशेष, बढ़कर (हूं) ।

२८०. कायर की । पत्नी । यों । कहती है । गुप्त रूप से । पति को । छिपाकर । सिर । बिकते हैं । जिस । देश में । हे ईश्वर (स्वामी) । उसे । मत । दिखा ।

---

२७६. **निर्लज्ज पति उत्तर देता हैं—हे प्रिये ! मुझे क्यों ताना देती हो ? मैं उस वीर की अपेक्षा निश्चय ही बढ़कर हूं; प्रमाण लो, उस वीर ने युद्ध में प्राण देकर केवल अेक महादेव को ही हँसाया पर मैंने तो तेरे सिवाय सब को हँसा दिया !**

सब हांसिया—मुझे युद्ध क्षेत्र से भागता देखकर सब लोग हँस पड़े, सब ने मेरी हँसी की ।

महेस—माना जाता है कि महादेव युद्ध में आते हैं और वीरों के पराक्रम को देखकर अट्टहास करते हैं ।

२८०. **कायर की स्त्री युद्ध मे भागकर आये हुअे पति को छिपाक इस प्रकार कहती है कि हे ईश्वर ! जिस देश में सिर बिकते हैं व देश कभी न दिखलाना—वहां कभी न रहना पड़ !**

सीस विकै इ०—जहां लोग उपकार के बदले सिर देते हैं, मालिक के लिअे प्राण देने को तय्यार रहते हैं, प्राण देकर स्वामी से उऋण होते हैं ।

२७६. व्यतिरेक, काव्यलिंग ।

: २८१ :

कायर-घर ऊढा कहै,
की धन्न ! जोड़े काम ?
कण-कण संचै कीड़ियां
जेंम्मै तीतर - जाम

: २८२ :

सूरां खोटो सूरपण,
चूडां आब उतार
हूं बळिहारी कायरां,
सदा सुहागण नार !

---

१८१. कायर के घर की स्त्री (ऊढा=विवाहिता)। कहती है। क्या। हे पति। संपत्ति जोड़ने से। मतलब, लाभ। अेक-अेक दाना करके। संचय करती हैं। चींटियां। जीम जाता है, खा जाता है। तीतर का बच्चा अर्थात् तीतर (जाम=पुत्र, जन्म से)।

२८२. वीरों का। बुरा। वीरत्व। (जो)। चूड़ियों की शोभा को उतार देता है; सुहाग को मिटा देता है। मैं। बलिहारी (हूँ) कायरों पर (जिनकी)। सदा सुहागिनी, अखंड सौभाग्यवती (रहती हैं)। पत्नियाँ।

---

२८१. कायर के घर की स्त्री कहती है कि हे पति संपत्ति का संचय करने से क्या प्रयोजन ? चींटियां अेक-अेक दाना करके अन्न का संचय करती हैं पर उस सारे संचित अन्न-समूह को तीतर का बच्चा खा जाता है।

कण इ०—कायर बड़े कष्ट से धन संचय करता है पर उसे भोगते दूसरे ही मिलाइये—कीड़ी संचै, तीतर खाय। पापी-रो धन परळै जाय।

२८२. शूरवीरों का शूरत्व बुरा, जो पत्नियों की चूड़ियों की शोभा को नष्ट कर देता है, उनके सुहाग को मिटा देता है। मैं कायरों पर बलिहारी हूं जिनकी पत्नियां सदा ही सुहागिनें रहती हैं।

टिप्पणी—वीर युद्ध से कभी पीछे नहीं हटते, जिससे उनकी स्त्री के सुहाग के किसी भी समय नष्ट होने की संभावना रहती है, न-जाने कब उसका पति मारा जाय और वह अपना सुहाग खो बैठे। उधर कायर पति कभी युद्ध में नहीं जाता जिससे उसके मरने की और उसकी पत्नी के विधवा होने की संभावना बहुत कम रहती है। यह कायर के प्रति व्यंग्योक्ति है, इसमें उसकी प्रशंसा के बहाने निन्दा की गयी है।

प्रकीर्णक

१. घोड़ा

: २८३ :

जंग - नगारां जाण रव
आण धगारां अंग
तंग लियंता तंडियो
तो - नै रंग तुरंग !

: २८४ :

कर पुचकारे धण कहै
जाण धणी-री जैत
नीराजण वाधाव्रियो
हूं बळिहार कुमैत !

---

२८३. युद्ध के नगाड़ों का। जानकर, सुनकर (या, पहचानकर)। शब्द, आवाज। लाकर। जोश। शरीर में। तंग, जीन कसने का तस्मा। लेते हुअे, लेते समय, बांधते समय, कसते समय। तांडव कर उठा, नाच उठा। तुझ को। रंग है, धन्य है, शाबाश है। हे घोड़े।

धगारां—अन्यार्थ—शरीर को आकाश में लाकर, आकाश तक उछलकर।

२८४. हाथ से (थपथपाते हुअे)। पुचकार करके, प्यार करके। धन्या, (स्वामी-की) पत्नी, मालकिन। कहती है। जानकर; सुनकर। पति की। जीत, विजय। आरती (नीराजना) द्वारा। वधाया, अभिनन्दित किया। मैं। (तुझ पर) बलिहारी (हूं)। हे घोड़े।

टि०—कुमैत घोड़ों की अेक जाति होती है।

---

२८३. **युद्ध के नगाड़ों के शब्द को पहचान कर तू अपने शरीर में जोश भर लाया और तंग बांधते ही उमंगित होकर नाच उठा। हे घोड़े ! तुझ धन्य है !**

२८४. **पति की विजय हुई जानकर (पति विजयी होकर घर लौटा है यह जानकर) वीर की पत्नी ने आरती करके घोड़े का अभिनन्दन किया और हाथों से थपथपाते हुअे पुचकार कर (प्रेम के साथ) कहा—हे घोड़े ! मैं तुझ पर न्यौछावर हूं।**

२८३. अंत्यानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक।

: २८५ :

नीला ! बळिहारी थयी,
हण टापां खळ - झुंड
पहली पड़ियो टूक ह्वे
खड़े धणी-रै रुंड

: २८६ :

नीला ! मो पहली पड़े
कीध उतावळ काय ?
वाल्हा कवळां पाळियो,
पड़तो मोय पुगाय

---

२८५. हे घोड़े (नीला—मूल अर्थ, नीले रंग का घोड़ा)। (मैं)। (तुझ पर) बलिहार (न्यौछावर) हुई। मारकर। (पैरों की) टापों से। शत्रुओं के समूह को। पहले, स्वामी के धड़ के गिरने के पहले ही। गिरा। टुकड़े होकर, कट कर। खड़े हुओ। स्वामी के। धड़ के, कबंध के। (स्वामी के धड़ के खड़े रहते)।

२८६. हे घोड़े। मेरे। पहले, पूर्व। गिरकर, प्राण देकर। की। शीघ्रता, त्वरा, उत्त्वरा। क्यों। प्यारे। कौरों से, ग्रास दे-देकर। पाला था। (तू) गिरता। मुझे। पहुँचाकर, मुझे स्वर्ग पहुँचाकर (मेरे मरने के पश्वात्)। (कम-से-कम मेरे अंत तक तो मेरा साथ देता)।

---

२८५. वीर की पत्नी घोड़े से कहती है—हे घोड़े ! मैं तुझ पर वारी गयी क्योंकि तू अपने खुरों की टापों से शत्रुओं के झुंड को मारकर, स्वामी का धड़ गिरे उसके पूर्व ही, टुकड़े-टुकड़े होकर युद्ध-भूमि में गिर पड़ा।

२८६. वीर अपने युद्ध-भूमि में गिरे हुओ घोड़े से कहता है—हे घोड़े ! मुझ से पूर्व ही युद्धभूमि में गिरने की यह त्वरा तूने क्यों की ? मैंने तुझे प्यार के साथ अपने हाथ से कौर दे-देकर पाला था, कम-से-कम मुझे पहले स्वर्ग पहुंचा देता और तब गिरता—मेरा साथ तो अंत तक निभा देता।

२. नीम

: २८७

हेली ! तिल-तिल कंत-रै
अंग विलग्गा खाग
हूँ बळिहारी नींवड़ै,
दीधो फेर सुहाग

: २८८ :

वैद रहीजै राज-घर,
पावै केथ गरीब ?
हेली ! दूध-धपाड़ियो
म्हारै नींब तबीब

---

२८७. हे सखी। तिल-तिल में, (शरीर की) बहुत थोड़ी-थोड़ी दूरी पर। पति के। शरीर में। लगे थे। खड्ग; तलवार के घाव। मैं। बलिहारी (हूँ)। नीम पर। (जिसने)। लौटा दिया (या, फिर से दिया)। (मुझे)। (मेरा) सौभाग्य।

२८८. वैद्य। रहें। राजा के घर में। (उन्हें) पावें। कहां। गरीब। हे सखी। दूध से तृप्त किया हुआ, खूब दूध से सींचा हुआ। हमारे। नीम वृक्ष (ही)। वैद्य, चिकित्सक। (है)।

---

२८७. हे सखी ! पति के शरीर में तिल-तिल स्थान पर तलवारों के घाव लगे। मैं नीम पर बलिहारी हूं जिसने मेरे पति के घावों को अच्छा करके और उसे जीवनदान देकर मेरे जाते हुऐ सुहाग को लौटा दिया (या, मुझे फिर सुहाग का दान दिया)।

टिप्पणी—घावों का उपचार नीम के जल आदि से किया जाता है। नीम के उपचार से घाव शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

२८८. वैद्य राजाओं के घरों में रहें। गरीब उनको कहां पावें—गरीबों की उन तक पहुंच कहां हो ? हे सखी ! हमारे तो दूध से तृप्त किया हुआ (अच्छी तरह सींचा हुआ) यह नीम का वृक्ष ही वैद्य है।

परिशिष्ट १

पद्यानुक्रमणिका

क्रमांक	प्रतीक	दूहा-संख्या	बंगाल-हिन्दी-मंडल के संस्करण की दूहा-संख्या
१	अजको गहली-रो कळस	१५६	५९
२	अठै सुजस प्रभुता उठै	२९	१३०
३	अमल कचोळां ऊझळै	२१३	१६४
४	अरियां जे त्रिण आपणा	२३६	२५६
५	असि-धाव्रण तो पीव्र पर	१८१	४१
६	आक-पळासां झूंपड़ों	१०५	२५५
७	आ कमणैती कंत-री	१७८	२२५
८	आ घर-खेती ऊजळी	२८	१२४
९	आघा-आघा ऊचरै	१५३	२५७
१०	आघा चारण खावकां	११	११०
११	आघा पड़व्रां ओळगण	१४	११३
१२	आज घरे सासू ! कहे	६७	५०
१३	आज सवेळो जागणो	१३६	२३
१४	आणी उर जाणी अतुळ	२	२
१५	आळस जाणै अैस-में	१४२	१९८
१६	आसा-वासा याद कर	२४७	१२८
१७	आंटो सासू ! आप-रो	१९७	१२०
१८	इकडंकी गिण अेक-री	४	५
१९	इण वेळा रजपूत वै	५	६
२०	इळा न देणी आपणी	६१	२३४
२१	इसड़ै टोटै हूँ सखी !	१०७	२६२
२२	ईखो घर-घर ऊतरै	१९८	१३६

परिशिष्ट २

विस्तृत विषयानुक्रमणिका

———